अथ नवमो धान्यवर्गः

तत्र धान्यानां भेदाः । तानाह

शालिधान्यं व्रीहिधान्यं शूकधान्यं तृतीयकम् ।
शिम्बीधान्यं क्षुद्रधान्यमित्युक्तं धान्यपञ्चकम् ॥ १ ॥

धान्यों के भेद— १ शालिधान्य, २ व्रीहिधान्य, ३ शूकधान्य, ४ शिम्बीधान्य, ५ क्षुद्रधान्य ये ५ भेद हैं ॥ १ ॥

अथ शाल्यादीनां भेदानाह

शालयो रक्तशाल्याद्या व्रीहयः षष्टिकादयः । यवादिकं शूकधान्यं मुद्गाद्यं शिम्बिधान्यकम् ॥
कङ्ग्वादिकं क्षुद्रधान्यं तृणधान्यञ्च तत्स्मृतम् ॥ २ ॥

शालिधान्य आदि के भेद—शालिधान्य के-रक्तशालि (लाल चावल) आदि, व्रीहिधान्य के-षष्टिक (साठी) आदि, शूकधान्य के-जौ आदि, शिम्बीधान्य के-मूंग आदि, क्षुद्रधान्यके कंगुनी आदि भेद हैं और क्षुद्रधान्य का नामान्तर तृणधान्य भी हैं ॥ २ ॥

अथ शालिधान्यम् तस्य लक्षणमाह

कण्डनेन विना शुक्ला हैमन्ताः शालयः स्मृताः ॥ ३ ॥

शालिधान्य के लक्षण—बिना कूटे ही जो सुफेद होते हों तथा हेमन्त ऋतु में उत्पन्न हों वे शालिधान्य (जड़हन) कहलाते हैं ॥ ३ ॥

अथ शालयः (चावल) । तेषां जातिभेदेन नामान्याह

रक्तशालिः सकलमः पाण्डुकः शकुनाहृतः । सुगन्धकः कर्दमको महाशालिश्च दूषकः ॥ ४ ॥
पुष्पाण्डकः पुण्डरीकस्तथा महिषमस्तकः । दीर्घशूकः काञ्चनको हायनो लोध्रपुष्पकः ॥ ५ ॥
इत्याद्याः शालयः सन्ति बहवो बहुदेशजाः ।
ग्रन्थविस्तरभीतेस्ते समस्ता नात्र भाषिताः ॥ ६ ॥

शाली (चावलों) के जातिभेद से नाम—रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनक, हायन और लोध्रपुष्पक इत्यादि शालि (चावल) बहुत से देशों में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के होते हैं, जिनका यहां पर पूर्ण वर्णन ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से नहीं किया जारहा है ॥ ४–६ ॥

अथ शालीनां गुणानाह

शालयो मधुराः स्निग्धा बल्या बद्धाल्पवर्चसः । कषाया लघवो रुच्याः स्वर्या वृष्याश्च बृंहणाः ॥
अल्पानिलकफाः शीताः पित्तघ्ना मूत्रलास्तथा ॥ ७ ॥

शालियों (अगहनी चावलों) के गुण—शालि (अगहनी चावल)-मधुर तथा कषाय रसयुक्त, स्निग्ध, बलकारक, थोड़ी मात्रा में बंधे हुये मल को निकालने वाले, लघु, रुचिकारक, कण्ठ स्वर को

उत्तम बनाने वाले, वृष्य (वीर्यवर्धक), बृंहण (रसरक्तादिवर्धक), किंचित् वात तथा कफ कारक, शीतल, पित्तनाशक और मूत्रल (मूत्र को अधिक मात्रा में उत्पन्न करने वाले) होते हैं ॥ ७ ॥

अथ दग्धमृज्जातशालिगुणानाह

शालयो दग्धमृज्जाताः कषाया लघुपाकिनः । सृष्टमूत्रपुरीषाश्च रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥८॥

जली हुई मिट्टी में उत्पन्न होने वाले शालि के गुण—जो शालि (अगहनी चावल)-जली हुई मिट्टी में उत्पन्न हुये हैं वे कषाय रसयुक्त, लघुपाकी (शीघ्र पचनेवाले), मूत्र तथा मल को निकालने वाले, रूक्ष तथा कफ का अपकर्षण करने वाले अर्थात् बढ़े हुये कफ को कम करने वाले होते हैं ॥८॥

अथ कैदारजशालिगुणानाह

कैदारा वातपित्तघ्ना गुरवः कफशुक्रलाः । कषायाश्चाल्पवर्चस्का मेध्याश्चैव बलावहाः ॥९॥

केदार (जुते हुये खेत) में बोने से उत्पन्न हुए जो चावल होते हैं वे-कषाय रसयुक्त, वात-पित्त नाशक, गुरु, कफ तथा शुक्र की वृद्धि करने वाले, थोड़ी मात्रा में मल को निकालने वाले, मेधाशक्ति के लिये हितकर तथा बलकारक होते हैं ॥ ९ ॥

*कैदाराः = कृष्टक्षेत्रजा उप्ताः ॥ ९ ॥

यहाँ पर मूल में 'कैदार' पद से 'जुते हुए खेत में बोने से उत्पन्न हुये चावल' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ स्थलजशालिगुणानाह

स्थलजाः स्वादवः पित्तकफघ्ना वातवह्निदाः ।
किञ्चित्तिक्ताः कषायाश्च विपाके कटुका अपि ॥ १० ॥

स्थलज शालि के गुण- स्थलज (बिना जुती हुई भूमि में उत्पन्न हुये अर्थात् बिना जोते बोये स्वयम् उत्पन्न हुये) जो शालि होते हैं वे-स्वादिष्ट, पित्त तथा कफ नाशक, वात तथा जठराग्निवर्धक, किंचित् तिक्त रसयुक्त, कसैले तथा विपाक में कटु रसयुक्त होते हैं ॥ १० ॥

*स्थलजाः = अकृष्टभूमिजाताः स्वयं जाताः ॥ १० ॥

यहाँ पर मूल में 'स्थलज' पद से 'बिना जुती हुई भूमि में उत्पन्न हुये अर्थात् बिना जोते बोये स्वयम् उत्पन्न हुये' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १० ॥

अथ वापितशालिगुणानाह

वापिता मधुरा वृष्या बल्याः पित्तप्रणाशनाः ।
श्लेष्मलाश्चाल्पवर्चस्काः कषाया गुरवो हिमाः ॥ ११ ॥

*वापिताः = कृष्टक्षेत्रेऽकृष्टक्षेत्रे च ॥ ११ ॥

बोये हुये शालि के गुण—वापित (जुते हुये या बिना जुते हुये खेत में बोने से उत्पन्न हुये) जो शालि (अगहनी चावल) हैं वे-मधुर तथा कषाय रसयुक्त, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, पित्तनाशक, कफ जनक, थोड़ी मात्रा में मल को निकालने वाले, गुरु तथा शीतल होते हैं ॥ ११ ॥

अथावापितशालिगुणानाह

वापितेभ्यो गुणैः किञ्चिद्धीनाः प्रोक्ता अवापिताः ॥ १२ ॥

अवापित शालि के गुण—वापित की अपेक्षा अवापित शालि गुणों में कुछ न्यून होते हैं ॥ १२ ॥

*कृष्टक्षेत्रेऽकृष्टक्षेत्रे वा ॥ १२ ॥

यहाँ पर भी मूल में 'अवापित' पद का वापित की भाँति ही जुते तथा बिना जुते खेत में बिना बोने से उत्पन्न हुये (अगहनी चावल)' यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १२ ॥

अथ नव–पुराण–रोपित–शालिगुणानाह

रोपितास्तु नवा वृष्याः पुराणा लघवः स्मृताः ।
तेभ्यस्तुरोपिता भूयः शीघ्रपाका गुणाधिकाः ॥ १३ ॥

रोपण किये शालि (चावल) यदि नये हों तो-वीर्यवर्धक और यदि पुराने हों तो लघु होते हैं। और उन्हीं से पुनः रोपण किये हुये शालि (चावल)-शीघ्र पचनेवाले तथा अधिक गुणकारी होते हैं॥१३॥

अथ छिन्नरूढशालिगुणानाह

छिन्नरूढा हिमा रूक्षा बल्याः पित्तकफापहाः ।
बद्धविट्काः कषायाश्च लघवश्चाल्पतिक्तकाः ॥ १४ ॥

जो काटने के पश्चात् पुनः उगे हुये शालि (चावल) होते हैं वे—शीतल, रूक्ष, बलकारक, पित्त तथा कफ नाशक, मलको बाँधने वाले, कसैले, लघु तथा किञ्चित् तिक्त रसयुक्त होते हैं ॥ १४ ॥

अथ रक्तशालिः । तस्य गुणानाह

रक्तशालिर्वरस्तेषु बल्यो वर्ण्यस्त्रिदोषजित् । चक्षुष्यो मूत्रलः स्वर्यः शुक्रलस्तृड्ज्वरापहः॥१५॥
विषव्रणश्वासकासदाहनुद् वह्निपुष्टिदः तस्मादल्पान्तरगुणाः शालयो महदादयः ॥ १६ ॥

रक्तशालि—यह सभी शालिधान्यों में श्रेष्ठ होता है तथा बलकारक, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाला, त्रिदोषनाशक, नेत्रों के लिये हितकर, मूत्रजनक, कण्ठ स्वर को उत्तम करने वाला, शुक्रजनक, जठराग्नि को पुष्ट करने वाला, एवम् तृषा, ज्वर, विष, व्रण, श्वास, कास, तथा दाह को दूर करने वाला होता है और इसकी अपेक्षा महाशालि आदि जो दूसरे शालि (चावल) हैं वे स्वल्प गुण वाले होते हैं ॥ १५–१६ ॥

*रक्तशालिः 'दाऊदखानी' इति लोके मगधदेशे प्रसिद्धः ॥ १५–१६ ॥

यहाँ पर मूल में "रक्तशालि" से मगध देश में "दाऊदखानी" नाम से प्रसिद्ध चावल समझना चाहिये ॥ १५–१६ ॥

अथ व्रीहिधान्यम् तस्य लक्षणसहितान् भेदान् गुणाँश्चाह

वार्षिकाः कथिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः । कृष्णव्रीहिः पाटलश्च कुक्कुटाण्डक इत्यपि ॥
शालामुखो जतुमुख इत्याद्या व्रीहयः स्मृताः । कृष्णव्रीहिःस विज्ञेयो यःकृष्णतुषतण्डुलः ॥
पाटलः पाटलापुष्पवर्णको व्रीहिरुच्यते । कुक्कुटाण्डाकृतिर्व्रीहिः कुक्कुटाण्डक उच्यते ॥१९॥
शालामुखः कृष्णशूकः कृष्णतण्डुल उच्यते । लाक्षावर्णं मुखं यस्य ज्ञेयो जतुमुखस्तु सः ॥२०॥
व्रीहयः कथिताः पाके मधुरा वीर्यतो हिमाः । अल्पाभिष्यन्दिनो बद्धवर्चस्काः षष्टिकैः समाः॥

कृष्णव्रीहिर्वरस्तेषां तस्मादल्पगुणाः परे ॥ २१ ॥

व्रीहिधान्य के लक्षण—जो चावल वर्षा ऋतु में पैदा होते है अर्थात् पक कर तैयार होते हैं एवम् ओखली में छांटने से जो सफेद होते हैं तथा देर में पकते हैं वे व्रीहिधान्य कहलाते हैं। व्रीहि-धान्य के भेद–कृष्णव्रीहि, पाटल, कुक्कुटाण्डक, शालामुख और जतुमुख ये सब व्रीहि धान्य के भेद हैं।

कृष्णव्रीहि के लक्षण—जिसकी भूसी तथा चावल दोनों काले हों वे "कृष्णव्रीहि" कहलाते हैं।

पाटल (व्रीहि) के लक्षण—जिसका रङ्ग पाटला (पाढ़ल) के पुष्प के सदृश हो वह पाटल (व्रीहि) कहलता है।

कुक्कुटाण्डक (व्रीहि) के लक्षण—आकार में जो मुर्गे के अण्डे के समान होता है उसे कुक्कुटाण्डक (व्रीहि) कहते हैं।

शालामुख (व्रीहि) के लक्षण—जिसके शूक (धान्य के मुख पर रहने वाला सूक्ष्म, लम्बा कांटा) तथा चावल दोनों कृष्णवर्ण के हों उसे शालामुख (व्रीहि) समझना चाहिये।

जतुमुख (व्रीहि) के लक्षण—जिसका मुख लाख के सदृश लाल रङ्ग का हो उसे जतुमुख (व्रीहि) समझना चाहिये ॥

व्रीहिधान्य—पाक में मधुर, शीतवीर्य, किञ्चित् अभिष्यन्दी, मल को बांधने वाले, गुण में षष्टिक (साठी चावल) के समान होते हैं। इन व्रीहियों में कृष्णव्रीहि सर्वोत्तम होता है और इसकी अपेक्षा अन्य व्रीहिधान्य न्यून गुणवाले होते हैं ॥ १७–२१ ॥

अथ षष्टिकाः (साठीचावल)। तेषां लक्षणमाह

गर्भस्था एव ये पाकं यान्ति ते षष्टिका मताः ॥ २२ ॥

षष्टिक (साठी चावल) के लक्षण—जो धान्य-गर्भ में ही अर्थात् बिना फूटे ही पक जाते हैं, वे–षष्टिक धान्य कहलाते हैं (और ६० दिन में पक कर तैयार होने वाले धान को भी षष्टिक कहते हैं) ॥ २२ ॥

अथ तेषां नामान्याह

षष्टिकः शतपुष्पश्च प्रमोदकमुकुन्दकौ। महाषष्टिक इत्याद्याः षष्टिकाः समुदाहृताः।
एतेऽपि व्रीहयः प्रोक्ता व्रीहिलक्षणदर्शनात् ॥ २३ ॥

षष्टिक (साठी धान्य) के भेद—षष्टिक, शतपुष्प, प्रमोदक, मुकुन्दक और महाषष्टिक ये सब षष्टिक के भेद हैं। और ये भी व्रीहि कहलाते हैं क्योंकि इनमें व्रीहि के लक्षण–वर्षा ऋतु में पक कर तैयार होना आदि देखे जाते हैं ॥ २३ ॥

अथ तेषां गुणानाह

षष्टिका मधुराः शीता लघवो बद्धवर्चसः। वातपित्तप्रशमनाः शालिभिः सदृशा गुणैः ॥२४॥

षष्टिकधान्य मात्र—मधुर, शीतल, लघु, मल को बाँधने वाले, वात तथा पित्त को शमन करने वाले और गुणों में शालिधान्य के सदृश होते हैं ॥ २४ ॥

तत्र षष्टिकाया गुणानाह

षष्टिका प्रवरा तेषां लघ्वी स्निग्धा त्रिदोषजित् ॥ २५ ॥
स्वाद्वी मृद्वी ग्राहिणी च बलदा ज्वरहारिणी।
रक्तशालिगुणैस्तुल्या ततः स्वल्पगुणाः परे ॥ २६ ॥

षष्टिक नामक षष्टिक धान्य के गुण—षष्टिक–सम्पूर्ण षष्टिक धान्यो में उत्तम होता है और लघु, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ट, मृदु, ग्राही, बलदायक तथा ज्वर को दूर करने वाला और गुणों में रक्तशालि के समान होता है। शेष षष्टिकधान्य इसकी अपेक्षा स्वल्प गुणवाले होते हैं ॥ २५–२६ ।

१ चावल (धान)

हिं०—चावल, धान। **म०**—तांदूल, भात। **गु०**—भात, चोरवा। **बं०**—धान, चावल। **ता०**—अरशी, नेल्लु। **ते०**—धान्यमु, ओदलु। **क०**—भट्टा। **अं०**—Rice (राइस), Paddy (पॅड्डी–धान)। **ले०**—*Oryza sativa Linn.* (ओरिझा सटाइवा)। Fam. Gramineae. (ग्रेमिनी)।

यह सभी स्थानों पर कृषित होता है। इसका क्षुप–छोटा, जलीय, वर्षायु होता है। काण्ड गोल एवं पोला होता है। पत्ते–बहुत, खुरदरे, पतले तथा भालाकार होते हैं। पुष्प–गुच्छ के रूप में, अनेक शाखायुक्त तथा झुके हुवे रहते हैं जिनमें पुंकेशर ६ तथा स्त्रीकेशर की कुक्षि पंखसदृश एवं संख्या में २ होती हैं। लाल चावल में स्त्रीकेशर लाल रहते हैं।

यद्यपि चावल की एक ही जाति (Species) है तथापि इसके सैकड़ों प्रकार पाये जाते हैं। भावप्रकाशकार भी इससे सहमत होते हुए इसके मुख्य ४ भेद, १ शालि, २ रक्तशालि, ३ व्रीहि एवं ४ षष्टिक करते हैं। इनमें से प्रथम हेमन्त ऋतु में पककर तैयार होता है। दूसरा लाल रंग का होता है। तीसरा वर्षाकाल में पककर तैयार होता है। चौथा ६० दिन में या जल्दी तैयार होता है। अधिकतर प्रथम ही होता है।

स्थानभेद, पकने के ऋतु के भेद, पकने के काल (अवधि) भेद, चावल के अन्दर रहने वाले पिष्टमय पदार्थ, चावल या धान के रंग, आकार, नाप, शूक रहित या शूक युक्त भेद से इसके अनेक प्रकार मिलते हैं।

घटिया किस्म में अधिकतर लाल चावल के प्रकार पाये जाते हैं। यह लाली बहुत अन्दर तक नहीं रहती। किसी-किसी अच्छे प्रकार में भी लाल चावल होते हैं तथा उनका स्वाद भी अच्छा होता है। इसीलिए कहीं-कहीं चावल को रंग देते हैं किन्तु यह रंग जल से धोने पर निकल जाता है।

नये चावल की अपेक्षा पुराना चावल सुपाच्य होता है। परीक्षणों से देखा गया है कि नये चावल की पचन क्षमता पुराने की अपेक्षा आधी से कम होती है। रखने से इसमें के स्टार्च मे परिवर्तन होने से यह प्रभाव देखा जाता है। पकाने में भी नये का भात चिपचिपा तथा गोला सा हो जाता है किन्तु पुराने का बहुत अच्छा बनता है।

चावल साफ करने की विधि के अनुसार भी चावल के पोषक तत्वों में परिवर्तन हो जाता है। कुछ उबाल कर फिर धान छुड़ाये हुए भुजिया चावल (Paraboiled-पैराबॉइल्ड) में तथा हाथ कुटे चावल में, मिल से साफ किये हुये की अपेक्षा नाइट्रोजन द्रव्य अधिक रहते हैं।

निम्न तालिका से इसका अन्तर साफ मालूम होता है।

रासायनिक संगठन—

— — —	जल	अलब्यूमिनाभ द्रव्य	स्नेह	कार्बोहाइड्रेट	रेशा	राख
हाथ कुटा चावल	१२·२	८·५	०·६	७८·०	०·६	०·७
मिल का साफ किया हुआ चावल	१३·०	६·९	०·४	७९·२	०	०·५
भुजिया, हाथकुटा चावल	१२·६	८·५	०·६	७७·४	०	०·९
भुजिया, मिल का साफ किया हुआ चावल	१३·३	६·४	०·४	७९·१	०	०·८
लावा	१४·७	७·५	०·१	७४·३	०	३·४
चिउड़ा	१२·२	६·६	१ २	७८·२	०	१·८

गुण और प्रयोग—प्रधान भोजन के रूप में अनेक प्रान्तों में इसका उपयोग किया जाता है।

इसको अधिक जल में पतला पकाकर अतिसार, संग्रहणी तथा अन्य पाचन के विकारों में देते हैं।

चावल की धोवन दाहशामक तथा स्नेहन होने से ज्वर, दाह एवं आन्त्रिकप्रदाह आदि में दी जाती है।

अथ शूकधान्यानि । तत्र यवभेदानाह

यवस्तु सितशूकः स्यान्निःशूकोऽतियवः स्मृतः।
तोक्यस्तद्वत्स हरितस्ततः स्वल्पश्च कीर्त्तितः ॥ २७ ॥

शूक धान्यों में जौ के लक्षण सहित भेद—जौ-यह सफेद शूक (सूई या टूंड) से युक्त होता है। अतियव-इसमें शूक नहीं होता है। तोक्य-यह शूक से रहित, हरे रङ्ग का तथा छोटा होता है ॥ २७ ।

***शूकधान्यानि तेषु यवः प्रसिद्धः। अतियवो निःशूकः कृष्णारुणवर्णो यवः। तोक्यो हरितो निःशूकः स्वल्पो यवः "जई" इति प्रसिद्धः ॥ २७ ॥**

यहाँ पर "शूकधान्यों में "जव" प्रसिद्ध है। अतियव-यह शूक रहित काले तथा अरुण (लाल) रङ्ग का होता है। तोक्य-यह हरे रङ्ग का शूक रहित छोटा जव होता है और "जई" इस नाम से लोक में प्रसिद्ध है।"

अथ तेषां गुणानाह

यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः। व्रणेषु तिलवत्पथ्यो रूक्षो मेधाऽग्निवर्धनः ॥
कटुपाकोऽनभिष्यन्दी स्वर्यो बलकरो गुरुः। बहुवातमलो वर्णस्थैर्यकारी च पिच्छिलः ॥२९॥
कण्ठत्वगामयश्लेष्मपित्तमेदःप्रणाशनः। पीनसश्वासकासोरुस्तम्भलोहिततृट्प्रणुत् ॥
अस्मादतियवो न्यूनस्तोक्यो न्यूनतरस्ततः ॥ ३० ॥

जौ—कषाय तथा मधुर रस युक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, शीतल, लेखन, कोमल, व्रणों में तिल के समान पथ्य, रूक्ष, मेधा तथा जठराग्नि को बढ़ाने वाला, किंचित् अभिष्यन्दी, कण्ठ स्वर को उत्तम करने वाला, बलकारक, गुरु, अधिक रूप से वात तथा मल को करने वाला, शरीर के वर्ण को स्थिर रखने वाला, पिच्छिल एवम्—कण्ठ तथा चर्म सम्बन्धी रोग, कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, कास, ऊरुस्तम्भ, रक्तविकार तथा तृषा को दूर करने वाला है।

अतियव—यह जौ की अपेक्षा न्यून गुणवाला होता है।

जई—यह अतियव से भी न्यून गुण वाला होता है ॥ २८-२९ ॥

२ जव

हि०-जव, जो, जौ। म०-जव। क०-जवेगोधी। ता०-वार्लि अरिसि। ते०-यव धान्य। फा०-जव, जओ। अ०-शईर, इयईर। बं०-जव। अं-Barley (बारली)। ले०-*Hordeum vulgare Linn.* (हॉरडीयम् वल्गेयर)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

इसकी खेती उत्तर भारत में विशेष होती है। उपज का ८०% भाग उत्तरप्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा में होता है। पंजाब में ११% एवं अन्य प्रान्तों में मिलाकर ९% उपज होती है। दक्षिण में बहुत ही नाममात्र खेती की जाती है।

इसका क्षुप—वर्षायु तथा २-३ फीट ऊंचा होता है। मूल—बहुत तथा रेशेदार होते हैं। पत्ते—रेखाकार भ लाकार, ९-१२ इञ्च लंबे तथा ½-⅔ इञ्च चौड़े एवं मध्यपर्शुक श्वेत रहती है। बाली शूकयुक्त होती है। सपुष्पशल्क (Lemma-लेम्मा) पर शूक रहता है। यह शल्क एवं अन्तःवृन्तपत्रक (Palea) दाने से लगा रहता है। इसके कई प्रकार पाये जाते हैं। जई (तोक्य) यह यव का भेद या भारतीय ओट (Indian oat) जिसका लेटिन नाम एवेना बाइझेंटिना (Avena byzantina C. Koch) है, हो सकता है।

गेहूँ के आटे में मिलाकर इसकी रोटी बनाई जाती है। इससे माल्ट तथा मद्य बनाये जाते हैं। जिसमें स्टार्च अधिक रहता है उसको माल्ट बनाने के काम में लाते हैं जिसमें प्रोटीन अधिक रहता है उसको खाने के काम में लिया जाता है। विशेष पद्धति से ऊपर का छिलका साफ करके पर्ल बार्ली (Pearl Barley) बनाते हैं। जव का सत्तू बनाकर खाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कार्बोहाइड्रेट ६९·३ भाग, प्रोटीन ११·५, खनिज १·५ जिनमें खटिक, लोह एवं विटामिन 'सी' को छोड़कर अन्य थोड़ी मात्रा में होते हैं। इसके प्रोटीन का 'जैव मूल्य' ६४ है जब कि गेहूँ का ६७ रहता है।

गुण और प्रयोग—यह सुपाच्य होता है तथा भूनकर पीसकर इसकी मण्ड, पेया इत्यादि बनाकर रोगी को पथ्य के रूप में देते हैं। कुपचन, ज्वर, अतिसार, मूत्रकृच्छ्र तथा प्रदाह युक्त विकारों में यवमण्ड का उपयोग किया जाता है।

इसके क्षार का वर्णन पहले हरीतक्यादिवर्ग (पृष्ठ १६१) में किया जा चुका है।

अथ गोधूमः (गेहूँ) । तस्य नामानि सलक्षणभेदानाह

गोधूमः सुमनोऽपि स्यात्त्रिविधः स च कीर्त्तितः। महागोधूम इत्याख्यः पश्चाद्देशात्समागतः ॥

गेहूं के संस्कृत नाम—गोधूम तथा सुमन हैं। भेद—१ महागोधूम, २ मधूली, ३ दीर्घगोधूम इन भेदों से यह ३ प्रकार का होता है।

महागोधूम—यह पश्चिम के देशों (पंजाब आदि) से आता है ॥ ३१ ॥

मधूली तु ततः किञ्चिदल्पा सा मध्यदेशजा। निःशूको दीर्घगोधूमः क्वचिन्नन्दीमुखाभिधः ॥

मधूली—यह "बड़ा गेहूं" की अपेक्षा कुछ छोटा होता है, और मध्यदेश (आगरा-मथुरा आदि) में उत्पन्न होता है।

दीर्घगोधूम—यह शूक (टूंड) रहित होता है तथा इसे कहीं २ नन्दीमुख भी कहते हैं ।।३२।।

अथ गोधूमगुणानाह

गोधूम मधुरः शीतो वातपित्तहरो गुरुः । कफशुक्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत्सरः ॥३३॥
जीवनो बृंहणो वर्ण्यो व्रण्यो रुच्यः स्थिरत्वकृत् ॥ ३४ ॥

गेहूं—यह मधुर, शीतल, गुरु, कफप्रद (कफ को पैदा करने वाला), वीर्यजनक, बलकारक, स्निग्ध, सन्धानकारक (टूटी अस्थियों को जोड़ने वाला), सारक, जीवनी शक्ति को बढ़ाने वाला, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वर्ण को उत्तम करने वाला, व्रण के लिये हितकर, रुचिकारक, स्थिरता को करने वाला एवम् वात तथा पित्त नाशक होता है ॥ ३३-३४ ॥

***कफप्रदो नवीनो न तु पुराणः ।**
"पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूलभुग्" ॥
इति वाग्भटेन वसन्ते गृहीतत्वात् ॥ ३३-३४ ॥

यहां पर—"कफप्रद" पद होने से "नवीन गेहूं कफ को बढ़ाने वाला होता है न कि पुराना" यह समझना चाहिये। क्योंकि-यदि पुराना गेहूं भी कफप्रद होता तो वाग्भट वसन्तऋतु के पथ्य में—पुराना जौ तथा गेहूं, मधु, जङ्गलीजीवों के मांस का कबाब इत्यादि के मध्य में गेहूं का नाम न लेते ॥ ३३-३४ ॥

अथ मधूलीनन्दीमुखयोर्गुणानाह

मधूली शीतला स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः । शुक्रला बृंहणी पथ्या तद्वन्नन्दीमुखः स्मृतः॥३५॥

मधूली (गेहूं)—मधुर रसयुक्त, शीतल, स्निग्ध, लघु, शुक्रजनक, बृंहण (रसरक्तादिवर्धक), पथ्य और पित्तनाशक होता है।

नन्दीमुख (गेहूं) यह भी पूर्वोक्त मधूली के समान गुणों में होता है ॥ ३५ ॥

३ गेहूं

हि॰—गेहूं । **बं॰**—गम । **म॰**—गहूं । **गु॰**—घउ, घेऊ । **क॰**—गोधी । **ते॰**—गोदुमेलु । **फा॰**—गंदुम । **ता**-गोदूमै । **अ॰**—हिन्ता, । **अं॰**—Wheat (व्हीट) । **ले॰**—*Triticum sativum Lam.* (ट्राइटिकम् सटाइवम्) । Fam. Gramineae (ग्रेमिनी) ।

अनेक प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। संसार भर में अन्न के लिये इसकी उपज की जाती है। यह मैसूर, मद्रास में कम होता है। उत्तरभारत में यह अधिक होता है।

इसके पौधे जव के समान होते हैं। यद्यपि इसकी ३-४ जातियां होती हैं तथापि उपर्युक्त जाति ही अधिक बोई जाती है। इसके अनेक प्रकार होते हैं। इनमें भी शूक युक्त या विहीन भेद पाये जाते हैं। कड़ा, मुलायम तथा लाल एवं श्वेत आदि दाने के भेद होते हैं। खाने के लिये कड़े दाने वाला तथा स्टार्च के लिये मुलायम गेहूँ काम में लाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन द्रव्य ८ से २४ भाग, कार्बोहाइड्रेट ६८-७०, स्नेह १-२ तथा राख १.५-२ भाग रहती है। मुलायम गेहूँ में प्रोटीन कम रहता है। इसमें लोह, ताम्र, यशद, मैंगनीज एवं मैगनेशियम् खनिज होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसको अन्न के रूप में उपयोग में लाया जाता है। चोकरयुक्त आटे की रोटी विबंध में लाभदायक रहती है।

अथ शिम्बीधान्यम् । तत्रादौ तस्य नामान्याह

शमीजाः शिम्बिजाः शिम्बीभवाः सूप्याश्च वैदलाः ॥ ३६ ॥

शिम्बीधान्य के संस्कृत नाम—शमीज, शिम्बिज, शिम्बीभव, सूप्य और वैदल ये सब हैं ॥३६॥

अथ शिम्बीधान्यस्य गुणानाह

वैदला मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः । वातलाः कफपित्तघ्ना बद्धमूत्रमला हिमाः ॥
ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारिणः ॥ ३७ ॥

शिम्बीधान्य—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, रूक्ष, विपाक में कटुरसयुक्त, वातजनक, कफ तथा पित्त-नाशक, मूत्र तथा मल को बांधने वाले और शीतल होते हैं। और शिम्बीधान्यों में मूंग तथा मसूर को छोड़कर शेष सभी आध्मान (अफरा) करने वाले होते हैं ॥ ३७ ॥

***मुद्गमसूरयोराध्मानकारित्वमन्यवैदलापेक्षया, न तु सर्वथा, एतयोरपि किञ्चिदाध्मानकारित्वदर्शनात् ॥ ३७ ॥**

"अन्य शिम्बी धान्यों की अपेक्षा मूंग और मसूर आध्मान करने वाले नहीं होते न कि सर्वथा आध्मान करने वाले नहीं होते, क्योंकि ये दोनों भी किंचित् मात्र आध्मान करनेवाले होते हैं, ऐसा देखा गया है" ॥ ३७ ॥

अथ मुद्गः (मूँग) सभेदस्य तस्य गुणानाह

मुद्गो रूक्षो लघुर्ग्राही कफपित्तहरो हिमः । स्वादुरल्पानिलो नेत्र्यो ज्वरघ्नो वनजस्तथा ॥
मुद्गो बहुविधः श्यामो हरितः पीतकस्तथा । श्वेतो रक्तश्च तेषान्तु पूर्वः पूर्वो लघुः स्मृतः ॥
सुश्रुतेन पुनः प्रोक्तो हरितः प्रवरो गुणैः । चरकादिभिरप्युक्त एष एव गुणाधिकः ॥ ४० ॥

मूंग—स्वादिष्ट, रूक्ष, लघु, ग्राही, कफ तथा पित्तनाशक, शीतल, किंचित् वायुकारक, नेत्र के लिये हितकर तथा ज्वरनाशक है और जंगल में उत्पन्न होने वाली मूंग गुणों में मूंग के समान ही है।

मूंग के भेद और उनके गुण—श्याम, हरी, पीली, सफेद तथा लाल इन भेदों से मूंग कई प्रकार की होती है। और इनमे एक दूसरी की अपेक्षा पूर्व २ लघु होती है। (अर्थात्-लाल की अपेक्षा सुफेद, सुफेद से पीली, पीली से हरी, हरी से श्याम लघु होती है।) किन्तु सुश्रुत ने तो विशेषतः और मूंगों की अपेक्षा हरीमूंग को गुणों में श्रेष्ठ बतलाया है। और चरकादि महर्षियों ने भी इसी को (हरी मूंगको) अधिक गुणकारी बतलाया है ॥ ३८-४० ॥

४ मूंग

हि॰—मूंग, मुंग । **बं॰**—मुग । **म॰**—मूग, हिरवे मूग । **गु॰**—मग, कच्छी । **ता॰**—पच्चैयमेरू । **क॰**—हेसरु । **ते॰**—पच्चापेसलु । **फा॰**—बुनुमाष, बनोमाश, माष । **अ॰**—मजमाश, माष मज । **अं॰**—Green Gram (ग्रीन् ग्राम) । **ले॰**—*Phaseolus aureus Roxb.* (फेसीओलस् ऑरियस्) । Fam. Leguminosae (लेगुमिनोसी) ।

यह इस देश के खेतों में बोई जाती है और पश्चिमोत्तर हिमालय के ६ हजार फीट ऊँची भूमि में भी जङ्गली उत्पन्न होती है। इसका क्षुप-१-२ फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते-उड़द के

समान होते हैं। समस्त क्षुप पर रेशमवत् बारीक रोवें होते हैं। फूल—पीले आते हैं। फलियां—१॥–२ इञ्च लम्बी और कुछ टेढ़ी होती हैं।

बीज—हरे रंग के होते हैं। अन्दर की दाल पीले रंग की होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन २२ भाग, कार्बोहाइड्रेट ५४–५६, स्नेह १·३–२·७, रेशा ४·१–५·८ एवं राख ३·६–४·४ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—यह अन्य दालों की अपेक्षा हल्की एवं सुपाच्य होती है। मुद्ग यूष का उपयोग पथ्य के रूप में करते हैं।

अथ माषः (उरद) तस्य गुणानाह

माषो गुरुः स्वादुपाकः स्निग्धो रुच्योऽनिलापहः। स्रंसनस्तर्पणो बल्यः शुक्लो बृंहणः परः॥
भिन्नमूत्रमलः स्तन्यो मेदःपित्तकफप्रदः। गुदकीलार्दितश्वासपक्तिशूलानि नाशयेत्॥ ४२॥
कफपित्तकरा माषाः कफपित्तकरं दधि। कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताकं कफपित्तकृत्॥ ४३॥

उरद–गुरु, विपाक में मधुररसयुक्त, स्निग्ध, रुचिकारक, वातनाशक, स्रंसन, सन्तर्पण करने वाला, बलकारक, शुक्र-जनक, अत्यन्त बृंहण, (रस-रक्तादि वर्धक), मूत्र तथा मल का भेदन करने वाला, दुग्धवर्धक, मेद–पित्त–कफ को बढ़ाने वाला एवम्–गुदकील–अर्दितवात (मुँह का लकवा)–श्वास–पक्तिशूल (अन्न के पचने पर शूल होना) इन सब रोगों को दूर करने वाला होता है।

कफ तथा पित्त कारक द्रव्य चतुष्टय–उरद, दही, मछली और बैंगन ये चारों द्रव्य कफ तथा पित्त को बढ़ाने वाले होते हैं॥ ४१–४३॥

५ उड़द

हि०–उड़द, उड़िद, उरद, उरिद, उर्दी। **बं०**–माष कलाय। **म०**–उड़ीद। **ता०**–उलुंडु। **गु०**–अड़द। **क०**–उड़ु। **ते०**–उद्दुलु। **फा०**–माष। **अ०**–माषा। **अं०**–Black Gram (ब्लॅक् ग्राम्)। **ले०**–*Phaseolus mungo Linn.* (फेसीओलस् मुंगो)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

उड़द इस देश में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी उपज हर प्रान्त में होती है। इससे दाल, बड़े इत्यादि बनते हैं।

इसका क्षुप–झाड़ीदार फैला हुआ, एक फीट ऊंचा, अनेक शाखायुक्त एवं रोमावृत होता है। पुष्प–पीले होते हैं। फली–पतली, गोल, १½–२½ इञ्च लंबी एवं बीजों के बीच-बीच में भीतर दबी हुई होती है। बीज–८ से १५, काले या गहरे भूरे या कभी-कभी हरे होते हैं। ये हरे होते हुये भी मूंग की तरह अन्दर से पीले न होकर सफेद होते हैं।

भावप्रकाश इसके दो भेद माष एवं महामाष या राजमाष (श्वेत, रक्त, कृष्ण) लिखते हैं। उपर्युक्त उड़द के छोटे तथा बड़े पाये भी भेद जाते हैं जिनमें बड़े में दाने कुछ काले तथा अच्छे होते हैं। ये दोनों भिन्न-भिन्न काल में बोये जाते हैं। संभव है भावप्रकाशोक्त महामाष बड़े काले रंग की उड़द का प्रकार हो या जिसका आगे लोबिया के नाम से वर्णन किया गया है वह हो।

रासायनिक संगठन—इसमें फॉस्फोरिक अॅसिड की मात्रा अन्य दालों की अपेक्षा ५ से १० गुना अधिक रहती है। इसमें प्रोटीन २२, कार्बोहाइड्रेट ५५, तेल १ एवं राख ४ भाग रहती है। इसके प्रोटीन भी अन्य दालों की तरह न होकर कुछ मांस के समान होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह मधुर, बल्य, वृष्य, बृंहण, उष्ण, वातनाशक, कफपित्त वर्धक एवं स्तम्भनन है। वातविकार एवं संधिरोग में इसका क्वाथ देते हैं। हड्डियों में पीड़ा होने से यदि

निद्रानाश हो तो इसकी जड़ देते हैं। यह मादक होती है। वातविकारों में बाह्याभ्यन्तर उड़द का उपयोग किया जाता है। उड़द के लड्डू नाड़ी संस्थान के लिये बल्य हैं।

अथ राजमाषः (बोड़ा)। यस्य च "वेरातरा—लोबिया" इत्यादयो भेदाः। तस्य नामानि तद्भेदगुणाँश्चाह

राजमाषो महामाषश्चपलश्च बलः स्मृतः। राजमाषो गुरुः स्वादुस्तुवरस्तर्पणः सरः॥४४॥
रूक्षो वातकरो रुच्यः स्तन्यो भूरिबलप्रदः। श्वेतो रक्तस्तथा कृष्णस्त्रिविधः स प्रकीर्त्तितः॥
यो महांस्तेषु भवति स एवोक्तो गुणाधिकः॥ ४५॥

राजमाष के संस्कृत नाम—राजमाष, महामाष, चपल तथा बल ये सब हैं। इसी के "वेरातरा", "लोबिया" इत्यादि लोक में भेद होते हैं। **राजमाष–गुरु**, स्वादिष्ट तथा कषाय रस युक्त, सन्तर्पण करने वाला, सारक, रूक्ष, वातकारक, रुचिकारक, दुग्धवर्धक तथा अत्यन्त बलकारक होता है।

भेद—सफेद, लाल तथा काला इन भेदों से यह तीन प्रकार का होता है। गुण–इनमें जो बड़ा होता है वही सबसे अधिक गुणशाली समझा जाता है॥ ४४–४५॥

नोट—राजमाष से कुछ लोग लोबिया का ग्रहण करते हैं तथा कुछ पूर्वोक्त उड़द का काले रंग का बड़ा भेद लेते हैं। यहाँ लोबिया का वर्णन किया जा रहा है।

६ राजमाष (लोबिया)

हि०–राजमाष, बोड़ा, चौरा, लोबिया। **बं०**–बरबटी कलाय, बर्बटी। **म०**–चवळया, अलसंदे। **गु०**–चोळा। **क०**–अलसंदे। **ते०**–अलसन्दलु। **ता०**–करामणि। **फा०**–लोबह, लोबिया। **अ०**–फरिका, फिरीका। **अं०**–Chinese Beans (चाइनीज़ बीन); Cowpeas (काउपीज़्)। **ले०**–*Vigna catiang Walp.* (विग्ना कॅटियङ्ग)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इसकी अनेक स्थानों पर खेती की जाती है।

यह वर्षायु, अनेक मांसल पतले काण्ड के द्वारा जमीन पर फैलने वाला क्षुप है। पत्ते–त्रिपत्रक एवं लंबेवृन्तवाले; पत्रक, बड़े, गहरे हरे एवं अण्डाकार होते हैं। पुष्प–पर्व से ३–६ एक साथ, एक इञ्च व्यास के, श्वेत, हलके गुलाबी, हलके नीले रंगों के भेद से २, ३ प्रकार के होते हैं जो मुरझाने के समय भीतर से पीले हो जाते हैं। फली–पतली, गोल एवं विभिन्न प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न लम्बाई की होती है। लम्बी १८ इंच से २ फीट तक एवं छोटी ४ से ५ इञ्च तक हुआ करती है। बीज–फली के अनुसार छोटे तथा बड़े एवं रंग में प्रकार के अनुसार क्रीम जैसे, भूरे, फीके लाल, हलके बैंगनी या काले हुआ करते हैं।

रासायनिक संगठन–बीजों में प्रोटीन २४·६, कार्बोहाइड्रेट ५५·७, स्नेह ०·७, रेशा ३·८, राख ३·२ एवं आर्द्रता १८ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज मूत्रल तथा आमाशय बलप्रद एवं कृमिनाशक हैं। यह अच्छा पोषक द्रव्य है।

अथ निष्पावः । स तु राजशिम्बीबीजम् [भटवाँसु] इति लोके । तस्यनामानि गुणाँश्चाह

निष्पावो राजशिम्बिः स्याद्वल्लकः श्वेतशिम्बिकः ।
निष्पावो मधुरो रूक्षो विपाकेऽम्लो गुरुः सरः ॥ ४६ ॥
कषायः स्तन्यपित्तास्रमूत्रवातविबन्धकृत् । विदाह्युष्णो विषश्लेष्मशोथहृच्छुक्रनाशनः ॥

निष्पाव यह लोक में राजशिम्बी का बीज अथवा भटवांसु इस नाम से प्रसिद्ध है। इसके संस्कृत नाम-निष्पाव, राजशिम्बि, वल्लक तथा श्वेतशिम्बिक ये सब हैं। निष्पाव—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में अम्लरसयुक्त, रूक्ष, गुरु, सारक, विदाही, उष्ण और दुग्ध-पित्त तथा रक्त को बढाने वाला, मूत्र तथा वात का विबन्ध करने वाला एवम्-विष-कफ-शोथ तथा शुक्र का नाशक होता है ॥ ४६-४७ ॥

७ निष्पाव

हि०—निष्पाव, भटवांसु, बल्लार, सेम । बं०—मखानसिम । म०—पावटे, वाल । गु०—ओलीया, ओलियवाल । क०—अवरे । ते०—अनुमुल । ता०—मोचै । अं०—Flat Bean (फ्लैट बीन) । ले०—*Dolichos lablab Linn.* (डोलिकोस् लबलब्) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी) ।

यह जंगली तथा कृषित दोनों प्रकार का सभी स्थानों पर होता है। दक्षिण में विशेष रूप से मैसूर में यह अधिक होता है।

इसकी लता होती है। पत्ते-त्रिपत्रक होते हैं। पुष्प-सीधे दण्ड पर विभिन्न रंगों के किन्तु विशेष रूप से गुलाबी और श्वेत रहते हैं। फली-आयताकार, ३ इञ्च लम्बी तथा ४ से ६ बीज युक्त होती है। हरी फलियों के ऊपर की तैल ग्रन्थियों से दुर्गन्धयुक्त तैल निकलता है। इसके अनेक प्रकार, बीजों के रंग, आकार आदि के अनुसार होते हैं।

रासायनिक संगठन—अखंड बीज में जल १४·६, प्रोटीन १७·१, स्नेह २·२, कार्बोहाइड्रेट ५७·४, रेशा ५·० एवं राख ३·६ भाग रहती है। दाल में जल १२·१, प्रोटीन २४·४, स्नेह १·५, कार्बोहाइड्रेट ५७·८, रेशा १·२ एवं राख ३ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—इसकी हरी फलियों का साग खाया जाता है। कफज विकारों में इसे देते हैं। मूल विषैले माने जाते हैं।

अथ वनमुद्गः [मोठ] । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मकुष्ठो वनमुद्गः स्यान्मकुष्ठकमुकुष्ठकौ ॥ ४८ ॥
मकुष्ठो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः । वह्निजिन्मधुरः पाके क्रिमिकृज्ज्वरनाशनः ॥ ४९ ॥

मोठ के संस्कृत नाम—मकुष्ठ, वनमुद्ग, मकुष्ठक और मुकुष्ठक ये सब हैं।

मोठ—वातकारक, ग्राही, कफ तथा पित्त की नाशक, लघु, अग्नि को जीतने वाली, पाक में मधुर रसयुक्त, कृमिकारक तथा ज्वरनाशक होती है ॥ ४८-४९ ॥

८ मोठ

हि०—मोठ, मोट । बं०—वनमूग । म०—मटक्या, मठ । गु०—मठ । क०—मडकी । ते०—वनमुद्ग चेट्टु । ता०—तुक्कप्पारै । फा०—माषहिन्दी, माशहिन्दी । अं०—Aconite Leaved Kidney

Bean (एकोनाईट लीव्ड किडनी बीन्) । ले०—*Phaseolus aconitefolius Jacq.* (फेसीओलस एकोनाइटीफोलीयस्) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी) ।

यह भी अनेक प्रान्तों में होती है। इसका क्षुप-मुद्गपर्णी की तरह फैला हुआ तथा अल्प रोमश होता है। पत्ते-त्रिपत्रक होते हैं। पुष्प-छोटे होते हैं। फली-दृढ तथा बीज बड़े होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन २३, कार्बोहाइड्रेट ५६, अत्यल्प तेल, रेशा ४ तथा राख ३½ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—आहार के रूप में दाल का उपयोग किया जाता है। इसको ज्वर में देते हैं। मूल मादक होता है।

अथ मसूरः (मसूरी) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मङ्गल्यको मसूरः स्यान्मङ्गल्या च मसूरिका । मसूरो मधुरः पाके संग्राही शीतलो लघुः ॥
कफपित्तास्रजिद्रूक्षो वातलो ज्वरनाशनः ॥ ५० ॥

मसूरी के संस्कृत नाम—मङ्गल्यक, मसूर, मङ्गल्या तथा मसूरिका ये सब हैं।

मसूरी—विपाक में मधुर रसयुक्त, ग्राही, शीतल, लघु, वातकारक, रूक्ष एवम्-कफ-पित्त-रक्तविकार तथा ज्वर को दूर करने वाली होती है ॥ ५० ॥

९ मसूर

हि०—मसूर, मसूरक, मसुरी । बं०—मसुरि । म०—मसूर । गु०—मसूर । क०—चणगि । ता०—मिसुर । ते०—मसूर पप्पु । फा०—अदस, नेव सुर्ख, बिलुक, मरजूमक । अ०—अदस् । अं०—Lentil (लेंटिल्) । ले०—*Ervum lens Linn.* (एर्वम् लेन्स); Lens culinaris Medic (लेन्स कलिनेरिस्) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)

यह समस्त भारत में शीतकाल में बोया जाता है। इसका क्षुप-१ से २ फीट ऊँचा, सीधा, झाड़ीदार एवं चने की तरह होता है। पत्ते-संयुक्त, पक्षवत् एवं अग्र सूत्रसम होता है। पत्रक-४ से ६ जोड़े, अवृन्त, मालाकार एवं छोटे होते हैं। पुष्प-सफेद, बैंगनी या गुलाबी, विभिन्न प्रकार के भेदानुसार होते हैं। फली-छोटी, ½ इञ्च लम्बी एवं २ बीज युक्त होती है। बीज-गोल, किंचित् चिपटे तथा भूरे रंग के होते हैं। दाल-लाल रंग की होती है।

रासायनिक संगठन—दाल में प्रोटीन २५, कार्बोहाइड्रेट ६०, स्नेह १ तथा राख २ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—दाल की तरह इसे खाते हैं। यह पौष्टिक किन्तु उष्ण मानी जाती है। विबंध में इसको देते हैं। पुराने व्रण में इसको पीसकर लगाते हैं।

अथाढकी (अरहर) । तस्य नामगुणानाह

आढकी तुवरी चापि सा प्रोक्ता शणपुष्पिका ॥ ५१ ॥
आढकी तुवरा रूक्षा मधुरा शीतला लघुः । ग्राहिणी वातजननी वर्ण्या पित्तकफास्रजित् ॥ ५२ ॥

अरहर के संस्कृत नाम—आढकी, तुवरी और शणपुष्पिका ये सब हैं।

अरहर—कषाय तथा मधुर रसयुक्त, रूक्ष, शीतल, लघु, ग्राही, वातजनक, शरीर के वर्ण को उत्तम करने वाली एवम् पित्त-कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाली है ॥ ५१-५२ ॥

१० अरहर

हि०–अरहड़, अड़हर, रहर, रहरी, रहड़, तूर। **बं०**–आढ़री, अडर। **म०**–तुरी, तूर। **गु०**–तुरदाल्य, तुवर। **क०**–तोगरि। **ते०**-कंदुलु। **ता०**–तोवरै। **फा०**–शाखुल। **अ०**–शाखुल, शांज्। **अं०**–Pigeon Pea (पीजन् पी); Red Gram (रेड ग्राम)। **ले०**–*Cajanus indicus* Spreng. (केजेनस् इन्डीकस्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। इसका **वृक्ष**–४–१० फीट ऊंचा एवं झाड़दार होता है। **पत्ते**–त्रिपत्रक रहते हैं। पत्रक–१॥–२ इञ्च लम्बे एवं आयताकार भालाकार होते हैं। इनके अधःपृष्ठ पर सूक्ष्म ग्रन्थियां होती हैं। **पुष्प**–पीले एवं बैंगनी धारीयुक्त होते हैं। **फलियां**–२–४ इंच लम्बी होती हैं। प्रत्येक फली में ३ से ५ तक बीज रहते हैं। बीज को ही अरहर कहते हैं। यद्यपि इसके अनेकों भेदोपभेद होते हैं तथापि इनके दो प्रकार (Variety), अरहर एवं तूर (var. bicolor; var. flavus) होते हैं। प्रथम का वर्णन ऊपर दिया हुआ है। द्वितीय में क्षुप छोटा, पुष्प पीत, फली छोटी एवं २ से ३ बीजयुक्त हुआ करती है। यह जल्दी परिपक्व होती है। बीजों से दाल बनाने की दो विधियां प्रचलित हैं। एक में आर्द्र करके बनाते हैं तथा दूसरे में वैसे ही दल कर बनाते हैं। दल कर बनाने में दाल अच्छी होती है तथा जल्दी पकती है किन्तु दलने में टूटने से मंहगी पड़ती है। भिगो कर बनाने में अधिक दाल निकलती है किन्तु यह देर में पकती है। अच्छी दाल मोटी, छोटी तथा गोल होती है तथा दूसरी चिपटी, बीच में छोटे गर्तदार, पतली तथा बड़ी होती है जो जल्दी नहीं पकती।

रासायनिक संगठन—दाल में प्रोटीन २२·३, स्नेह १·७, खनिज ३·६, कार्बोहाइड्रेट ५७·२ भाग एवं खटिक, फास्फोरस, विटामिन 'ए' तथा 'बी' १ पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका भोजन में बहुत उपयोग किया जाता है। इसके पत्ते तथा दाल को पीसकर, गरम करके स्तन पर दूध बंद करने के लिये बांधते हैं। दाल के लेप से शोथ कम होता है कामला में पत्तों का रस जरासा सैंधव मिलाकर पिलाते हैं।

अथ चणकः (चना)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

चणको हरिमन्थः स्यात्सकलप्रिय इत्यपि। चणकः शीतलो रूक्षः पित्तरक्तकफापहः।
लघुः कषायो विष्टम्भी वातलो ज्वरनाशनः ॥ ५३ ॥

चना के संस्कृत नाम—चणक, हरिमन्थ और सकलप्रिय ये सब हैं।

चना—कषायरसयुक्त, शीतल, रूक्ष, लघु, विष्टम्भक, वातकारक एवम् पित्त-रक्तविकार-कफ तथा ज्वर का नाशक है ॥ ५३ ॥

अथ भर्जनादिभेदेन तस्य गुणभेदानाह

स चाङ्गारेण सम्भृष्टस्तैलभृष्टश्च तद्गुणः। आर्द्रभृष्टो बलकरो रोचनश्च प्रकीर्त्तितः ॥ ५४ ॥
शुष्कभृष्टोऽतिरूक्षश्च वातकुष्ठप्रकोपणः। स्विन्नः पित्तकफं हन्यात् सूपः क्षोभकरो मतः॥५५॥
आर्द्रोऽतिकोमलो रुच्यः पित्तशुक्रहरो हिमः। कषायो वातलो ग्राही कफपित्तहरो लघुः॥

भुने हुए आदि भेदों से चने के गुणों में भेद—अङ्गारे (केवल अग्नि) से भुने हुये चने के गुण—यदि चना केवल अग्नि से भुना हुआ हो तो पूर्वोक्त गुणों से युक्त होता है। तेल में भुना हुआ चना भी पूर्वोक्त गुणों से युक्त होता है। गीला भुना हुआ चना—बलदायक तथा रुचिकारक होता है। सूखा भुना हुआ चना—अत्यन्त रूक्ष एवं वात तथा कुष्ठ को कुपित करने वाला होता है। उबाला हुआ चना–पित्त तथा कफ का नाशक होता है। चने की रांधी हुई दाल–क्षोभ उत्पन्न करने वाली होती है। भिगोया हुआ चना—कषाय रसयुक्त, अत्यन्त कोमल, रुचिकारक, शीतल, वातजनक, ग्राही, लघु, एवम्–पित्त, शुक्र तथा कफ-पित्त को नष्ट करने वाला होता है। इसके पत्तों के गुण आगे शाकवर्ग में दिये हुवे हैं ॥ ५४–५६ ॥

११ चना

हि०–चने, छोला, रहिला, बूंट। **म०**–हरबरा, चणें। **बं०**-छोला। **गु०**–चण्या, चणा। **क०**–कडले। **ता०**–कडलै। **ते०**–सनगलु। **फा०**–नखूद। **अ०**–हमस। **पं०**–छोले। **अं०**–Gram (ग्राम); Bengal Gram (बेंगाल ग्राम); Chick Pea (चिक् पी)। **ले०**–*Cicer arietinum Linn.* (सीसर् एरीएटीनम्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में प्रतिवर्ष इसकी खेती की जाती है। इसका **क्षुप**—सीधा या फैला हुआ, अनेक शाखायुक्त, १ से १½ फीट ऊंचा एवं रोमश होता है। **पत्ते**–पक्षवत होते हैं जिनके पत्रक दीर्घवृत्ताभ, ६ मि० मी० लम्बे, ४ मि० मी० चौडे, दन्तुर एवं ग्रन्थियुक्त रोमों से आवृत रहते हैं। **पुष्प**–छोटे, एकाकी तथा पत्रकोण में आते हैं जो विभिन्न प्रकारों में भिन्न-भिन्न रंग एवं नाप के होते हैं। **फली**–आयताकार, ¾–१ इञ्च लम्बी तथा प्रायः दो बीजों से युक्त होती है। **बीज**–गोल, नोकदार, ०·२–०·४ इञ्च व्यास के, चिकने या सिकुड़नदार, भूरे, पीले या श्वेत रंग के होते हैं। पत्तों पर रहने वाले रोम ग्रन्थियों से एक प्रकार का अम्ल स्राव होता है जिसका पहले हरीतक्यादि वर्ग (पृ० १६२) में 'चणकाम्ल' के नाम से वर्णन किया जा चुका है। चने के रंग तथा नाप के अनुसार कई भेद किये गए हैं जिनमें मुख्य दो वर्ग हैं। प्रथम में सभी रंगों के चने आते हैं। दूसरे में काबुली आते हैं जो सफेद एवं बहुत बड़े होते हैं। कुछ विद्वानों ने काबुली के क्षुप को भिन्न जाति (Species) का माना है।

रासायनिक संगठन—चने में प्रोटीन १७·१, स्नेह ५·३, खनिज २·७, रेशा ३·९, कार्बोहाइड्रेट ६१·२, खटिक, फास्फोरस, विटामिन 'ए' तथा बी१ एवं आर्द्रता ९·८ रहती है। छिलके निकाले भुने हुये चने में प्रोटीन २२·५, स्नेह ५·२, खनिज २·२, रेशा ०, कार्बोहाइड्रेट ५८·९, खटिक, फास्फोरस एवं आर्द्रता ११·२ रहती है।

गुण और प्रयोग—चने का विभिन्न रूपों में आहार द्रव्य के रूप में उपयोग किया जाता है।

अथ कलायः (मटर)। तस्य नामगुणानाह

कलायो वर्त्तुलः प्रोक्तः सतीनश्च हरेणुकः। कलायो मधुरः स्वादुः पाके रूक्षश्च शीतलः ॥५७॥

मटर के संस्कृत नाम—कलाय, वर्त्तुल, सतीन तथा हरेणुक ये सब हैं।

मटर—मधुर रसयुक्त, विपाक में भी मधुर, रूक्ष तथा शीतल होता है। इसके साग का वर्णन आगे शाकवर्ग में दिया हुआ है ॥ ५७ ॥

१२ मटर

हिं०–मटर, मट्टर। **बं०**–मटर। **म०**–वाटाणे। **गु०**–मटाणा, वटाणा। **क०**–बटाणि। **ते०**–गुंडुसानगलु। **ता०**–पटाणी। **फा०**–जलबान, कसंग। **अ०**–खलज, हुब्बुल बकर। **अं०**–Field Pea (फील्ड पी); Garden Pea (गार्डन् पी)। **ले०**–*Pisum sativum Linn.* (पाइसम् सॉटिवम्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

मटर—एक प्रसिद्ध खाद्य अन्न प्रायः सब प्रान्तों में प्रतिवर्ष बोया जाता है।

इसका क्षुप-वर्षायु तथा सूत्रों के द्वारा आरोहणशील होता है। पत्ते–पक्षवत्, पत्रक १ से ३ जोड़े, अंतिम सूत्रों में परिवर्तित तथा पत्राधार फूला हुआ होता है। पुष्प–अनियमिताकार, द्विलिंगी एवं अपने वर्गविशिष्ट स्वरूप का होता है। फली–अनेक बीजों से युक्त, चिपटी, लंबी तथा अग्र पर कुछ टेढ़ी नोकदार होती है। इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन २१, कार्बोहाइड्रेट ५४, स्नेह १, रेशा ५ एवं राख २ भाग रहती है। इसमें ट्राइगोनेल्लीन (Trigonelline) नामक क्षाराभ पाया जाता है। परिपक्व बीजों के तेल में लैंगिक हारमोन विरोधी गुण रहता है। इससे पौरुष हारमोन निष्क्रिय होकर वन्ध्यत्व प्राप्त होता है।

गुण और प्रयोग—कच्चे मटर से दस्त होते हैं। आहार में इसको अन्न की तरह व्यवहार में लाते हैं।

अथ त्रिपुटः (खेसारी)। तस्य नामगुणानाह

त्रिपुटः खण्डिकोऽपि स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। त्रिपुटो मधुरस्तिक्तस्तुवरो रूक्षणो भृशम्॥
कफपित्तहरो रुच्यो ग्राहकः शीतलस्तथा। किन्तु खञ्जत्वपङ्गुत्वकारी वातातिकोपनः॥५९॥

खेसारी के संस्कृत नाम—त्रिपुट तथा खण्डिक ये दो हैं।

खेसारी - मधुर, तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, अत्यन्त रूक्ष, रुचिकारक, ग्राही, शीतल एवम् कफ तथा पित्त को नष्ट करनेवाली होती है और सेवन करने से लंगड़ा तथा पंगुला बना देने वाली और वायु को अत्यन्त कुपित करनेवाली होती है॥ ५८–५९॥

१३ खेसारी

हि–खेंसारी, खिसारी, कसूर, मटरभेद। बं०–खेसारी। म०–लाग। गु०–लांग। फा०–मासंग। अ०–हुब्बुल वकर, खलज। अं०–Chickling Vetch (चिक्लिंग वेच)। ले०–*Lathyrus sativus Linn.* (लैथीरस् सेटीवस्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है और उत्तर भारत में अधिक उत्पन्न होती है। इसकी शाखायें पंखदार होती हैं। पत्ते-पक्षवत् तथा अग्र २ या ३ सूत्रों में विभाजित रहते हैं। पत्रक पतले, १–२½ इञ्च लंबे, रेखाकार–भालाकार, लम्बाग्र एवं संख्या में २–४ रहते हैं। फूल–नीलापन युक्त लाल या श्वेत होते हैं। फलियाँ–१–१॥ इञ्च लम्बी, एक किनारे पर पंखदार तथा ४ से ५ बीजों से युक्त होती हैं। अकाल के समय गरीब इसकी दाल खाते हैं। इसका चारे के रूप में उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—बीजों में एक विषैला पदार्थ होता है।

गुण और प्रयोग—बीजों का तेल तीव्र तथा हानिकारक विरेचक होता है। इसकी दाल खाने से लकवा जैसा लॅथिरिज्म (Lathyrism) नामक रोग होता है। यह रोग जानवरों को भी होता है। कुछ विद्वानों के मत से इसके साथ मिले अन्य द्रव्यों के कारण यह रोग होता है।

अथ कुलत्थः (कुलथी)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

कुलत्थिका कुलत्थश्च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥ ६०॥
कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत्। लघुर्विदाही वीर्योष्णः श्वासकासकफानिलान्॥
हन्ति हिक्काऽश्मरीशुक्रदाहानाहान् सपीनसान्। स्वेदसंग्राहको मेदोज्वरक्रिमिहरः सरः॥

कुलथी के संस्कृत नाम—कुलत्थिका तथा कुलत्थ ये दो हैं।

कुलथी—कषायरसयुक्त, विपाक में कटुरसयुक्त, पित्त तथा रुधिर विकार को करने वाली, लघु, विदाही, उष्णवीर्य, पसीने को रोकने वाली, सारक एवम्–श्वास, कास, कफ, वायु, हिचकी, पथरी, शुक्र, दाह, आनाह (अफरा), पीनस, मेद, ज्वर तथा क्रिमिको दूर करने वाली होती है॥

१४ कुलथी

हि०–कुरथी, कुलथी। म०–कुळीथ। क०–हुरूली। ते०–उलवलु। गु० कुलथी। ता०–कोळ्ळु। फा०–किलत, माशहिन्दी, हब्बुल्कलत। अं०–Horse-gram (हॉर्स ग्राम)। ले०–*Dolichos biflorus Linn.* (डोलिकोस् बाईफ्लोरस्)। Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी)।

कुलथी– इस देश में प्रायः सर्वत्र होती है। दक्षिण में जानवरों को खिलाने के लिये इसकी बहुत खेती की जाती है।

इसका क्षुप—झाड़ीदार, आरोहणशील, पतला, धूसर रोमश, १२ से १८ इञ्च ऊंचा एवं मूल से अनेक पतली शाखाओं से युक्त होता है। पत्ते–त्रिपत्रक एवं २ इञ्च लंबे वृन्तयुक्त होते हैं। पत्रक–पीताभ हरे, १½ इञ्च लम्बे, तिर्यक् अंडाकार एवं अग्र तीक्ष्ण और रोमश होता है। पुष्प–छोटे पीताभ श्वेत रंग के आते हैं। फली–चिपटी, १½–२ इञ्च लम्बी, ¼ इञ्च चौड़ी तथा कुछ टेढ़ी होती है। बीज–५–६ हल्के लाल, काले चितकबरे, चिपटे, ⅛–¼ इंच बड़े एवं चमकीले होते हैं। इसको विशेष रूप से घोड़ों को खिलाते हैं। इसको बिना दाल बनाये ही उपयोग में लाते हैं। गरीब इसको खाते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में प्रोटीन २२, स्नेह ०·५, खनिज ३·१, रेशा ५·३, कार्बोहाइड्रेट ५७.३, खटिक ०·२८, फास्फोरस ०·३९%, लोह ७·६ मि० ग्रा०, निकोटिनिक् ॲसिड १·५ मि० ग्रा० एवं विटामिन 'ए' ११९ एकक प्रति १०० ग्राम में पाया जाता है। इसमें युरिएस् (Urease) काफी होता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, मूत्रल, वात-कफनाशक, मेदहर एवं अश्मरीघ्न है। इसका क्वाथ अश्मरी, श्वास, कास एवं श्वेतप्रदर में दिया जाता है।

मात्रा—३ से ६ माशा।

अथ तिलः। तस्य तद्भेदानां च गुणानाह

तिलः कृष्णः सितो रक्तः सवन्योऽल्पतिलः स्मृतः। तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः॥
विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनुत्।
बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः॥ ६४॥
दन्त्योऽल्पमूत्रकृद् ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः। कृष्णः श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्लो मध्यमः सितः॥
अन्ये हीनतरः प्रोक्तास्तज्ज्ञै रक्तादयस्तिलाः॥ ६५॥

तिल का संस्कृत नाम—तिल ही है। भेद—काले, सफेद तथा लाल रङ्गों के भेद से तिल ३ प्रकार के होते हैं। जो तिल जङ्गलों में होता है वह वन्यतिल और अल्पतिल नाम से प्रसिद्ध है।

तिल—कटु, तिक्त, मधुर तथा कषाय रसयुक्त, विपाक में कटुरस युक्त, स्वादिष्ट, गुरु, स्निग्ध, उष्ण, कफ तथा पित्तनाशक, बलकारक, केशों के लिये हितकर, स्पर्श में शीतल, त्वचा के लिये हितकर, दुग्धवर्धक, व्रण में लाभ पहुँचाने वाला, दांतों के विकारों को दूर करनेवाला, थोड़ा

मूत्रकारक, ग्राही, वातनाशक, जठराग्नि तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला होता है। तिलों में काला तिल—वीर्यवर्धक तथा सर्वोत्तम होता है। सफेद तिल—गुणों में मध्यम होता है। इससे अन्य जो लाल वगैरे तिल हैं वे गुणों में अत्यन्त हीन हैं ऐसा निघण्टु के विद्वानों का मत है॥ ६६–६५॥

१५ तिल

हि०–तिल, तील, तिली। **बं०**–तिलगाछ। **म०**–तीळ। **गु०**–तल। **क०**–बुरलेरलु। **ते०**–नुव्वुलु। **ता०**–एल्लु। **फा०**–कुंजद। **अ०**–सिमासिम, बजरुल्खुस खाशुकवरीं। **अं०**–Gingelli (जिंजेल्ली), Sesame (सीसेम)। **ले०**–*Sesamum indicum* *Linn.* (सिसेमम् इंडिकम्)। Fam. Pedaliaceae (पेडालिएसी)।

इसकी प्रायः सभी प्रान्तों में खेती की जाती है। इसका क्षुप–२½ से ४½ फीट ऊँचा, काण्ड चौपहल एवं अनेक शाखायुक्त होता है। पत्ते–नीचे से ऊपर विभिन्न प्रकार के, दन्तुर या अखण्ड होते हैं। पुष्प–विभिन्न रंगों के, श्वेत से लेकर गहरे बैंगनी रंग के एवं नलिकाकार द्वयोष्ठ होते हैं। फली–१½ से २ इञ्च लंबी, करीब ½–१ इञ्च गोलाई में एवं अनेक बीजों से युक्त होती है। बीज–विभिन्न प्रकार के अनुसार श्वेत, मन्दश्वेत, हलके भूरे, गहरे भूरे या काले रंग के हुआ करते हैं। ये चिपटे, अंडाकार तथा एक इञ्च की लम्बाई में ६ से ८ तथा चौड़ाई में १० से १२ आते हैं। विभिन्न ऋतुओं में बोने के अनुसार इनके भेद हुआ करते हैं।

रासायनिक संगठन—इनमें प्रकार तथा स्थानभेद से तेल की मात्रा ३७–५७% एवं कार्बोहाइड्रेट १४ से २२% एवं प्रोटीन २१ से २६% पाया जाता है। काले तिल में प्रोटीन अधिक तथा कार्बोहाइड्रेट कम रहता है। भूरे की अपेक्षा श्वेत में प्रोटीन अधिक पाया जाता है। ताजे पत्तों में काफी लुआब रहता है।

गुण और प्रयोग– तिल का तथा इसके तेल का उपयोग नित्य के व्यवहार में किया जाता है। यह स्नेहन, आनुलोमिक, मूत्रजनन, वाजीकर, आर्तवजनन, स्तन्यजनन, बल्य, व्रणशोधन रोपण तथा केशवर्धन है।

(१) अर्श में इसको मक्खन के साथ खिलाते हैं तथा पीसकर गरमकर इससे सेकते हैं।

(२) मछली खाकर अजीर्ण हो तो इसके पंचांग का क्षार देते हैं। उदर शूल में तिल को सुगंधि पदार्थ के साथ पीसकर गोली बनाकर देते हैं। तिल से दांत मजबूत रहते हैं।

(३) खांसी में तिल का क्वाथ, चीनी मिलाकर पिलाते हैं। सूखी खांसी में ताजे पत्तों का हिम थोड़ा थोड़ा पिलाते हैं।

(४) मूत्राश्मरी में तिलक्षार दूध तथा शहद के साथ देते हैं।

(५) इसका गर्भाशय पर संकोचक प्रभाव होने से अनार्तव इत्यादि में से इसका उपयोग करते हैं।

(६) इसका पुल्टिस व्रण पर बांधते हैं। तेल का भी उपयोग व्रण पर लगाने के लिये करते हैं।

मात्रा—बीज १ से २ तोला; पंचांगक्षार ५ से १५ रत्ती।

अथातसी (तीसी)। तस्या नामगुणानाह

अतसी नीलपुष्पी च पार्वती स्यादुमा क्षुमा॥ ६६॥
अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरुः। उष्णा दृक्छुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी॥

तीसी के संस्कृत नाम—अतसी, नीलपुष्पी पार्वती, उमा तथा क्षुमा ये सब हैं।

तीसी—मधुर तथा तिक्त रसयुक्त, स्निग्ध, विपाक में कटुरसयुक्त, गुरु, उष्ण एवम् नेत्रों की शक्ति, शुक्र, वात, कफ तथा पित्त को दूर करनेवाली होती है॥ ६६-६७॥

१६ तीसी

हि०–तीसी, तिसी, अलसी, मसीना। **बं०**–तिसी, मसीना। **म०**–जवस, अळशी। **गु०**–अलशी। **क०**–अगसि। **ते०**–अविसि। **ता०**–अलिविराई। **फा०**–तुख्मे कतान, बजुरग, बजुर्ग। **अ०**–बजरूल कतान, बजरूल कनाव, बजरुलकर्ता। **अं०**–Common Flax (कामन फ्लेक्स), Linseed (लिन्सीड)। **ले०**–*Linum usitatissimum Linn.* (लीनम् यूसिटेटिसिमम्)। Fam. Linaceae (लिनेसी)।

तीसी—प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में बोई जाती है। इसका पौधा–१॥–२ फीट ऊँचा होता है। पत्ते–छोटे, रेखाकार या भालाकार एवं ३ शिराओं से युक्त होते हैं। फूल–नीले रङ्ग के घंटाकार; फल–गोल घुंडी सा ऊपर को नोकीला एवं ५ कोषयुक्त होता है। बीज–प्रत्येक कोष में १० के करीब, चिपटे, चिकने, गहरे भूरे एवं चमकीले होते हैं।

पीले एवं श्वेत रंग के बीजों के भेद मध्यभारत तथा राजपुताना में होते हैं जिनमें तेल अधिक मात्रा में तथा कुछ हलके रंग का निकलता है। भूरे में भी छोटे बड़े भेद होते हैं। बड़े में तेल अधिक रहता है। इसके बीज एवं तेल का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। तेल का वार्निश, पेन्ट आदि में उपयोग करते हैं। कांड से लिनेन (Linen) तन्तु बनाते हैं जिसके कपड़े बनाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—तीसी में तेल ३८ से ४५% रहता है। घानी से निकालने में २५–३०% ही प्राप्त होता है। इसमें प्रोटीन २०–२५%, पिच्छिल द्रव्य ६%, मोम, राल, फास्फेट, शर्करा १८% एवं अल्प ग्लाइकोसाइड, लिनामेरिन (Linamarin) रहता है। इसके पुष्प एवं अपक्व बीजों में हाइड्रोसाइनिक् अम्ल ०·६९% तक एवं क्षाराभ लिपरीन (Liparine) रहता है।

गुण और प्रयोग– इसके बीज, स्नेहन, मार्दवकर, बल्य, वेदनास्थापन, मूत्रजनन एवं वातहर हैं। तेल विरेचन एवं व्रणरोपण है।

(१) इसके तेल को या बीजों को सौम्यविरेचक रूप में देते हैं। (२) बीजों को कूटकर, पानी मिलाकर, पकाकर, पुल्टिस के रूप में शोथ आदि पर बाँधने से नवीन शोथ दब जाता है या पककर जल्दी फूट जाता है। इसका तेल तथा चूने का पानी मिला जले पर लगाते हैं। (३) इसके बीजों का फाँट खाँसी में देते हैं।

मात्रा—तेल २ से ४ ड्राम; बीज १ बड़ा चम्मच।

अथ तुवरी ("तोरी, तोडिस" इति लोके)। तस्या गुणानाह

तुवरी ग्राहिणी प्रोक्ता लघ्वी कफविषास्रजित्। तीक्ष्णोष्णा वह्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमिप्रणुत्॥

तुवरी (जिसे लोक में तोरी या तोडिस कहते हैं) के गुण—तोरी-ग्राही, लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, जठराग्निवर्धक एवम्—कफ, विष, रक्तविकार, खुजली, कुष्ठ तथा कोष्ठस्थित क्रिमि को दूर करनेवाली होती है॥ ६८॥

१७ तोरी

हि०–तोरी, तीरा, लाही, तारा मिरा, सेओहा, तिउरा । **पं०**–असू, तारा । **बं०**–सेतसरिश । **अं०**–Rocket Salad (राकेट सलाद) । **ले०**–*Eruca sativa Mill.* (एरुका सटाइवा) । Fam. Cruciferae (क्रुसीफेरी) ।

यह पश्चिम हिमालय में १० हजार फीट की ऊँचाई तक होती है। उत्तरभारत में इसकी खेती की जाती है। पंजाब एवं अल्पमात्रा में उत्तरप्रदेश तथा ग्वालियर में शीतकालीन फसलों के साथ इसको बोते हैं।

इसका क्षुप—सरसों के जैसा होता है। यह २ से ४ फीट ऊँचा होता है। पत्ते २ से ७ इञ्च लम्बे, मांसल, दन्तुर, आधे से अधिक पक्षवत् खण्डित एवं खण्ड प्रायः रेखाकार–आयताकार होते हैं। पुष्प–बड़े, श्वेताभ या पीताभ एवं बैंगनी शिराओं से युक्त होते हैं। फली एक इञ्च लंबी, सीधी, ऊपर की ओर उठी हुई एवं काण्ड से लगी हुई होती है। बीज–अनेक, छोटे, हलके रक्ताभ भूरे, अंडाकार, चिकने एवं प्रत्येक कोष्ठ में दो कतारों में रहते हैं। राई, सरसों में इसकी मिलावट की जाती है। इसके तेल को लोग जलाने, खाने एवं मालिश इत्यादि के काम में लाते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में से २०% हलके पीले रंग का, कुछ कड़वा एवं तीक्ष्ण गंध का तेल प्राप्त होता है। उत्तरप्रदेश के बीजों का तेल पंजाब की अपेक्षा कम तीक्ष्ण होता है। यह तेल ५, ६ महिने रखने से उसकी तीक्ष्णता कम हो जाती है। इसमें एक तीक्ष्ण गंध का उड़नशील तेल भी होता है जिसे चर्म पर लगाने से दाह होता है।

गुण और प्रयोग—इसके नये पत्ते दीपन एवं मूत्रल होते हैं इसके बीज सरसों की तरह प्रतिक्षोभक होते हैं। चर्मरोगों में तेल का उपयोग किया जाता है। कोमल पौधों का साग बनाते हैं।

अथ सर्षपो रक्तः—पीतश्च (लाल सरसों और पीली सरसों)। तयोर्नामगुणानाह

सर्षपः कटुकः स्नेहस्तुन्तुभश्च कदम्बकः । गौरस्तु सर्षपः प्राज्ञैः सिद्धार्थ इति कथ्यते ॥६९॥
सर्षपस्तु रसे पाके कटुः स्निग्धः सतिक्तकः । तीक्ष्णोष्णः कफवातघ्नो रक्तपित्ताग्निवर्धनः ॥
रक्षोहरो जयेत्कण्डूं कुष्ठकोष्ठक्रिमिग्रहान् । यथा रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः ॥७१॥

सरसो (लाल सरसो) के संस्कृत नाम—सर्षप, कटुक, स्नेह, तुन्तुभ और कदम्बक ये सब हैं। सफेद सरसो (पीली सरसो) का संस्कृत नाम—गौर सर्षप और सिद्धार्थ है। सरसो–विपाक में कटुरस युक्त, स्निग्ध, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, कफ और वात का नाशक, रक्तपित्त तथा जठराग्नि को बढ़ाने वाला, रक्षों की बाधा को दूर करनेवाला एवम् खुजली, कुष्ठ, कोष्ठस्थित क्रिमि तथा ग्रहबाधा को नष्ट करनेवाला होता है। सफेद सरसो, गुणों में यद्यपि लाल सरसो के समान ही है तथापि अपेक्षाकृत सफेद ही उत्तम होता है। सरसो के शाक का वर्णन आगे शाकवर्ग में दिया हुआ है ॥ ६९–७१ ॥

१८ सरसों

हि०–सरसों, सरिसो, सर्सो । **बं०**–सरीसा । **म०**–शिरशी । **गु०**–शरशव, सरशव । **क०**–सासवे । **ते०**–आवालु । **ता०**–कडुगु । **फा०**–सर्षफ, सरशफ, सिपन्दान । **अ०**–उर्फ अबीयद, खर्दल अबयज़, हुर्फ । **अं०**–Yellow Sarson (यलो सरसों); Indian Colza (इण्डियन कोलजा) । **ले०**–*Brassica campestris var. sarson Prain* (ब्रासिका कैम्पेस्ट्रिस् वेराइटी सरसों) । Fam. Cruciferae (क्रूसीफेरी) ।

इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश एवं पंजाब में यह अधिक होती है। इसका क्षुप–२ से ५ फीट तक ऊँचा होता है। **पत्ते**–काण्ड की जड़ से सटे हुए, लम्बे, गहरे कटे किनारे वाले और चिकने होते हैं। **फूल**–अत्यन्त सुहावने पीले रङ्ग के आते हैं। **फलियाँ**–२–३ इञ्च लम्बी और गोल होती हैं। इनमें से जो पीले रङ्ग के बीज निकलते हैं उन्हीं को सरसों कहते हैं।

इसके कई प्रकार पाये जाते हैं। रंग भेद से पीला तथा भूरा, फली में के कोष्ठ की संख्यानुसार (२, ३, ४), फली की काण्ड के साथ की स्थिति, लटकी हुई या सीधी खड़ी के अनुसार ये भेद होते हैं। इससे 'सरसों का तेल' निकालते हैं सरसों के खाने के तेल में इसकी अन्य जातियों के बीजों का तेल भी मिला रहता है।

रासायनिक संगठन–इसमें ३५ से ४८% स्थिर तैल, ०·२७% उड़नशील तैल एवं प्रोटीन २०% एवं एरासिक् एसिड (Erucic acid) रहता है।

गुण और प्रयोग—इसका तेल खाने एवं मालिश के काम आता है। आमवातादि में कपूर मिलाकर इससे मालिश की जाती है। गरम जल में इसको मिलाकर पुलटिस के रूप में इसका प्रयोग करते हैं। इसमें का उड़नशील तैल प्रतिक्षोभक होता है एवं इसको चर्म पर लगाने से फोड़े आ सकते हैं।

अथ राजिका कृष्णराजिका च (राई, कृष्णराई)। तयोर्नामानि गुणांश्चाह

राजीतु राजिका तीक्ष्णगन्धा क्षुज्जनिकाऽऽसुरी । क्षवः क्षुताभिजनकः कृष्णिका कृष्णसर्षपः ॥
राजिका कफपित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा रक्तपित्तकृत् । किञ्चित् रूक्षाऽग्निदा कण्डूकुष्ठकोष्ठक्रिमीन्हरेत् ॥
अतितीक्ष्णा विशेषेण तद्वत्कृष्णाऽपि राजिका ॥ ७३ ॥

राई के संस्कृत नाम—राजी, राजिका, तीक्ष्णगन्धा, क्षुज्जनिका तथा आसुरी ये सब हैं। काली राई के संस्कृत नाम—क्षव, क्षुताभिजनक, कृष्णिका तथा कृष्णसर्षप ये सब हैं।

राई—कफ तथा पित्तनाशक, तीक्ष्ण, उष्ण, रक्तपित्तकारक, किञ्चित् रूक्ष, जठराग्निवर्धक एवम् खुजली, कुष्ठ तथा कोष्ठस्थित क्रिमि को दूर करनेवाली होती है।

काली राई यह वैसे तो गुणों में राई ही के समान होती है किन्तु उसकी अपेक्षा विशेषतः अत्यन्त तीक्ष्ण होती है ॥ ७२ ७३ ॥

१९ राई

हि०–राई, लाल राई, मांकड़ा राई । **बं०**–राइ, सरिषा । **म०**–राई । **गु०**–राई । **क०**–सासि । **ते०**–आवालु । **ता०**–कडुगु । **अ०**–खर्दल, खर्दल । **फा०**–सर्शफ । **अं०**–Indian Mustard (इंडियन मस्टर्ड) । **ले०**–*Brassica juncea Linn.* (ब्रासीका जून्सिआ) । Fam. Cruciferae (क्रूसीफेरी) ।

राई–सरसों के समान खेतों में बोई जाती है। क्षुप–सरसों के समान होता है। **पत्ते**–साधारण, एकान्तर, मूलीय एवं काण्डीय तथा गहरे कटे हुये होते हैं। **पुष्प**–चमकीले पीले होते हैं। **फली**–

पतली एवं आधार से फट जाती है। बीज-रक्ताभ भूरे, सरसों से छोटे एवं सिकुड़नदार होते हैं। इनसे भी तेल निकाला जाता है।

एक बनारसी राई और होती है जिसका लै० नाम *Brassica nigra Linn.* (ब्रासिका नाइग्रा) है। इसके बीजों पर सूक्ष्म जाली दिखलाई देती है। इनसे तेल नहीं निकालते किन्तु चटनी-अचार इत्यादि में इसे डालते हैं।

रासायनिक संगठन--राई में तेल ३५·५, प्रोटीन २४·६, रेशा ८ एवं राख ५·२ भाग रहती है। इसका तेल अधिक स्वच्छ तथा सरसों के जैसी गंध इसमें नहीं होती।

गुण और प्रयोग--कम मात्रा में यह दीपन, पाचन, उत्तेजक तथा स्वेदजनन है। अधिक मात्रा (४-८ माशा) से वमन होता है। इससे वमन कराने से बाद में थकावट नहीं आती।

इसका बाह्य प्रयोग लेप के रूपमें आन्तरिक शोथ में करते हैं। इससे त्वचा लाल होकर अधिक देर रखने से फोड़े भी होजाते हैं। इसे एक घंटे से अधिक कदापि न रखे। प्रतीश्याय में इसकातेल नाक एवं पावों पर मलते हैं।

अथ क्षुद्रधान्यम्। तस्य नामगुणानाह

क्षुद्रधान्यं कुधान्यं च तृणधान्यमिति स्मृतम्। क्षुद्रधान्यमनुष्णं स्यात्कषायं लघु लेखनम्॥ मधुरं कटुकं पाके रूक्षं च क्लेदशोषकम्। वातकृद् बद्धविट्कं च पित्तरक्तकफापहम्॥ ७५॥

क्षुद्रधान्य के संस्कृत नाम—क्षुद्रधान्य, कुधान्य तथा तृणधान्य ये सब हैं।

क्षुद्रधान्य—किञ्चित् उष्ण, कषाय तथा मधुर रस युक्त, लघु, लेखन, विपाक में कटु रसयुक्त, रूक्ष, क्लेद (आर्द्रता) को सुखाने वाला, वातकारक, मल को बांधने वाला एवम्-पित्त, रक्तविकार तथा कफ का नाशक होता है॥ ७४-७५॥

अथ कङ्गुः (कङ्गुनी) तस्य नामभेदगुणानाह

स्त्रियां कङ्गुप्रियङ्गू द्वे कृष्णारक्ता सिता तथा। पीता चतुर्विधा कङ्गुस्तासां पीता वरा स्मृता। कङ्गुस्तु भग्नसन्धानवातकृद् बृंहणी गुरुः। रूक्षा श्लेष्महराऽतीव वाजिनां गुणकृद् भृशम्॥

कङ्गुनी का संस्कृत नाम—कङ्गु तथा प्रियङ्गु (ये दोनों स्त्रीलिङ्ग हैं) हैं। भेद--काली, लाल, सफेद तथा पीली इन भेदों से कङ्गुनी ४ प्रकार की होती है। इनमें से पीली कंगुनी ही सर्वोत्तम होती है।

कंगुनी—टूटी हुई अस्थियों को जोड़ने वाली, वातकारक, बृंहण (रसरक्तादि वर्धक), गुरु, रूक्ष, अत्यन्त कफनाशक और घोड़ों के लिये विशेषरूप से गुण करनेवाली होती है॥७६-७७॥

२० कंगुनी

हि०-कंगुनी, कगनी, टंगुनी। बं०-कांगुनी। म०-कांग। ता०-तेनई। गु०-कांग। क०-नवणे। ते०-कोरलु। फा०-गाल, अरजुन। अं०-दुखन। लै०-*Setaria italica Beauv.* (सेटारिया इटेलिका)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

कंगुनी की खेती प्रायः सब प्रान्तों में होती है। यह ६ हजार फीट की ऊंचाई तक हो सकने के कारण हिमालय के तराई प्रदेश में भी इसे लोग बोते हैं। इसकी सालभर तक पैदावार की जा सकती है तथा यह १०० दिन में तैयार हो जाती है। अधिकतर वर्षा के प्रारम्भ में इसे बोते हैं।

इसका क्षुप-३-३½ फीट ऊंचा, पतला एवं बाल के बोझ से झुका हुआ होता है। पत्ते-१२-१८ इञ्च लम्बे, ½ इञ्च चौड़े, हलके हरे एवं रेखाकार मालाकार होते हैं। पुष्पव्यूह-अवृन्त काण्डज (Spike-स्पाइक्), ६-१२ इञ्च लम्बा, ¾-१½ इञ्च व्यास का तथा शूकयुक्त होता है। बाल-बाजरे के समान किन्तु उससे छोटे प्रायः ६ इञ्च लम्बे एवं ½-१½ इञ्च व्यास के होते हैं। भेद के अनुसार ये लंबे भी होते हैं।

धान्य विभिन्न रंगों के हुआ करते हैं। ये चिकने चमकीले, पीले, श्वेत, मलाई के रंग के नारंग रक्त, बैंगनी, काले, हरिताभ श्वेत एवं हलके पीत रंगों के होते हैं। बालों में से जो बारीक दाने निकलते हैं। उन्हीं को कंगुनी कहते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन ११, स्नेह ४, कार्बोहाइड्रेट ७०, रेशा ५ एवं राख ३ भाग रहती है। इसमें एक विषैला ग्लूकोसाइड तथा तैलीय क्षाराभ पाया गया है।

गुण और प्रयोग—चावल की तरह इसे लोग खाते हैं। प्रसवपीड़ा को कम करने के लिये इसका उपयोग करते हैं। आमवात में इसका लेप किया जाता है।

अथ चीनाकः (चीना) तस्य नामगुणानाह

चीनाकः काककङ्गुश्च सुरलक्ष्णः श्लक्ष्णकः स्मृतः।
चीनाकः कङ्गुभेदोऽस्ति स ज्ञेयः कङ्गुवद् गुणैः॥ ७८॥

चीना के संस्कृत नाम—चीनाक, काककंगु, सुश्लक्ष्ण, श्लक्ष्णक तथा कंगुभेद ये सब हैं।

चीना—कङ्गुनी का भेद है अतः इसके भी गुण कंगुनी के समान ही समझने चाहिये॥ ७८॥

२१ चीना

हि०-चीना, चिन्ना, चैना। बं०-चिने। म०-वरिवव। गु०-चीणे, चीणा। क०-बरगु। ता०-पनिवरगु। ते०-वरिगलु। अं०-Indian Millet (इंडियन मिलेट)। लै०-*Panicum miliaceum Linn.* (पेनीकम मिलिएसिअम्)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

सभी स्थानों पर इसकी खेती की जाती है। यह शीघ्र होनेवाला क्षुद्र धान्य है। क्षुप-सीधा, वर्षायु एवं १८-२४ इञ्च ऊंचा होता है। पत्ते-पतले, रेखाकार तथा पर्व को घेरे रहते हैं। पुष्पव्यूह-अनेक शाखायुक्त तथा शाखाग्र पर शूचिकायें (Spikelets) एक या दो-दो रहती हैं। अंतिम या चतुर्थ तुषपत्र (Glume-ग्लूम) पर पुष्प रहता है जो धान्य में परिवर्तित होता है। धूसर, पीले, चमकीले हलके पीले आदि रंगों के भेद से यह कई प्रकार का होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन १३, स्नेह १, कार्बोहाइड्रेट ६९, रेशा २, राख ३ एवं आर्द्रता १२ भाग रहती है।

गुण और प्रयोग—क्षुप का सोजाक में उपयोग करते हैं। धान्य को पकाकर या पीसकर उपयोग में लाते हैं।

अथ श्यामाकः (सामा)। तस्य नामगुणानाह

श्यामाकः श्यामकः श्यामस्त्रिबीजः स्यादविप्रियः। सुकुमारो राजधान्यं तृणबीजोत्तमश्च सः॥
श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफपित्तहृत्॥ ७९॥

सामा के संस्कृत नाम—श्यामाक, श्यामक, श्याम, त्रिबीज, अविप्रिय, सुकुमार, राजधान्य, तथा तृणबीजोत्तम ये सब हैं। सामा-शोषण करने वाला, रूक्ष, वातजनक एवम् कफ तथा पित्त को दूर करने वाला होता है ॥ ७९ ॥

२२ सावाँ

हि०-सावा, सावाँ। **बं०**-सावा, श्यामा, श्यामाधान। **म०**-जंगली सामा, सामुल। **गु०**-सामो, सामोघास। **ते०**-ओडुलु। **ता०**-कुदैवलि पिल्लु। **क०**-समै, सवै। **अं०**-Japanese Barnyard Millet (जापानीज बार्नयार्ड मिलेट)। **ले०**-*Echinochloa frumentacea Link* (एचिनोक्लोआ फ्रूमेन्टेसिआ)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

सभी स्थानों पर इसकी खेती की जाती है। वर्षा के प्रारम्भ में अन्य धान्यों के साथ इसे बोते हैं। यह बहुत जल्दी (६ सप्ताह) तैयार हो सकता है।

इसका क्षुप-वर्षायु, २ से ४ फीट ऊंचा, पत्ते चौड़े, शूकिकायें बड़ी एवं बीज छोटे, चिकने, चमकीले, आधार पर गोल एवं अग्र नोकीला रहता है।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन ६, स्नेह २, खनिज ४, रेशा १०, कार्बोहाइड्रेट ६६ तथा आर्द्रता १२ भाग रहती है। इसमें विटामिन 'बी' १ पर्याप्त रहता है।

गुण और प्रयोग—इसका पंचांग पैत्तिक विकार तथा विबंध में लाभदायक माना जाता है। इस धान्य को गरीब खाते हैं। इसको उबाल कर या कुछ भूनकर खाया जाता है।

अथ कोद्रवः वनकोद्रवश्च (कोदो-वनकोदो)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

कोद्रवः कोरदूषः स्यादुद्दालो वनकोद्रवः। कोद्रवो वातलो ग्राही हिमः पित्तकफापहः॥
उद्दालस्तु भवेदुष्णो ग्राही वातकरो भृशम् ॥ ८० ॥

कोदो के संस्कृत नाम—कोद्रव तथा कोरदूष ये सब हैं। वनकोदो के संस्कृत नाम—उद्दाल तथा वनकोद्रव ये सब हैं।

कोदो—वायुकारक, ग्राही शीतल एवम् पित्त तथा कफ का नाशक होता है।

वनकोदो—गरम, ग्राही तथा अत्यन्त वातकारक होता है ॥ ८० ॥

२३ कोदो

हि०-कोदो धान, कोदव, कोदो। **बं०**-कोदो धान। **म०**-कोद्र, हरिक, कोद्रु। **गु०**-कोदरा। **क०**-हारक। **ते०**-अरिकेलु। **ता०**-वरगु। **अ०**-कोद्रु। **फा०**-कोदिरम। **ले०**-*Paspalum scrobiculatum Linn.* (पास्पेलम् स्क्रोबिक्यूलेटम्)। Fam. Gramineae (ग्रेमिनी)।

सभी भागों में यह वन्य अथवा कृषितरूप में होता है।

कोदो—एक प्रकार का तृणजातीय धान्य वर्षाकाल के आरम्भ ही में रोपण किया जाता है और आश्विन कार्तिक में काट लिया जाता है। इसका क्षुप-वर्षायु, सीधा खड़ा एवं १½-२ फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते-पतले, घास के समान लम्बे होते हैं। इसकी मंजरी बाहर नहीं निकलती बल्कि सींकों के बीच में ही रह कर पक जाती है। इसके बीज सरसों के समान, छिलका सहित काले रङ्ग के और भूसी निकालने पर किंचित् पीलापन युक्त सफेद रङ्ग के होते हैं। इस अन्न में

विशेषता यह है कि-भूसी सहित रखने से यह पचासों वर्ष तक नहीं बिगड़ता। इसको भूसी निकाल कर गरीब कृषक खाते हैं। इसमें आटा भी कम निकलता है तथा भूसी हटाने में भी कठिनाई रहती है। इसके कई प्रकार पाये गये हैं।

रासायनिक संगठन—इसके भूसी निकाले धान्य में प्रोटीन १२, कार्बोहाइड्रेट ७७, रेशा १ एवं राख १ भाग रहती है। कभी-कभी इसके पौधे तथा धान्य में मादक तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं जिससे चक्कर आदि आने लगते हैं।

गुण और प्रयोग—मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति के लिये चावल के स्थान पर इसको दिया जाता है।

अथ चारुकः (शरबीज)। तस्य नामगुणानाह

चारुकः शरबीजः स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। चारुको मधुरो रूक्षो रक्तपित्तकफापहः॥
शीतलो लघुर्वृष्यश्च कषायो वातकोपनः ॥ ८१ ॥

शरबीज (सरपत के बीज) का संस्कृत नाम—चारुक तथा शरबीज है।

शरबीज—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, रूक्ष, शीतल, लघु, वीर्यवर्धक, वात को कुपित करने वाले एवम् रक्तपित्त तथा कफ के नाशक होते हैं।

२४ शरबीज

इसका विवरण पहले गुडूच्यादिवर्ग (पृष्ठ १८०) में किया गया है।

अथ वंशयवाः (बांस के बीज)। तेषां गुणानाह

यवा वंशभवा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः। बद्धमूत्राः कफघ्नाश्च वातपित्तकराः सराः ॥८२॥

बांस के बीज के संस्कृत नाम—वंशयव तथा वंशबीज हैं।

बांस के बीज—कषाय रसयुक्त, रूक्ष, विपाक में कटु रसयुक्त, मूत्र का विबन्ध (रुकावट) करने वाले, वात तथा पित्तकारक, सारक-एवम् कफनाशक होते हैं।

२५ वंशयव

इसका विवरण पहले गुडूच्यादिवर्ग में पृष्ठ ३७७ पर किया गया है।

अथ कुसुम्भबीजम् (कुसुम के बीज, करें)। तस्य नामगुणानाह

कुसुम्भबीजं वरटा सैव प्रोक्ता वरट्टिका ॥ ८३ ॥
वरटा मधुरा स्निग्धा रक्तपित्तकफापहा। कषाया शीतला गुर्वी स्याद्वृष्याऽनिलापहा ॥८४॥

कुसुम के बीज (करें, बरें) के संस्कृत नाम—कुसुम्भबीज, वरटा, तथा वरट्टिका ये सब हैं।

कुसुम के बीज—मधुर तथा कषाय रस युक्त, स्निग्ध, शीतल, गुरु, किंचित् वीर्यवर्धक एवम्-रक्तपित्त-कफ तथा वात को दूर करने वाले होते हैं ॥ ८३-८४ ॥

२६ कुसुम के बीज

इसका विवरण हरीतक्यादिवर्ग में पृष्ठ ११२ पर दिया गया है।

अथ गवेधुका (गरहेडुआ) । तस्या नामगुणानाह

गवेधुका तु विद्वद्भिर्गवेधुः कथिता स्त्रियाम् । गवेधुःकटुका स्वाद्वी कार्श्यकृत्कफनाशिनी ॥८५॥

गरहेडुआ के संस्कृत नाम—गवेधुका और गवेधु (यह स्त्री लिङ्ग है) ये दो विद्वानों ने बतलाये हैं । **गरहेडुआ**—कटुरस युक्त, स्वादिष्ट, कृशता करने वाला एवम्–कफनाशक होता है ॥ ८५ ॥

२७ गरहेडुवा

हि०-गरहेडुआ, गरहेडु (डु) वा, सन्कु । **बं०**-गड़गड़, देधान, गुरगुड़ । **म०**-कसई । **गु०**-कसई । **अं०**- Adlay (ॲडले); Jobs Tears (जॉब्स टियर्स) **ले०**-*Coix lachryma jobi Linn.* (कोइक्स लेक्रिमा जोबी) । Fam. Gramineae (ग्रेमिनी) ।

यह बङ्गाल के गड्ढों और चावल के खेतों में उत्पन्न होता है तथा अन्य प्रान्तों में भी पाया जाता है ।

इसका पौधा–३ से ६ फीट तक ऊँचा होता है । पत्ते–४ से १८ इञ्च तक लम्बे, १–२॥ इञ्च चौड़े, रेखाकार प्रासवत् एवं उनका किनारा तीक्ष्ण तथा कठोर होता है । पुष्प दण्ड–१ से २½ इञ्च लम्बे, चिपटे या ३ पहलवाले एवं पत्रकोण से एकसाथ कई निकले रहते हैं । फल–अण्डाकार या नाशपाती के आकार का या अश्रुक स्वरूप का, ०·३ इञ्च लम्बा तथा चमकीला होता है जिसके अन्दर सफेद या हलके भूरे रंग का चावल जैसा दाना (वास्तविक फल) निकलता है । इसके नाप, आकार, रंग, कठोरता के भेद से कई प्रकार पाये जाते हैं । इसके फल तथा मूल का उपयोग किया जाता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन १०–२०, कार्बोहाइड्रेट ७१–७४, स्नेह ३–४ एवं आर्द्रता १० भाग रहती है । इसमें खनिज अन्य धान्यों की अपेक्षा कम रहते हैं । कोइसीन (Coicin) नामक एक प्रोलेमीन (Prolamine) इससे प्राप्त किया गया है जिसमें ल्यूसिन (Leucine) तथा ग्लुटेमिक ॲसिड (Glutamic acid) काफी रहता है ।

गुण और प्रयोग—इसका चावल की तरह उपयोग किया जा सकता है । इसका क्वाथ मूत्रजनन होने से मूत्रकृच्छ्र में दिया जाता है । मूल का उपयोग पीड़ितार्तव में करते हैं । इसकी रोटी खाने से चरबी कम होती है ।

अथ नीवारः (तीनी) । तस्य नामगुणानाह

प्रसाधिका तु नीवारस्तृणान्नमिति च स्मृतम् । नीवारः शीतलो ग्राही पित्तघ्नः कफवातकृत् ॥

तीनी के संस्कृत नाम—प्रसाधिका, नीवार और तृणान्न ये सब हैं ।

तीनी—शीतल, ग्राही, पित्तनाशक एवम् कफ तथा वातकारक है ॥ ८६ ॥

२८ तीनी

हि०-तीनि, तीन्नी, जंगलीधान । **बं०**-उड़िधान्य । **म०**-देवभात । **गु०**-वंटो । **क०**-ज्वर-हुमेथे । **ते०**-निवरीवड्ल । **ता०**-वळीपुल्लु । **आसा०**-फुटकी । **ले०**-*Hygroryza aristata Nees.* (हाइग्रोहाइझा एरिस्टेटा) । Fam. Gramineae (ग्रेमिनी) ।

समस्त भारत में यह पाया है । यह एक जलीय घास की जाति का पौधा है जो तालाबों या जलीय भूमि पर फैला हुआ रहता है । वर्षा ऋतु में आसाम में चावल के खेतों पर यह फैला हुआ

पाया जाता है । काण्ड १ से १½ फीट लम्बे होते हैं । इसके चावल को गरीब लोग खाते हैं । इस घास को जानवर खाते हैं ।

गुण और प्रयोग—इसके चावल शीतल, ग्राही, सुपाच्य एवं पित्तशामक माने जाते हैं ।

अथ यावनालः (पनेरा, जुआर) तस्य गुणानाह

यावनालो हिमः स्वादुर्लोहितः श्लेष्मपित्तजित् । अवृष्यस्तुवरो रूक्षः क्लेदकृत्कथितो लघुः ॥

जुआर (पनेरा) का संस्कृत नाम यावनाल है ।

जुआर—स्वादिष्ट, कषाय रसयुक्त, शीतल, किंचित वीर्यवर्द्धक, रूक्ष, क्लेदकारक, लघु एवम् रक्त विकार, कफ तथा पित्त को नष्ट करने वाला होता है ॥ ८७ ॥

२९ जुआर

हि०-जुआर, ज्वार, जुवार । **बं०**-जुआरा, जोयार । **म०**-जोंधळे, ज्वारी । **गु०**-जुवार । **क०**-जोळा **ते०**-जोन्नलु । **ता०**-चोलं । **फा०**-जुरैमका, जिरंद्रमका, गावरस हिन्दी । **अ०**-ढुंताऊमिया खंदरूस, हिन्दये ऊमिया । **ले०**-*Sorghum vulgare (Linn.) Pers.* (सोर्घम् वल्गेर) । Fam. Gramineae (ग्रेमिनी) ।

सब प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है । क्षुप–वर्षायु, १० से १५ फीट ऊंचा; काण्ड ½–१½ इञ्च मोटा; पत्ते–२ से १½ इञ्च लम्बे, १–३ इञ्च चौड़े, चिकने, किनारा खुरदरा तथा मध्य शिरा श्वेत; बाल–विभिन्न स्वरूप का रहता है ।

इसके अनेक भेदोपभेद होते हैं ।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन ९, कार्बोहाइड्रेट ७२, स्नेह २, रेशा २, राख १ तथा तथा आर्द्रता १३ रहती है । इसके पत्तों में हाइड्रोसायनिक ॲसिड पाया जाता है । बीजों में ग्लूको-साइड धुरिन (Dhurin) पाया जाता है ।

गुण और प्रयोग—इसका अन्न के रूप में उपयोग किया जाता है । यह मूत्रजनन तथा कुछ वृष्य होता है ।

अथ परिभाषामाह

धान्यं सर्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम् । तत्तु वर्षोषितं पथ्यं यतो लघुतरं हि तत् ॥
वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति । न तु त्यजति वीर्यं स्वं क्रमान्मुञ्चत्यतः परम् ॥८९॥
एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । पुराणा विरसा रूक्षा न तथा गुणकारिणः ॥ ९० ॥

धान्यविषयक परिभाषा–सभी प्रकार के धान्य यदि नवीन हों तो वे स्वादिष्ट, गुरु तथा कफ-कारक होते हैं । यदि वे वर्ष भर के रक्खे पुराने हों तो पथ्य होते हैं क्योंकि वे अत्यन्त लघु हो जाते हैं । वर्ष भर के रक्खे पुराने सभी धान्य गुरुता छोड़ देते हैं किन्तु अपने वीर्य को नहीं छोड़ते हैं । वर्ष भर के बाद जैसे २ वे पुराने होते जाते हैं वैसे २ अपने २ वीर्य को क्रम से थोड़ी-२ मात्रा में छोड़ते जाते हैं । किन्तु–जव, गेहूं, तिल, उरद ये नवीन ही अवस्था में अपने २ गुणों से युक्त रहते हैं और हितकर होते हैं । पुराने होने पर वे विरस तथा रूक्ष हो जाते हैं तथा उतने गुण-कारी नहीं होते हैं ॥ ८८–९० ॥

* पुराणा वर्षद्वयादुपरि स्थिताः। यवादयो नवाः स्वस्थान् प्रति हिताः। पथ्याशिनां तु पुराणा हिताः।

"पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुग्।"

इति वसन्ते वाग्भटेनोक्तत्वात् ॥ ९० ॥

यहां पर मूल में "पुराण" पद से दो वर्ष के ऊपर के रक्खे हुए जो धान्य हों वे पुराने कहलाते हैं। और जव आदि धान्य यदि नवीन हों तो वे स्वस्थ मनुष्यों के लिये ही हितकर होते हैं। पथ्य रखने वाले रोगियों के लिये तो पुराने अर्थात् दो वर्ष के अन्दर तक हितकर होते हैं और उनके लिये नवीन हितकर नहीं होते हैं। क्योंकि-वसन्त में पथ्य द्रव्यों के वर्णन में वाग्भट ने "पुराण-यवगोधूम०—" इत्यादि से 'पुराना जव तथा गेहूं, मधु, जंगली जीवों के मांस का कबाब खाना हितकर है" ऐसा कह कर पुराना जव, गेहूं पथ्य बतलाया है ॥ ८८-९० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे नवमो धान्यवर्गः समाप्तः ॥ ९ ॥



अथ शाकवर्गः

तत्र शाकनिरूपणमाह

पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा। शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरुं विद्याद्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

शाक का निरूपण—१ पत्र, २ पुष्प, ३ फल, ४ नाल, ५ कन्द और ६ संस्वेदज ये ६ प्रकार के शाक माने गये हैं, इनमें एक दूसरे की अपेक्षा उत्तरोत्तर गुरु समझना चाहिये। जैसे—पत्र की अपेक्षा पुष्पशाक गुरु होता है उसकी अपेक्षा फल शाक अधिक गुरु होता है इत्यादि क्रम से उत्तरोत्तर गुरु होते हैं ॥ १ ॥

अथ शाकानां गुणानाह

प्रायः शाकानि सर्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च। रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च ॥२॥

शाकं भिनत्ति वपुरस्थि निहन्ति नेत्रं वर्णं विनाशयति रक्तमथापि शुक्रम्।

प्रज्ञाक्षयं च कुरुते पलितं च नूनं हन्ति स्मृतिं गतिमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥

शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देहविनाशनाय।

तस्माद् बुधः शाकविवर्जनं तु कुर्यात्तथाऽम्लेषु स एव दोषः ॥ ४ ॥

सभी प्रकार के शाकों के सामान्यरूप से गुण—प्रायः सभी शाक (पत्र-पुष्पादिक ६ प्रकार के)-विष्टम्भक, गुरु, रूक्ष, विशेष रूप से मल निकालने वाले अर्थात् अधिक टट्टी निकालने वाले, मल तथा अधोवायु की प्रवृत्ति कराने वाले होते हैं और द्रव्यगुण जानने वाले विद्वान् लोग शाक के विषय में यह भी कहते हैं कि-शाक-शरीरस्थित हड्डियों का भेदन करने वाला अर्थात् उनकी सारता को नष्ट करने वाला, नेत्रों की शक्ति, रक्त, शुक्र, बुद्धि, स्मरणशक्ति तथा गति (चलने की शक्ति) को नष्ट करने वाला एवम्—पलित (अकाल में बालों का सफेद होना) को करने वाला होता है।

सभी शाकों में रोग रहते हैं और वे ही रोग देह के नष्टकरने में हेतु होते हैं। इससे समझदार लोगों को चाहिये कि—शाक का खाना छोड़ दें और अम्ल (खट्टे) पदार्थों में भी पूर्वोक्त दोष होने से उनका सेवन परित्याग करना उचित है ॥ २—४ ॥

*एतानि शाकनिन्दकानि वचनानि सामान्यानि ॥ २—४ ॥

यहां पर इतना और समझना चाहिये कि—ये सब शाक की निन्दा करनेवाले पूर्वोक्त वचन सामान्य रूप से हैं ॥ २—४ ॥

अथ शाकेषु विशिष्टानि। तत्र पत्रशाकानि।

तत्रापि वास्तूकद्वयम् (दोनों बथुआ)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

वास्तूकं वास्तुकं च स्यात्क्षारपत्रं च शाकराट्। तदेव तु बृहत्पत्रं रक्तं स्याद्गौडवास्तुकम् ॥
प्रायशो यवमध्ये स्याद्यवशाकमतः स्मृतम्। वास्तूकद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम् ॥
दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्। सरं प्लीहास्रपित्तार्शः कृमिदोषत्रयापहम् ॥ ७ ॥

शाक के विषय में विशेष वचन निम्नलिखित ये हैं-शाकों में प्रथम पत्रशाक का वर्णन करते हैं। उसमें भी प्रथम दोनों प्रकार के बथुवा के विषय में विशेष वचनों का उल्लेख करते हैं। बथुवा के संस्कृत नाम—वास्तूक, वास्तुक, क्षारपत्र और शाकराट् ये सब हैं।

बड़ा बथुआ का लक्षण तथा संस्कृत नाम—जो बथुआ बड़े पत्तों वाला एवम् रक्तवर्ण का होता है, उसे "गौड़ वास्तुक" कहते हैं। बथुआ अधिकतर जव के खेत में होता है, अतः संस्कृत में इसे "यवशाक" भी कहते हैं। दोनों बथुआ-स्वादिष्ट, क्षारयुक्त, विपाक में कटुरस युक्त, अग्निदीपक, पाचक, रुचिकारक, लघु, शुक्र तथा बल को बढ़ाने वाले, सारक एवम् प्लीहा, रक्तपित्त, बवासीर, कृमि तथा त्रिदोष के नाशक हैं॥ ५-७॥

१ बथुआ

हि०-बथुआ, बथुया, चिल्लीशाक। **बं०**-बेतुया, बेतोशाक। **म०**-चाकवत, चकवत। **गु०**-टांको, बथवों, बाथरो, चीलो। **ता०**-परुपुकिरै। **क०**-विलिय चिल्लीके। **फा०**-मुसेलेसा, सरमक, सलमद। **अ०**-रोक् बतुल बजामेल, कुतुफ, कतफ। **अं०**-Lambs Quarters (लैम्बस् कार्टरस्)। **ले०**-*Chenopodium album Linn.* (चिनोपोडियम् एलबम्)। Fam. Chenopodiaceae (चिनोपोडिएसी)।

भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में यह बहुलता से पाया जाता है विशेष कर यह आपही आप बिना बोये उत्पन्न होता है।

इसका क्षुप-गंधहीन, सीधा या झुका हुआ, १-१½ फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते- आकार में छोटे-बड़े त्रिकोणाकार, नुकीले एवं कई प्रकार के होते हैं। डण्डियों के अन्त में बारीक पुष्प और बीजकोषों के गुच्छे लगते हैं। इसके श्वेत, हरित एवं कुछ लाल ऐसे तीन प्रकार (Varieties) पाये जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें कॅरोटीन (Carotene) तथा विटामिन 'सी' होता है।

गुण और प्रयोग—यह सारक एवं कृमिघ्न है। जलने पर इसके पत्तों का लेप दाह शान्ति के लिये लगाते हैं। कुपचन में इसका साग देते हैं।

२ सुगन्धवास्तुक

एक सुगन्धवास्तूक (C. ambrosioides-चि. एम्ब्रोसिओइडिस्) नामक अन्य जाति होती है जो बंगाल, सिलहट, दक्षिण एवं बिहार में पाई जाती है। इसका क्षुप-२ से ४ फीट ऊंचा, सुगन्धित ग्रन्थिरोमश; पत्ते-आयताकार या प्रासवत, कुण्ठिताग्र तथा नीचे के लहरदार एवं दन्तुर; पुष्प-छोटे, हरित, असंख्य एवं लम्बी मंजरीमें गुच्छबद्ध होकर निकले हुये; फल-गोल, कुछ दबे हुये एवं फलभित्ती से आवृत बीज-छोटे, वृक्काकार, $\frac{1}{30}$ इञ्च व्यास के, भूरे, चिकने, चमकीले एवं स्वाद में कटुतिक्त रहते हैं। समग्र वनस्पति में तीव्र गंध आती है।

रासायनिक संगठन—पुष्प एवं फल आने पर मूल को छोड़कर बाकी भाग से एक उड़नशील तैल (०.१७%) निकाला जाता है जो अमेरिका के इसके एक प्रकार से पाये जाने वाले तैल, चिनोपोडियम ऑईल (Chenopodium oil) का भारतीय प्रतिनिधि है। इस तेल का मुख्य कृमिघ्न तत्व एस्कॅरिडॉल् (Ascaridol) भारतीय तेल में ४०-४५% रहता है जब कि अमेरिकी तेल में यह ६०% तक रहता है। इसलिए इसे अधिक मात्रा (५-२० मिनिम) में देना पड़ता है। इस पौधे के सभी अंगों में सॅपोनिन रहता है जो मूल में अधिक रहता है। इसके अतिरिक्त इसमें विटामिन 'सी' एवं मॅग्नेशियम् फॉस्फेट पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—इस तेल का उपयोग बहुत सावधानी के साथ आंत्रस्थ कृमियों के लिये स्वतंत्र या अन्य औषध के साथ करते हैं। अंकुश कृमि (Hookworm-हुक्वर्म) के लिये यह बहुत

उपयोगी है। विशेष विवरण आदि आधुनिक डाक्टरी ग्रन्थों में देखें। इसके बीज ५ से २० रत्ती की मात्रा में चीनी के साथ कृमि विकार के लिये खिलाते हैं।

अथ पोतकी (पोई)। तस्या नामगुणानाह

पोतक्युपोदिका सा तु मालवाऽमृतवल्लरी। पोतकी शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वातपित्तनुत्॥
अकण्ठ्या पिच्छिला निद्राशुक्रदा रक्तपित्तजित्। बलदा रुचिकृत्पथ्या बृंहणी तृप्तिकारिणी॥

पोई के संस्कृत नाम—पोतकी, उपोदिका, मालवा तथा अमृतवल्लरी ये सब हैं।

पोई—शीतल, स्निग्ध, कफजनक, वात तथा पित्तनाशक, किञ्चित् कण्ठ के लिये हितकर, पिच्छिल, निद्रा तथा शुक्र को देनेवाली, रक्तपित्त को दूर करनेवाली, बलदायक, रुचिकारक, पथ्य, बृंहण (रस—रक्तादिवर्धक) एवम् तृप्तिकारक होती है॥ ८-९॥

३ पोय

हि०-पोय (शाक), पोय का साग, पोई का साग। **बं०**-पूंई, पुईशाक। **म०**-मायाळ। **गु०**-पोथी। **क०**-बसले। **ते०**-बच्चलि। **ता०**-बसलक्किरै। **अं०**-Indian Spinach (इण्डियन् स्पाइनॅक)। **ले०**-*Basella rubra Linn.* (बेसिला रुब्रा)। Fam. Basellaceae (बेसेलेसी)।

यह इस देश के प्रायः सब प्रान्तों में बोई जाती है तथा वन्य भी पाई जाती है।

इसका क्षुप—बहुवर्षायु, फैलनेवाला लतासदृश होता है। पत्ते-शीशम के पत्ते के समान गोलाकार परन्तु उनसे मोटे, ५×३ इञ्च बड़े और गूदेदार होते हैं। पत्रदण्ड से कोमल सींक निकल कर उस पर क्रमशः लाल मिश्रित सफेद रङ्ग के फूल आते हैं। फल-छोटे २ गोल, किञ्चित् नोकीले एवं पकने पर कालापन युक्त बैंगनी रङ्ग के हो जाते हैं। सफेद और लाल कांड के भेद से यह दो प्रकार की होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें खटिक, लोह तथा विटामिन 'ए', 'बी$_1$', 'बी$_2$' एवं प्रोटीन रहता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल तथा स्नेहन है। इसका स्वरस, उदर्द एवं गर्भिणी तथा बालकों के विबंध में देते हैं। सोजाक में भी इसे दिया जाता है। उदर्द में इसको शरीर पर मलते भी हैं।

अथ श्वेतरक्तमारिषौ (सफेद व लाल मरसा)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

मारिषो वाष्पको मार्षः श्वेतो रक्तश्च सस्मृतः। मारिषो मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुद् गुरुः॥
वातश्लेष्मकरो रक्तपित्तनुद् विषमाग्निजित्। रक्तमार्षो गुरुर्नाति सक्षारो मधुरः सरः।
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः॥ ११॥

मरसा के संस्कृत नाम—मारिष, वाष्पक और मार्ष ये सब हैं। भेद-सफेद तथा रक्तवर्ण के भेद से मरसा दो प्रकार का होता है।

मरसा (सफेद)—मधुर रसयुक्त, शीतल, विष्टम्भजनक, पित्तनाशक, गुरु, वात तथा कफकारक एवम्-रक्तपित्त तथा विषमाग्नि को शमन करने वाला होता है।

लाल मरसा—किञ्चित् गुरु, क्षारयुक्त मधुर रस वाला, सारक, कफजनक, पाक में कटुरसयुक्त तथा स्वल्प दोषवाला कहा हुआ है॥ १०-११॥

४ सफेद मरसा

हि०-मरसा। बं०-सादानटे। गु०-डांभो। ता०-तन्डुकिरई। ते०-टोटाकुरा। म०-माजी, माठाची माजी। ले०-*Amaranthus blitum var. oleracea Duthie* (ॲमॅरेन्थस् ब्लाइटम वेर ओलेरेसिआ)। Fam. Amaranthaceae (ॲमॅरेन्थेसी)।

सभी भागों में इसकी उपज की जाती है।

इसका क्षुप गूदेदार तथा सीधा होता है। पत्ते आयताकार होते हैं। इसके बीजों को भी भूनकर खाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें प्रोटीन २·९% एवं लोह अधिक मात्रा में (१८·२८ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम में) रहता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, पित्तशामक एवं रक्तपित्तशामक है। इसका साग खाते हैं।

५ लाल मरसा

हि०-लाल मरसा, लाल साग। बं०-डेंगुआ। म०-माठ। क०-दन्तु। ते०-टोटाकुरा। ले०-*Amaranthus gangeticus. Linn.* (ॲमॅरेन्थस् गॅंजेटिकस्)। Fam. Amaranthaceae (ॲमॅरेन्थेसी)।

प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में इसका रोपण करते हैं।

इसका क्षुप-२-३ फुट ऊँचा और हरिताभ या गहरा लाल होता है। पत्ते-उक्त मरसे के आकार वाले, प्रकार के अनुसार किंचित् हरापनयुक्त लाल या नीलापन युक्त लाल अथवा चमकिले लाल रङ्ग के एवं विभिन्न आकारवाले होते हैं। डण्डियों के चारों ओर सघन गुलाबी रङ्ग के बारीक फूलों के गुच्छे लगते हैं। बीज-उक्त मरसा के समान होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके कोमल काण्ड में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज एवं विटामिन 'ए', 'बी१' तथा 'सी' पाये जाते हैं। बीजों में सॅपोनिन् रहता है जो अल्प विषैला रहता है।

गुण और प्रयोग—यह रक्तपित्तशामक एवं व्रणरोपण है। अतिसार, रक्तातिसार एवं रक्तप्रदर में इसको देते हैं। व्रण प्रक्षालन एवं मुखपाक में इसका उपयोग करते हैं।

अथ तण्डुलीयः (चौलाई)। तस्य नामगुणानाह

तण्डुलीयो मेघनादः काण्डेरस्तण्डुलेरकः। भण्डीरस्तण्डुलीबीजो विषघ्नश्चाल्पमारिषः॥
तण्डुलीयो लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्रजित्। सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः॥

चौलाई के संस्कृत नाम—तण्डुलीय, मेघनाद, काण्डेर, तण्डुलेरक, भण्डीर, तण्डुलीबीज, विषघ्न तथा अल्पमारिष ये सब हैं।

चौलाई—लघु, शीतल, रूक्ष, मूत्र तथा मल को निकालने वाली, रुचिकारक, अग्निदीपक एवम् पित्त, कफ, रक्तविकार तथा विष को दूर करने वाली होती है॥ १२-१३॥

६ चौलाई

हि०-चौलाई का शाक, चौराई का साग, कटेली चवलाई। बं०-कांटा नटे। म०-कांटेमाठ। गु०-कांटालो डांभो। क०-मुल्लुहरिवेसोप्पु। ते०-मोला टोटा कुरा। ता०-मुलुकोरै। अं०-Prickly Amaranth (प्रिक्ली ॲमॅरेन्थ)। ले०-*Amaranthus spinosus Linn.* (ॲमॅरेन्थस् स्पाईनोसस्)। Fam. Amaranthaceae (ॲमॅरेन्थेसी)।

यह इस देश के प्रायः सब प्रान्तों के खेत, बाग, बगीचों में और वीरान भूमि में आप ही आप उत्पन्न होती है। इसका क्षुप-२ फीट तक ऊँचा और शाखाएं झाड़ीदार होती हैं। पत्ते-१॥-२ इंच लम्बे, चौड़े भालाकार किन्तु नोकरहित होते हैं। पत्तों की जड़ में महीन तीक्ष्ण काँटे होते हैं। काण्ड पर बारीक फूलों के गुच्छे रहते हैं। इनमें से बारीक काले रङ्ग के गोल चमकीले बीज निकलते हैं।

काँटे वाली, बिना काँटे वाली, हरे पत्ते की, लाल पत्ते की और नीलापन युक्त लाल अथवा लालीयुक्त नीले पत्ते की, इस प्रकार चौलाई कई प्रकार की होती है।

रासायनिक संगठन—इसमें काफी पोषक तत्व रहते हैं। इसमें प्रोटीन ३, स्नेह ०·३, कार्बोहाइड्रेट ८, खनिज ३·६, खटिक ०·८, लोह २३ मि० ग्रा० प्रति १०० ग्राम में रहता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, मूत्रजनन, स्नेहन एवं गर्भाशय के लिये वेदनास्थापन तथा शक्तिदायक और स्तन्यजनन है।

(१) इसकी जड़ का क्वाथ मुलेठी तथा अपामार्ग के साथ सोजाक में दिया जाता है।

(२) रक्तप्रदर के लिये इसका बहुत उपयोग करते हैं। इसमें इसके मूल के साथ आंवला, अशोक की छाल एवं दारुहल्दी का उपयोग किया जाता है। इससे पीड़ा भी कम होती है तथा रक्तस्राव बंद होता है। श्वेतप्रदर में इसके साथ हिराबोल देते हैं। इससे गर्भपात की आदत दूर होती है। मासिक के काल के समय गर्भिणी को इसे ३-४ दिन देते हैं।

(३) स्तन्यवृद्धि के लिये इसके पंचांग को अरहर की दाल के साथ पकाकर देते हैं। जानवरों में भी इसका उपयोग करते हैं।

(४) गांठ, फोड़े आदि जल्दी पकाने के लिये मूल का लेप करते हैं। विसर्प तथा अन्य दाहयुक्त चर्मरोग में दाहशांति के लिये इसके पत्तों को पीसकर लेप करते हैं।

अथ पानीयतण्डुलीयम् (जलचौलाई)। (चौलाईभेदो जलतण्डुलीयं शास्त्रे कञ्चटमिति प्रसिद्धम्)। तस्य नामगुणानाह

पानीयतण्डुलीयं तु कञ्चटं समुदाहृतम्। कञ्चटं तिक्तकं रक्तपित्तानिलहरं लघु॥ १४॥

जल चौलाई (यह चौलाई का भेद है और शास्त्र में "कञ्चट" नाम से प्रसिद्ध है) के संस्कृत नाम—पानीयतण्डुलीय, जलतण्डुलीय तथा कञ्चट ये सब हैं।

जल चौलाई—तिक्त रस युक्त, लघु एवम्-रक्तपित्त तथा वायुदोष को नष्ट करने वाली होती है॥ १४॥

७ जलचौलाई

यह भी ॲमॅरेन्थस् की जल के समीप होने वाली कोई जाति (Species) है।

८ रामदाना

रामदाना—इस नामके बीज इसकी एक जाति ॲ० कॉडेटस् (A. caudatus Linn.) से प्राप्त होते हैं जो श्वेत या पीले एवं गोल मोटे किनारेदार होते हैं। इसके क्षुप-ऊँचे; पत्ते-लम्बे वृन्त युक्त, दीर्घवृन्ताग्र; पुष्प-चमकीले पीत या गहरे रक्त लटकी हुई मंजरी में आते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में आक्जेलिक ॲसिड रहता है।

गुण और प्रयोग—रामदाने में पौष्टिक तत्व रहते हैं। इसका पंचांग मूत्रल एवं रक्तशोधक है। इसे अर्श तथा मूत्रकृच्छ्र में देते हैं। गण्डमाला में भी इसे देते हैं तथा बाहर से लेप करते हैं।

अथ पलक्या (पालक)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

पलक्या वास्तुकाकारा छुरिका चीरितच्छदा ॥
पलक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी गुरुः। विष्टम्भिनी मदश्वासपित्तरक्तकफापहा ॥१६॥

पालक के संस्कृत नाम—पलक्या, वास्तुकाकारा, छुरिका तथा चीरितच्छदा ये सब हैं।

पालक—वातजनक, शीतल, कफकारक, मलभेदक, गुरु, विष्टम्भ उत्पन्न करने वाला-एवम् मद (नशा), श्वास, पित्त, रक्त तथा कफ को दूर करने वाला होता है।

९ पालक

हि०-पालक शाक, पला। बं०-पालंग शाक। म०-पालख, पालक। गु०-पालखनी भाजी। क०-पालक्य। ता०-वसैलक्किरै। ते०-मट्टुबच्चलि। अं०-Spsinach (स्पाइनॅक्)। ले०-*Spinacia oleracea Linn.* (स्पाइनेसिया ओलेरेसिया)। Fam. Chenopodiaceae (चिनोपोडिएसी)।

सभी प्रान्तों में इसको लगाया जाता है। इसका क्षुप-करीब १ फूट ऊँचा रहता है। काण्ड-पोला तथा कोणयुक्त रहता है। पत्ते-मोटे, मांसल, हरे, कुछ त्रिकोणाकार एवं लंबेवृंत से युक्त होते हैं। पुष्प-बहुत छोटे गुच्छों में आते हैं। पुंजाति के क्षुप में पुष्प काण्ड के अंत में एवं स्त्रीजाति के पुष्प पत्र कोण में आते हैं। इसमें एक प्रकार गोल पत्तों एवं चिकने बीजों वाला होता है। प्रथम में बीज कांटेदार होते हैं।

इसके बीज एवं पत्तों का उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें आयोडीन (Iodine), लेसिथिन् (Lecithin), कॅरोटिन् (Carotin), आक्जेलिक ॲसिड (Oxalic acid) एवं आर्सेनिक् (Arsenic) होता है।

गुण और प्रयोग—यह शीत, मूत्रजनन, रोचन, शोधन एवं दाहशामक है।

(१) पंचांग का क्वाथ शोथयुक्त ज्वरों में देते हैं।

(२) आंत्रविकारों में इसका साग उपयोगी है।

(३) अश्मरी में पत्तों का रस या क्वाथ पिलाते हैं।

(४) इसके बीज सारक एवं शीतल हैं तथा यकृतशोथ, कामला एवं श्वासकृच्छ्र में दिये जाते हैं।

अथ कालशाकम् (नाडीका शाक)। तस्या नामगुणानाह

नाडिकं कालशाकं च श्राद्धशाकं च कालकम्। कालशाकं सरं रुच्यं वातकृत्कफशोथहृत्।
बल्यं रुचिकरं मेध्यं रक्तपित्तहरं हिमम् ॥ १७ ॥

नाडीका शाक के संस्कृत नाम - नाडिक, कालशाक, श्राद्धशाक और कालक ये सब हैं।

नाडीका शाक—सारक, रोचक, वातकारक, कफ तथा शोथ नाशक, बलदायक, रुचि को उत्पन्न करने वाला, मेधा के लिये हितकर अथवा पवित्र, शीतल एवम्-रक्तपित्तनाशक है ॥ १७ ॥

१० कालशाक (नाड़ीका शाक)

हि०-नारिचा, नाड़ो का शाक, तीता पाट। बं०—नालिता शाक, तितपाट, चिनल्तेपात, नचौ। म०-चोंचे, सण। गु०-छूँछ। ले०-*Corchorus capsularis Linn.* (कोर्कोरस कॅपसुलेरिस्)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)।

यह गरम प्रदेशों में अधिक उत्पन्न होता है। इसका क्षुप-३-४ फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते-२-४ इञ्च लम्बे, आध से पौन इञ्च चौड़े, प्रासवत् अथवा आयताकार, लम्बाग्र एवं आरावत् दन्तुर होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के आते हैं। फल-गोलाकार पाँच भाग वाले तथा पृष्ठ पर दानेदार होते हैं। बीज-ताम्ररंग के होते हैं। इसके कृषित भेद में यह १०।१२ फीट तक ऊँचा होता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में कॅपसूलेरिन् (Capsularin) नामक एक क्षाराभ पाया गया है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्तों का फांट ज्वर में देने से मूत्र एवं स्वेद अधिक आता है तथा मुँह का सूखना कम होता है। कुपचन, अतिसार तथा आंव में पत्तों का हिम देते हैं। इसके बीज विरेचन हैं।

अथ पट्टशाकः (पटुआ शाक)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पट्टशाकस्तु नाडीको नाडीशाकश्च स स्मृतः। नाडीको रक्तपित्तघ्नो विष्टम्भी वातकोपनः ॥

पटुआ शाक के संस्कृत नाम—पट्टशाक, नाडीक और नाडीशाक ये सब हैं। पटुआशाक-रक्तपित्तनाशक, विष्टम्भजनक एवम् वात को कुपित करने वाला होता है ॥ १८ ॥

११ पट्टशाक (पटुआ शाक)

हि०-पटुआ, पटवा, पटुए का शाक, कोष्ट। बं०-मीठा पाट, कलिता पाट। म०-मोठे चोंचे। गु०-मोटी छूँछ। ले०-*Corchorus olitorius Linn.* (कोर्कोरस् ओलिटोरियस्)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)।

यह कई प्रान्तों में आप ही आप जङ्गली उत्पन्न होता है किन्तु बंगाल में नहीं होता।

इसका क्षुप-३ फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते-२-४ इञ्च लम्बे, १-२ इञ्च चौड़े, चिकने, अण्डाकार और पर्णमूल के पास दो पुच्छ सदृश रचनाओं से युक्त होते हैं। फूल-बड़े तथा गहरे पीले रङ्ग के आते हैं। फल-१-२ इञ्च लम्बे होते हैं। बीज-धूसराभ हरित या नीलाभ कृष्ण तथा कालशाक की अपेक्षा छोटे होते हैं। इसके पत्ते तथा कोमल काण्ड लोग खाते हैं।

इसका कृषित भेद कालशाक से भी ऊँचा जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके फलों में विटामिन 'सी' पाया गया है।

गुण और प्रयोग—इसके पत्ते स्नेहन, दाहशामक, संग्राहक, मूत्रजनन एवं बल्य हैं। इसके पत्तों का फांट बल्य तथा ज्वर शामक मानते हैं। इसके बीज विरेचन होते हैं।

अथ कलम्बी (कलमी शाक)। तस्या नामगुणानाह

कलम्बी शतपर्वी च कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। कलम्बी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्रकारिणी ॥

कलमी शाक का संस्कृत नाम—कलम्बी और शतपर्वी है।

कलमी शाक—मधुर रसयुक्त, दुग्धवर्धक तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १९ ॥

१२ कलम्बी

हि०-कलंबी शाक, करमी, कलमी का साग, करेमु। बं०-कलमी शाक। ते०-तोमे बच्चलि। म०-नालीची भाजी। गु०-नाळीनी भाजी। अं०-Swamp Cabbage (स्वॅम्प कॅबेज)। ले०-*Ipomoea aquatica Forsk.* (आइपोमिया ॲक्वेटिका)। Fam. Convolvulaceae (कन्व्हॉल्व्युलेसी)।

यह कता जाति की वनस्पति प्रायः सब प्रान्तों के सजल स्थान में जल के ऊपर तैरती हुई या समीप की भूमि पर फैली हुई दिखाई देती है। पर्व से इसकी जड़ निकलकर कीचड़ में फैलती है। डंडी पोली होती है। पत्ते–२ से ६ इञ्च लम्बे, दीर्घवृत्ताभ या अंडाकार-आयताकार, आधार की तरफ हृदयाकार या दो कोनें निकले हुये (Hastate) एवं लम्बे वृन्त से युक्त होते हैं। फूल–नलिकाकार, १-२ इञ्च लम्बे, निसोत के समान, श्वेत या हलके जामुनी (कंठ में गाढे जामुनी) रंग के तथा एकाकी या ५ के समूह में आते हैं। फल–०·८ से. मी. व्यास में, गोलाभ, चिकना तथा २ से ४ धनरोमश बीज युक्त होता है। इसकी नवीन शाखाओं तथा पत्तों का शाक होता है।

रासायनिक संगठन—इसके पत्तों में पर्याप्त खनिज तथा विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', तथा 'ई' पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका स्वरस संखिया तथा अफीम की विषाक्तता में वमन कराने के लिये देते हैं। इसका सुखाया हुआ स्वरस विरेचक होता है। स्त्रियों के शारीरिक एवं तन्त्रिकीय (Nervous) दुस्वास्थ्य में इसका उपयोग किया जाता है। इसको अर्श में भी देते हैं। कलिकाओं को दाद पर लगाते हैं।

अथ लोणी बृहल्लोणी च (नोनिया, बड़ा नोनिया-कुल्फा)। तयोर्नामगुणानाह

लोणालोणी च कथिता बृहल्लोणी तु घोटिका। लोणी रूक्षा स्मृता गुर्वी वातश्लेष्महरी पटुः॥
अर्शोघ्नी दीपनी चाम्ला मन्दाग्निविषनाशिनी।
घोटिकाऽम्ला सरा चोष्णा वातकृत्कफपित्तहृत् ॥ २१ ॥
वाग्दोषव्रणगुल्मघ्नी श्वासकासप्रमेहनुत्। शोथे लोचनरोगे च हिता तज्ज्ञैरुदाहृता ॥ २२ ॥

नोनिया का संस्कृत नाम—लोणा तथा लोणी हैं। बड़ी नोनिया का संस्कृत नाम—बृहल्लोणी और घोटिका हैं। नोनिया—लवण तथा अम्लरसयुक्त, रूक्ष, गुरु, अग्निदीपक एवम् वात, कफ, अर्श (बवासीर) अग्नि की मन्दता तथा विष का नाश करने वाली है।

बड़ी नोनिया—इसके गुण के जानने वालों द्वारा इसे अम्लरसयुक्त, सारक, उष्ण, वातकारक एवम्—कफ, पित्त, वाणी दोष (बोलने में हकलाना आदि दोष) व्रण, गुल्म, श्वास, खांसी और प्रमेह को दूर करने वाली तथा शोथ और नेत्ररोग में हितकर बतलायी गयी है ॥ २०–२२ ॥

१३ छोटी लोणा

हि०–छोटीलोणा, नोनीसाग, छोटी लोनिया, जंगलीलोनिया। **बं**–क्षुद्रे णुनी, वनणुनी। **म०**–भुई घोळ, लहान घोळ। **गु०**–लुणी। **क०**–गोळि। **ते०**–पइल कुर। **ता०**–कोरिक कीरई। **अ०**–बुल्क तुल्हमका। **ले०**–*Portulaca quadrifida Linn.* (पोर्टुलेका क्वाड्रीफीडा)। Fam. Portulacaceae (पोर्टुलेकेसी)।

छोटी लोणा एक प्रसिद्ध शाक है जो सब जगह होता है। यह जमीन पर फैला हुआ होता है। शाखा–सूत जैसी पतली तथा सन्धि से मूल निकले हुवे रहते हैं। पत्ते–१/२–३/४ इंच, विपरीत, अंडाकार या अंडाकार–भालाकार एवं अल्पवृन्त युक्त होते हैं। पुष्प–पीले होते हैं। यह ललाई लिये हरे रंग की एवं स्वाद में खारी और खट्टी होती है।

गुण और प्रयोग—इसके ताजे पत्तों का लेप विसर्प में लगाया जाता है। इसका फांट मूत्रकृच्छ्र में एवं बीज कृमिघ्न रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं।

१४ बड़ी लोणा

हि०–बड़ी लोणा, लोणाशाक, कुल्फा। **बं०**–बड़णुनी। **म०**–घोळ। **गु०**–लुणी, म्होटी। **फा०**–खुल्फा, खुर्फा। **अ०**–बकुतुल हुनका। **अं०**–Garden purslane (गार्डन पर्सलेन)। **ले०**–*Portulaca oleracea Linn.* (पोर्टुलेका ओलेरेसीया)। Fam. Portulacaceae (पोर्टुलेकेसी)।

कुल्फा—यह प्रसिद्ध साग सीधा या जमीन पर फैला हुआ सभी स्थानों पर होता है। **पत्ते**–स्फानवत्–आयताकार, गोलखण्डिताग्र एवं १/२–११/२ इञ्च लम्बे होते हैं। **पुष्प**–पीले होते। **बीज**–दानेदार होते हैं। इसका साग बनाते हैं। इसमें कुछ अम्लता रहती है।

रासायनिक संगठन—इसमें पिच्छिल पदार्थ एवं पोटेशियम् ऑक्जेलेट पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह शीतल, शोथहर एवं रक्तशोधक है। इसके बीज स्नेहन, मूत्रजनन एवं कृमिघ्न हैं।

वृक्कशोथ, बस्तिशोथ में इसका साग तथा बीज देते हैं। इसका स्वरस सभी प्रकार के रक्तपित्त में तथा ज्वर में लाभदायक है। अर्श में इसका साग देते हैं। इसको ताजा पीसकर विसर्प, मोच, चोट, सूजन एवं हाथ पैर की जलन आदि में दाह एवं शोथ कम करने के लिये बांधते हैं।

अथ चांगेरी (तिनपतिया)। तस्या नामानि गुणांश्चाह

चाङ्गेरी चुक्रिका दन्तशठाम्बष्ठाऽम्ललोणिका। अश्मन्तकस्तु शफरी कुशली चाम्लपत्रकः॥
चाङ्गेरी दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफवातनुत्। पित्तलाऽम्ला ग्रहण्यर्शः कुष्ठातीसारनाशिनी॥

तिनपतिया के संस्कृत नाम—चाङ्गेरी, चुक्रिका, दन्तशठा, अम्बष्ठा, अम्ललोणिका, अश्मन्तक, शफरी, कुशली और अम्लपत्रक ये सब हैं।

चांगेरी—अम्लरसयुक्त, अग्निदीपक, रुचिकारक, रूक्ष, उष्ण, पित्तजनक एवम्—कफ, वात ग्रहणी, अर्श, कुष्ठ तथा अतीसार को दूर करने वाली है ॥ २३–२४ ॥

१५ चाङ्गेरी

हि०–चांगेरी, तिनपतिया, अंबिलोना। **प०**–खटकल, खट्टी बूटी। **बं०**–अमरूल। **म०**–आंबटी, अंबुटी, भुईसपंटी। **गु०**–आम्बोती। **क०**–सिवर्गी। **ते०**–पुलि चिंत। **ता०**–पुळियोरे। **अं०**–Indian Sorrel (इण्डियन सॉरेल)। **ले०**–*Oxalis corniculata Linn.* (ऑक्झेलिस् कोर्नीक्युलेटा)। Fam. Oxalidaceae (आग्झेलिडेसी)।

यह प्रायः सभी गरम प्रान्तों की ऊसर भूमि, खंडहर तथा घरों के आसपास आप ही आप जङ्गली उत्पन्न होती है। यह प्रसरी वनस्पति जमीन पर फैली हुई रहती है। ग्रंथियों से आगन्तुकमूल निकले रहते हैं। पत्ते–त्रिपत्रक एवं लंबे वृन्त से युक्त होते हैं। पत्रक–अभिहृदवत् होते हैं। उपपत्र–आयताकार एवं वृन्तलग्न रहते हैं। पुष्प–पीले रंग के पुष्प, पत्तों से छोटे दण्ड पर प्रायः दो-दो आते हैं। फली–मृदु रोमश अनेक बीज युक्त एवं पकने पर अपने आप फूटती है।

इसका स्वाद खट्टा होता है तथा इसका साग बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें ॲसिड पोटॅशियम ऑग्जेलेट पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह अम्ल, रोचक, उष्ण, दीपन, ग्राही, अर्शोघ्न एवं वातकफ नाशक है। इससे छोटी धमनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव रुकता है।

कुपचन में अन्न में अम्लता लाने के लिये इसका उपयोग करते हैं। खूनी आँव तथा गुदभ्रंश में इसे देते हैं। शोथ पर इसको पीसकर बांधने से पीड़ा एवं दाह कम होकर सूजन उतरती है। धतूरे के विष के निवारण के लिये इसका रस पिलाते हैं।

अथ चुक्रिका (चूक) । तस्या नामगुणानाह

चुक्रिका स्यात्तु पत्राम्ला रोचनी शतवेधिनी ॥ २५ ॥
चुक्रा त्वम्लतरा स्वाद्वी वातघ्नी कफपित्तकृत् । रुच्या लघुतरा पाके वृन्ताकेनातिरोचनी ॥

चूक के संस्कृत नाम—चुक्रिका, पत्राम्ला, रोचनी तथा शतवेधिनी ये सब हैं। चूक-अत्यन्त अम्ल रसयुक्त (अत्यन्त खट्टा), स्वादिष्ट, वातनाशक, कफ तथा पित्त को उत्पन्न करनेवाला, रुचिकारी, विपाक में अत्यन्त लघु तथा बैगन के साथ खाने में अत्यन्त रुचिकारक है ॥ २५-२६ ॥

१६ चूका

हि०—चूका (शाक)। बं०—चुका, पालंग। म०—चुका, आंबट चुका। गु०—चुको, खारी भाजी। क०—हुलीचकोत। फा०—तुरश्क बड़ा, तुर्श खुरासानी, तरह हिरा साई। अ०—हुम्माज बुक्लेहा मेजा, बुल्फ येह मिज़ई। अं०—Bladder Dock (ब्लॅडर डॉक्)। ले०—*Rumex vesicarius Linn.* (रूमेक्स वेसिकेरियस्)। Fam. Polygonaceae (पॉलिगोनेसी)।

यह पश्चिम पञ्जाब और सिन्ध नदी के आस पास पहाड़ी ज़मीन में अधिक होता है और दूसरे प्रान्त में भी कहीं कहीं पाया जाता है। इसका क्षुप-६ से १२ इञ्च तक ऊँचा, पाण्डुर हरित, कुछ मांसल एवं मूल के पास से ही दो भागों में बँटा रहता है। पत्ते-अंडाकार-लट्वाकार या आयताकार, १ से ३ इञ्च लंबे, आधार स्फानवत् या हृदवत् या दो कोने निकले हुवे तथा लम्बे वृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प-श्वेत या गुलाबी होते हैं। इसके बीज यूनानी वैद्यक में तुख्म हुम्माज नाम से व्यवहार में आते हैं। इसका साग बनाया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह दीपन, रुचिकर, सारक, शोथघ्न एवं वेदना स्थापन है। पचन नलिका के विकार में इसका साग देते हैं। आमाशय में दाह, आंव, वमन एवं क्षुधा नाश आदि में इसे देते है।

इसके बीज शीतल, ग्राही, लेसदार तथा दाह शामक होते हैं। इनका उपयोग पित्त विकार, पित्तातिसार, मूत्र मार्ग में दाह एवं आमाशय शोथ में करते हैं।

पत्तों का लेप सूजन पर तथा कीटदंश पर करते हैं। दंतशूल में भी रस लगाते हैं।

अथ चञ्चुकी (भाफली) तस्या नामगुणानाह

चिञ्चा चञ्चुश्चञ्चुकी च दीर्घपत्रा सतिक्तका । चञ्चुः शीता सरा रुच्या स्वाद्वी दोषत्रयापहा ॥
धातुपुष्टिकरी बल्या मेध्या पिच्छिलका स्मृता ॥ २७ ॥

चञ्चुकी के संस्कृत नाम—चिञ्चा, चञ्चु, चञ्चुकी, दीर्घपत्रा तथा सतिक्तका ये सब हैं।

चंचु—स्वादिष्ट, शीतल, सारक, रुचिकारक, त्रिदोषनाशक, धातु को पुष्ट करनेवाला, बलदायक, मेधा के लिये हितकर तथा पिच्छिल है ॥ २७ ॥

१७ चंचु

हि०— चंचु शाक, चौंच, (वा) भाफली। बं०—बिलनलिता। म०—हरणखुरी, मगरमिठी। गु०—उभी बहुफली, छुंछडो। ले०—*Corchorus fascicularis Lam.* (कोर्कोरस् फॅसीक्यूलेरिस्)। Fam. Tiliaceae (टिलिएसी)।

यह गरम प्रान्तों में अधिक उत्पन्न होता है। इसका क्षुप-एक फुट ऊंचा, प्रसरणशील एवं वर्षायु होता है। पत्ते-१-२ इञ्च लम्बे, पाव से आध इञ्च तक चौड़े, एकान्तर, आयताकार-भालाकार तथा दन्तुर होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के, २ से ५ एक वृन्त पर पत्तों के सामने आते हैं। फलियाँ-मृदुरोमश, करीब ½ इञ्च लम्बी, ३-४ एक साथ एवं प्रत्येक ३-४ कोष्ठ युक्त होती हैं। बीज-अनेक, काले एवं कोनयुक्त होते हैं।

इसके पंचांग का उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह उत्तम स्नेहन एवं बल्य है। इसका क्वाथ सोजाक में देते हैं जिससे पेशाब की मात्रा बढ़कर जलन इत्यादि कम होती है।

मात्रा—½ से १ तोला।

अथ हिलमोचिका (हरकुच) । तस्य नामगुणानाह

ब्राह्मी शङ्खधराऽऽचारी मत्स्याक्षी हिलमोचिका । शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिलमोचिका ॥

हरकुच के संस्कृत नाम—ब्राह्मी, शङ्खधरा, आचारी, मत्स्याक्षी तथा हिलमोचिका ये सब हैं।

हरकुच— शोथ, कुष्ठ, कफ तथा पित्त का नाशक है ॥ २८ ॥

१८ हरकुच शाक

हि०—हरकुच। बं०—हिलेंचा शाक, हिलंचशाक, हिंगचा। ले०—*Enhydra fluctuans Lour.* (एन्हाइड्रा फ्लक्चुएन्स)। Fam. Compositae (कम्पोझिटी)।

यह आसाम, बिहार और बङ्गाल में पाया जाता है।

यह जल के निकटवर्ती स्थान और दलदल में उत्पन्न होने वाली प्रसरणशील वनस्पति है। इसकी शाखा १-२ फीट लम्बी, मांसल, रोमश, भूमि पर पसरी हुई रहती है और गाँठों से मूल निकल कर भूमि में घुस जाते हैं। पत्ते-विपरीत, अवृन्त, रेखाकार-आयताकार १ से ३ इञ्च लंबे और दन्तुर होते हैं। फूल (मुण्डक)-पीले, दण्डरहित, व्यास में ३ से ७ इञ्च एवं विषमलिंग होते हैं। इनमें प्रान्तीय पुष्प स्त्रीलिंग, जिह्वाकार एवं कई चक्रों में तथा केन्द्रीय पुष्प उभयलिंग होते हैं। अधःपत्रावलि के पत्र केवल चार होते हैं।

इसके पत्ते कुछ कड़वे होते हैं तथा बंगाल में इसका साग बनाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके शुष्क पौधे में उड़नशील तेल, स्टिग्मॅस्टेराल् (Stigmasterol) एवं अत्यल्प कड़वा पदार्थ होता है।

गुण और प्रयोग—यह मृदुसारक, पित्तशामक, स्नेहन तथा त्वचा एवं वातिक विकारों में लाभदायक है।

(१) त्वचा के रोग तथा वातिक विकारों में इसका स्वरस १ तोले की मात्रा में पिलाते हैं।

(२) यकृत् का कार्य ठीक न होता हो तो चावल की मांड़ में इसको उबालकर सैंधव तथा सरसों का तेल डालकर देते हैं।

नोट—टीकाकारों ने हिलमोचिका को कहीं कहीं हुरहुर लिखा है जो वास्तव में इससे भिन्न है।

अथ शितिवारः (चौपतिया) । तस्य नामलक्षणगुणानाह

शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः सुनिषण्णकः । श्रीवारकः सूचिपत्रः पर्णकः कुक्कुटः शिखी ॥
43 **चाङ्गेरीसदृशः पत्रैश्चतुर्दल इतीरितः । शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥ ३० ॥**

सुनिषण्णो हिमो ग्राही मेदोदोषत्रयापहः ॥ ३१ ॥
अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रूक्षदीपनः । वृष्यो रुच्योज्वरश्वासमेहकुष्ठभ्रमप्रणुत् ॥३२॥

चौपतिया के संस्कृत नाम—शितिवार, शितिवर, स्वस्तिक, सुनिषण्णक, श्रीवारक, सूचिपत्र, पर्णक, कुक्कुट और शिखी ये सब हैं।

लक्षण—चौपतिया के पत्ते चांगेरी (तिनपतिया) के पत्तों के समान होते हैं और इसके पत्र-दण्ड में ४ पत्रक रहते हैं इसी से इसको चतुष्पत्री अर्थात् चौपतिया कहते हैं। यह शाक जलयुक्त देश में उत्पन्न होता है।

चौपतिया—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, शीतल, ग्राही, किंचित् विदाही, लघु, रूक्ष, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक एवं—मेद, त्रिदोष, ज्वर, श्वास, प्रमेह, कुष्ठ तथा भ्रम रोग नाशक है ॥ २९-३२ ॥

नोट—शितिवार तथा सुनिषण्णक वास्तव में दो भिन्न द्रव्य हैं जब कि यहां इन्हें पर्यायों में लिखा गया है। यहां जिसका स्वरूप वर्णन श्लोक में आया है वह चौपतिया साग है। शितिवार इससे भिन्न है जिसका वर्णन पहले कर्पूरादिवर्ग (पृष्ठ २६४) में कैवर्तमुस्तक के अन्तर्गत किया जा चुका है।

१९ चौपतिया

हि०—चौपतिया, सुनसुनिया साग। बं०—सुसुनी शाक, शुनिशाक, शुशुनो शाक। ले०—*Marsilea minuta Linn.* (मार्सिलिया माइन्यूटा)। Fam. Rhizocarpeae (राइझोकार्पी)।

यह शाकवर्गीय वनस्पति भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों के सजल स्थान में कहीं न कहीं पायी जाती है। वर्षा ऋतु में यह अधिक उत्पन्न होती है। इसमें नीचे विसर्पी, पतला, एवं सशाख काण्ड होता है। इसके छत्ते-पानी के ऊपर तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक पत्रदण्ड पर चार-चार पत्ते स्वस्तिक क्रम में निकले रहते हैं, इस कारण इसे चतुष्पत्री या चौपतिया भी कहते हैं। पत्ते और दण्ड आकार में छोटे बड़े हुआ करते हैं। पत्ते-चांगेरी के पत्तों के समान किन्तु उनसे बड़े होते हैं। बीजाणुकोष एक विशेष प्रकार की अण्डाकार परन्तु कुछ-कुछ चिपटी रचना के अन्दर रहते हैं जो फल की तरह मालूम होती है।

गुण और प्रयोग—इसका साग निद्राजनक तथा दीपन होता है। निद्रा लाने के लिये तथा अग्निमांद्य में इसका उपयोग करते हैं।

अथ मूलकपत्रम् (मुरई का पत्ता)। तस्य गुणानाह

पाचनं लघु रुच्योष्णं पत्रं मूलकजं नवम्। स्नेहसिद्धं त्रिदोषघ्नमसिद्धं कफपित्तकृत् ॥ ३३ ॥

नवीन मुरई के पत्ते का शाक—पाचक, लघु (हलका), रुचिकारक तथा उष्ण होता है। तेल में भुना हुआ शाक-त्रिदोष-नाशक होता है। बिना भुना हुआ—कफ तथा पित्त-कारक होता है ॥ ३३ ॥

२० मूली के पत्ते

इसका परिचय कंदशाक वर्ग में दिया जायगा।

अथ द्रोणपुष्पी पत्रम् (गूमा का पत्ता)। तस्य गुणानाह

द्रोणपुष्पीदलं स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत्। भेदनं कामलाशोथमेहज्वरहरं कटु ॥ ३४ ॥

गूमा के पत्ते का शाक—स्वादिष्ट, कटुरसयुक्त, रूक्ष, गुरु, पित्तकारक, मलभेदक एवं—कामला, शोथ, प्रमेह तथा ज्वर को दूर करनेवाला होता है ॥ ३४ ॥

२१ गूमा

इसका पूर्ण विवरण गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ४६१) में दिया गया है।

अथ यवानीशाकम् (अजवाइन का शाक)। तस्य गुणानाह

यवानीशाकमाग्नेयं रुच्यं वातकफप्रणुत्। उष्णं कटु च तिक्तं च पित्तलं लघु शूलहृत् ॥३५॥

अजवाइन के पत्ते का शाक-आग्नेय (अग्नि के गुणों से युक्त), रुचिकारक, उष्ण, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, पित्तजनक, लघु एवम्—वात, कफ तथा शूल को दूर करनेवाला होता है॥

२२ अजवाइन

इसका पूर्ण परिचय हरीतक्यादि वर्ग (पृष्ठ २५) में दिया जा चुका है।

अथ दद्रुघ्नपत्रम् (पमार, चकवड़ शाक)। तस्य गुणानाह

दद्रुघ्नपत्रं दोषघ्नमम्लं वातकफापहम्। कण्डूकासक्रिमिश्वासदद्रुकुष्ठप्रणुल्लघु ॥ ३६ ॥

चकवड़ के पत्ते-दोषनाशक, लघु, अम्लरस युक्त, वात, कफ, खुजली, खांसी, क्रिमि, श्वास, दाद और कुष्ठ को दूर करनेवाले होते हैं॥ ३६ ॥

२३ चकवड़

इसका पूर्ण विवरण हरीतक्यादि वर्ग (पृष्ठ ११५) में दिया गया है।

अथ सेहुण्डः (थूहर)। तत्पत्रस्य गुणानाह

सेहुण्डस्य दलं तीक्ष्णं दीपनं रेचनं हरेत्। आध्मानाष्ठीलिकागुल्मशूलशोथोदराणि च ॥३७॥

थूहर के पत्ते—तीक्ष्ण, अग्निदीपक, रेचक (दस्तावर) एवम्—आध्मान (अफरा), अष्ठीलिका, गुल्म, शूल, शोथ तथा उदररोग को दूर करने वाले होते हैं ॥ ३७ ॥

२४ थूहर

इसका पूर्ण परिचय गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ३०७) में दिया गया है।

अथ पर्पटः (पित्तपापड़ा)। तस्य गुणानाह

पर्पटो हन्ति पित्तास्रज्वरतृष्णाकफभ्रमान्। संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥

पित्तपापड़ा—तिक्त रस युक्त, ग्राही, शीतल, वातजनक, लघु एवम्—पित्त, रक्तविकार, ज्वर, प्यास, कफ, भ्रमरोग तथा दाह को दूर करने वाला होता है ॥ ३८ ॥

२५ पित्तपापड़ा

इसका पूर्ण विवरण गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ३२४) में किया गया है।

अथ गोजिह्वा । तस्या गुणानाह

गोजिह्वा कुष्ठमेहास्रकृच्छ्रज्वरहरी लघुः ॥ ३९ ॥

गोजिह्वा के पत्ते—लघु एवम् कुष्ठ, प्रमेह, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र तथा ज्वर को दूर करने वाले होते हैं ॥ ३९ ॥

२६ गोजिह्वा

इसका पूर्ण वर्णन गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ४७१) में दिया गया है ।

अथ पटोलपत्रम् । तस्य गुणानाह

पटोलपत्रं पित्तघ्नं दीपनं पाचनं लघु। स्निग्धं वृष्यं तथोष्णं च ज्वरकासक्रिमिप्रणुत् ॥ ४० ॥

परवर के पत्ते—पित्तनाशक, अग्निदीपक, पाचक, लघु, स्निग्ध, वीर्यवर्धक, उष्ण, एवम्—ज्वर, खांसी तथा क्रिमि को नष्ट करने वाले होते हैं ॥ ४० ॥

२७ पटोल-पत्र

इसका परिचय आगे फलशाक वर्ग में लिखा गया है ।

अथ गुडूचीपत्रम् (गिलोयशाक) । तस्य गुणानाह

गुडूचीपत्रमाग्नेयं सर्वज्वरहरं लघु । कषायं कटु तिक्तं च स्वादुपाकं रसायनम् ॥ ४१ ॥
बल्यमुष्णं च संग्राहि हन्याद्दोषत्रयं तृषाम् । दाहप्रमेहवातास्रक्कामलाकुष्ठपाण्डुताः ॥४२॥

गिलोय के पत्ते—आग्नेय (अग्नि के गुणों से युक्त), सर्व प्रकार के ज्वर को दूर करने वाले, लघु, कषाय, कटु तथा तिक्त रसयुक्त, विपाक में मधुर रस युक्त, रसायन, बलकारक, उष्ण, ग्राही, एवम्—त्रिदोष, तृषा, दाह, प्रमेह, वात, रक्तविकार या वातरक्त, कामला, कुष्ठ तथा पाण्डु रोग को दूर करने वाले होते हैं ॥ ४१-४२ ॥

२८ गिलोय शाक

इसका विस्तृत वर्णन गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ २६९) में किया गया है ।

अथ कासमर्दः (कसौंदी शाक) । तस्य नामानि तत्पत्रस्य गुणांश्चाह

कासमर्दोऽरिमर्दश्च कासारिः कर्कशस्तथा । कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्रनुत् ॥ ४३ ॥
मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम् । विशेषतः कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु ॥ ४४ ॥

कसौंदी के संस्कृत नाम—कासमर्द, अरिमर्द, कासारि तथा कर्कश ये सब हैं । **कासमर्द के पत्ते**—मधुर रसयुक्त, रुचिकारक, वीर्यवर्धक, पाचक, कण्ठ को शुद्ध करने वाले, लघु, ग्राही, एवम्—खांसी, विष, रक्तविकार, कफ तथा वात को नाश करने वाले होते हैं और विशेषतः ये कासनाशक तथा पित्त को दूर करने वाले होते हैं ॥ ४३-४४ ॥

२९ कसौंदी

हिं०-कसोंदी, कसौंदी । **बं०**-कालकासुन्दा । **म०**-कासविंदा । **गु०**-कासोंदरो । **क०**-दोड्डुतगचे । **ते०**-कसि । **मला०**-पोन्ना वीर । **ता०**-पैदाविरै । **अं०**-The Negro Coffee

(दी निग्रो कॉफी) । **ले०**-*Cassia occidentalis Linn.* (कॅशीआ ऑक्सीडेन्टेलिस्) । Fam. Leguminosae (लेग्युमिनोसी) ।

कसौंदी—क्षुप जाति की वनस्पति वर्षा ऋतु में अधिक होती है । इसका क्षुप-३-४ फीट तक ऊँचा तथा कुछ दुर्गन्ध युक्त होता है । कांड-कुछ नालीदार होता है । पत्ते-संयुक्त एवं ६ से १२ इञ्च लम्बे तथा वृन्त के आधार पर एक ग्रन्थि युक्त होते हैं । पत्रक-लट्वाकार, लट्वाकार-आयताकार या लट्वाकार-प्रासवत्, १½ से ४ इञ्च लम्बे, मुलायम एवं प्रायः लम्बाग्र होते हैं । पुष्प-पीले रङ्ग के होते हैं । फली-४-५ इञ्च लम्बी तथा चिपटी होती है ।

इसके पत्र, मूल तथा बीजों का उपयोग किया जाता है । बीजों को भूनकर कॉफी की तरह व्यवहार में लाते हैं ।

भेद—इसका एक अन्य भेद कॅ०सोफेरा (C. sophera) होता है । इसके क्षुप-४ से ७ फीट ऊँचे; पत्रक ६ से १२ जोड़े, प्रायः १ से ३ इञ्च लम्बे, लम्बे प्रासवत्, तीक्ष्णाग्र या लम्बाग्र एवं वृन्त आधारीय ग्रंथि एक किन्तु भिन्न आकार की होती है ।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में टॅनिक् ॲसिड, म्यूसिलेज, तेल, एमोडिन (Emodin), टॉक्सअल्ब्यूमिन (Toxalbumin) एवं क्राइसोरॉबिन (Chrysorobin) पाया जाता है । विरेचन द्रव्य इनको भूनने से नष्ट हो जाते हैं । यह विरेचन द्रव्य सनाय जैसे इसके पत्तों में भी होते हैं ।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, कण्ठशोधन, कफघ्न, स्रंसन, ज्वरहर एवं कुष्ठघ्न है । इसकी जड़ मूत्रजनन है । इसका पंचांग विरेचन है । पत्र एवं बीज ज्वरहर हैं ।

(१) कफज्वर, कुकास, श्वास आदि में पत्रस्वरस मधु के साथ देते हैं । इससे वमन तथा विरेचन भी होता है ।

(२) पंचांग के क्वाथ से वायु का अनुलोमन होता है तथा शौच साफ होता है ।

(३) पत्तों का लेप व्रणशोथ, विसर्प आदि दाहयुक्त चर्म रोगों में किया जाता है । त्वचा के रोगों में मूल तथा पत्तों का क्वाथ एवं लेप उपयोगी है ।

(४) उदर तथा जलशोथ में मूल का उपयोग करते हैं ।

मात्रा—स्वरस ½ से १ तोला; पंचांग ३ से ६ माशा; फल ३ से ६ माशा ।

कासमर्द भेद—इसमें एमोडिन तथा क्राइसोफेनिक ॲसिड पाया जाता है । इसके भी गुण कासमर्द के समान हैं । इसके पत्तों का बाह्य प्रयोग दाद में करते हैं । पंचांग का क्वाथ खांसी में दिया जाता है ।

अथ चणकशाकम् (चने का शाक) । तस्य गुणानाह

रुच्यं चणकशाकं स्याद् दुर्जरं कफवातकृत् । अम्लं विष्टम्भजनकं पित्तनुद्दन्तशोथहृत् ॥४५॥

चने का शाक—रुचिकारक, देर में हजम होने वाला, कफ तथा वातकारक, अम्लरस युक्त, विष्टम्भ पैदा करने वाला एवम्—पित्त तथा दांतों के शोथ को दूर करने वाला होता है ॥ ४५ ॥

३० चना

चने का वर्णन शिम्बीधान्य वर्ग (पृष्ठ ६४९) में किया गया है ।

अथ कलायशाकम् (मटर का शाक)। तस्य गुणानाह

कलायशाकं भेदि स्याल्लघु तिक्तं त्रिदोषजित् ॥ ४६ ॥

मटर का शाक—मल का भेदन करने वाला, लघु, तिक्तरस युक्त, एवम् त्रिदोष-नाशक होता है ॥ ४६ ॥

३१ मटर

इसका परिचय शिम्बीधान्य वर्ग (पृष्ठ ६४९) में दिया गया है।

अथ सार्षपं शाकम् (सरसों का शाक)। तस्य गुणानाह

कटुकं सार्षपं शाकं बहुमूत्रमलं गुरु।
अम्लपाकं विदाहि स्यादुष्णं रूक्षं त्रिदोषकृत। सक्षारलवणं तीक्ष्णं स्वादु शाकेषु निन्दितम् ॥

सरसों का शाक—कटुरस युक्त, बहुत मूत्र तथा मल को करने वाला, गुरु, विपाक में अम्लरस युक्त, विदाही, उष्ण, रूक्ष, त्रिदोष-कारक, क्षार युक्त लवण रस वाला, तीक्ष्ण और स्वादिष्ट होता है। एवम् यह शाकों में निन्दनीय होता है ॥ ४७ ॥

३२ सरसों

इसका वर्णन शिम्बीधान्य वर्ग (पृष्ठ ६५४) में किया गया है।

इति पत्रशाकानि ॥

अथ पुष्पशाकानि। तत्रागस्तिपुष्पस्य गुणानाह

अगस्तिकुसुमं शीतं चातुर्थिकनिवारणम्।
नक्तान्ध्यनाशनं तिक्तं कषायं कटुपाकि च। पीनसश्लेष्मपित्तघ्नं वातघ्नं मुनिभिर्मतम् ॥४८॥

अगस्त का पुष्प—तिक्त तथा कषायरस युक्त, विपाक में कटुरस युक्त, शीतल एवम् चौथिया ज्वर, नक्तान्ध्य (रतौंधी), पीनस, कफ, पित्त तथा वात को नष्ट करने वाला होता है ऐसा मुनि लोग मानते हैं ॥ ४८ ॥

३३ अगस्त

इसका विवरण पुष्पवर्ग (पृष्ठ ५०८) में दिया गया है।

अथ कदलीपुष्पम् (केले का फूल)। तस्य गुणानाह

कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरु। वातपित्तहरं शीतं रक्तपित्तक्षयप्रणुत् ॥ ४९ ॥

केले का फूल—मधुर तथा कषायरस युक्त, स्निग्ध, गुरु, शीतल एवम्—वात-पित्त, रक्तपित्त तथा क्षय को दूर करने वाला होता है ॥ ४९ ॥

३४ केला

इसका परिचय फलवर्ग (पृष्ठ ५५७) में दिया गया है।

अथ शिग्रोः मधुशिग्रोः च पुष्पं (सहजना एवं उसके भेद के फूल)। तयोर्गुणानाह

शिग्रोः पुष्पं तु कटुकं तीक्ष्णोष्णं स्नायुशोथनुत्।
कृमिहृत्कफवातघ्नं विद्रधिप्लीहगुल्मजित्। मधुशिग्रोस्तचक्षुष्यं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ५० ॥

सहजन का फूल—कटुरस युक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, स्नायुगत शोथ को दूर करने वाला एवम् कृमि, कफ, वात, विद्रधि, प्लीहा तथा गुल्म को नष्ट करने वाला होता है।

मधुशिग्रु (सहजन भेद) का फूल—नेत्रों के लिये हितकर तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥ ५० ॥

३५ सहजना

इसका विवरण गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ३४०) में किया गया है।

अथ शाल्मलीपुष्पम् (सेमल के फूल)। तस्य गुणानाह

शाल्मलीपुष्पशाकं तु घृतसैन्धवसाधितम्। प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यं च न संशयः ॥५१॥
रसे पाके च मधुरं कषायं शीतलं गुरु। कफपित्तास्रजिद् ग्राहि वातलं च प्रकीर्त्तितम् ॥५२॥

सेमल के फूल का शाक—यदि यह घी तथा सेन्धा निमक डाल कर बनाया जाय तो सेवन करने से दुःसाध्य प्रदर को दूर करता है इसमें कोई संशय नहीं है। और यह कषाय तथा मधुररस युक्त, विपाक में मधुररस युक्त, शीतल, गुरु, ग्राही, वातजनक एवम् कफ, पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ५१–५२ ॥

३६ सेमर

इसका विवरण वटादिवर्ग (पृष्ठ ५१७) में दिया गया है।

इति पुष्पशाकानि।

अथ फलशाकानि। तत्रकूष्माण्डम् (पेठा)। तस्य नामानि तद्बाल-मध्यम-वृद्धफलानां च गुणानाह

कूष्माण्डं स्यात्पुष्पफलं पीतपुष्पं बृहत्फलम् ॥ ५३ ॥
कूष्माण्डं बृंहणं वृष्यं गुरु पित्तास्रवातनुत्। बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥५४॥
वृद्धं नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु। बस्तिशुद्धिकरं चेतोरोगहृत्सर्वदोषजित् ॥ ५५ ॥

पेठा के नाम—कूष्माण्ड, पुष्पफल, पीतपुष्प तथा बृहत्फल ये सब हैं। पेठा—बृंहण (बलवर्धक), वृष्य (वीर्यवर्धक), गुरु एवम् पित्त, रक्तविकार तथा वात को नष्ट करने वाला होता है। कच्चा पेठा—शीतल तथा पित्तनाशक होता है।

मध्यम अवस्था का पेठा—कफकारक होता है। पका पेठा—स्वादिष्ट, क्षारयुक्त, किंचित् शीतल, अग्निदीपक, लघु, बस्ति (मूत्राशय) का शोधन करने वाला, मानसिक रोग (उन्माद आदि) तथा सम्पूर्ण दोषों को दूर करने वाला होता है ॥ ५४–५५ ॥

३७ पेठा

हि०—पेठा, भूरा कुम्हड़ा, भतुआ, रकसा कोंहडा। **बं०**—कुमड़ा। **म०**—कोहळा। **गु०**—मुरुं कोहळुं। **क०**—दार कोहोला। **ता०**—पुशनीकै। **ते०**—गुम्मडि। **फा०**—पजदाब, पदुब। **अ०**—मद्दुवः। **अं०**—The Ash Gourd (दी ऍश गोर्ड)। **ले०**—*Benincasa cerifera Savi* (बेनिन्कॅसा सेरीफेरा)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

पेठा–प्रायः सब प्रान्तों में रोपण किया जाता है। इसकी लता–मचान आदि के सहारे खूब फैलती है। पत्ते–कद्दू के समान ४–६ इञ्च के घेरे में गोलाकार, कटे किनारे वाले या ५ भाग वाले होते हैं। फूल–पीले रङ्ग के आते हैं। फल–गोलाई युक्त, किञ्चित लम्बे तथा लम्बाई में १ से १·५ फीट होते हैं। इसकी गुद्दी सफेद रहती है। बीज–अनेक, चिपटे एवं किनारेदार होते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके फल में आर्द्रता ९६, प्रोटीन ०·४, स्नेह ०·१, कार्बोहाइड्रेट ३·२, खनिज ०·३ भाग तथा विटामिन बी$_1$ २१ अ. एकक प्रति १०० ग्राम में रहता है।

गुण और प्रयोग—इसका फल मूत्रजनन, सौम्य विरेचक, बल्य, पौष्टिक, पित्तशामक, रक्तपित्त प्रशमन एवं रक्त संग्राहक है।

इसका उपयोग रक्तपित्त, रक्तष्ठीवन, आन्तरिक रक्तश्राव, पागलपन, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, तृष्णा एवं प्रमेह में किया जाता है।

इससे रक्ताभिसरण की तेजी कम होती है। अधिक मात्रा में शौच साफ होकर नींद आती है।

(१) उन्माद में इसका रस पिलाते हैं जिससे शौच साफ होकर नींद आती है।

(२) राजयक्ष्मा में रक्तष्ठीवन होने पर इसका रस देते हैं।

(३) अर्श में कूष्माण्डपाक देते हैं।

(४) इसके बीज तथा बीजों का तेल चिपटे कृमियों के उपसर्ग में लाभदायक है।

मात्रा—स्वरस २ से ४ औंस; बीजचूर्ण ३ से ६ माशा।

अथ कूष्माण्डी (कुम्हडी)। तस्यानामगुणानाह

कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुरपि कीर्त्तिता।
कर्कारुर्ग्राहिणी शीता रक्तपित्तहरा गुरुः। पक्वा तिक्ताऽग्निजननी सक्षारा कफवातनुत् ॥

कुम्हड़ी का संस्कृत नाम—अत्यन्त लघु पेठे को "कूष्माण्डी" कहते हैं, इसी का नाम "कर्कारु" भी है।

कुम्हड़ी—ग्राही, शीतल, रक्तपित्त नाशक तथा गुरु होती है। पकी कुम्हड़ी–तिक्तरस युक्त, अग्निवर्धक, क्षार युक्त एवम्—कफ तथा वात को दूर करने वाली होती है ॥ ५६ ॥

३८ कूष्माण्डी (कोहला)

हि०–कुम्हरा, सफेद कद्दू। **बं**–सादा कुम्हरा। **म०**–कोला। **ता०**–सुरईकई। **अं०**–Vegetable Marrow (वेजिटेबुल मॅरो); Field Pumpkin (फील्ड पम्पकिन)। **लै०**–*Cucurbita pepo Linn.* (कुकुरबिटा पेपो)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

यह सभी प्रान्तों में कृषित अवस्था में होता है। इसकी लता–वर्षायु, दृढ़ एवं खरदरी से रोमश होती है। पत्ते–गोलाकार, अल्प खण्डित एवं वृन्त तीक्ष्ण रोमश होते हैं। पुष्प–पीले रङ्ग के आते हैं। फल–कई प्रकार के किन्तु सामान्यतः नाशपाती के आकार वाले या कुछ आयताकार होते हैं। इसका डण्ठल कड़ा, अनेक गहरी धारियों से युक्त एवं फल के आधारीय भाग में फूला हुआ नहीं रहता।

इसके अनेक प्रकार होते हैं। गुद्दी हल्के रंग की एवं गंधहीन होती है। बीजों को तथा उसके तेल को खाने के काम में लाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें आर्द्रता ९५, प्रोटीन ०·५, स्नेह ०·१, कार्बोहाइड्रेट ४, एवं खनिजों में ०·३ तथा अत्यल्प खटिक, आर्सेनिक और विटामिन 'सी' १०० ग्राम में १८ मि० ग्रा० रहता है।

बीजमज्जा में प्रोटीन, तैल (३८%), रालीय द्रव्य एवं सॅलिसिलिक् ॲसिड आदि द्रव्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके ताजे बीज, चिपटे कृमियों (Taenicide) में लाभदायक हैं। ३० से ६० ग्राम बीजों को कूटकर दूध एवं मधु मिलाकर खालीपेट पिलाते हैं। बाद में विरेचन देते हैं। इसके पत्तों का लेप जलने पर करते हैं।

नोट–कुम्हड़े के निम्नलिखित अन्य भेद भी पाये जाते हैं।

(क) **हि०**–लाल कुम्हड़ा, सीताफल। **अं०**–Red Gourd (रेड गोर्ड); Squash (स्कॅश)। **लै०**– C. maxima Duchesne (कु. मॅक्सिमा)। इसमें भी फल विभिन्न नाप के होते हैं एवं डंठल न तो धारीदार रहता है न फल से लगा भाग बढ़ा हुआ रहता है। इसका गूदा पकने पर पीताभ या रक्ताभ रहता है। इसके बीज श्वेत या भूरे तथा उनके किनारे भी उसी तरह होते हैं। इसके पत्र, पुष्प, फल एवं बीज का उपयोग खाद्य रूप में किया जाता है। बीज कृमिघ्न, मूत्रल तथा बल्य होते हैं।

(ख) **लै०**–*C. moschata Duchesne ex Poir.* (कु. मास्केटा)। इसमें के फल का डंठल धारीदार एवं फल से लगाभाग बढ़ा हुआ रहता है। इसमें बीज धूसराभ श्वेत या पीताभ किन्तु किनारे गहरे रंग के होते हैं। इसके अन्य भाषा नाम एवं इसका व्यवहार (क) की तरह ही होता है।

अथ अलाबूर्दीर्घा-वर्त्तुला च तस्या नामानि भेदांस्तत्फलगुणाँश्चाह

अलाबूः कथिता तुम्बी द्विधा दीर्घा च वर्तुला ॥ ५७ ॥
मिष्टतुम्बीफलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु। वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातु पुष्टिविवर्धनम् ॥ ५८ ॥

लौकी का संस्कृत नाम—अलाबू तथा तुम्बी है। भेद–लम्बी तथा गोल भेद से लौकी दो प्रकार की होती है अर्थात्–१ दीर्घा अलाबू, २ वर्त्तुला अलाबू।

मीठी लौकी का फल—गुरु, रुचिकारक, वीर्यवर्धक, हृदय के लिये हितकर, पित्त तथा कफ नाशक एवम् धातु की पुष्टि को विशेष रूप से करने वाला होता है ॥ ५७–५८ ॥

३९ अलाबू (लौकी)

हि०–तुम्बी, लौआ, लौकी, कद्दू, कदुआ, मीठी तोम्बी, लम्बाकद्दू। **बं०**–लाउ। **म०**–दुध्या भोंपळा। **गु०**–दुधियुं, तुंबड़ी। **क०**–उवलकाई। **ते०**–अलबुबु, आनपकाया। **फा०**–कदु शीरिन्। **अ०**–युक्तिनेहुलुकुरा। **अं०**–White Gourd (व्हाइट गोर्ड)। **लै०**–*Lagenaria vulgaris Ser* (लॅगेनेरिया वल्गॅरिस्)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में रोपण की जाती है। खेत, बाग, मचान, छप्पर आदि पर फैली हुई इसकी बेल देखने में आती है। इसके पत्ते–मृदुरोमश, ६–७ इञ्च के घेरे में गोलाकार, पञ्च कोणाकार या पांच खण्डवाले होते हैं। फूल–सफेद रङ्ग के आते हैं। फल–१–२ हाथ लम्बा गोल या गोल अथवा चिपटा गोल विभिन्न आकार का होता है। कृषिजन्य इसके अनेक आकार होते हैं। कृषिजन्य की गुद्दी मीठी होती है तथा वन्य की कड़वी होती है।

गुण और प्रयोग—इसके कृषित प्रकार को लोग सब्जी इत्यादि के काम में लाते हैं। वन्यभेद जो स्वाद में कड़वा होता है उसका चिकित्सा में उपयोग होता है जिसका आगे वर्णन दिया गया है।

अथ कटुतुम्बी (कड़वी लौकी) । तस्या नामगुणानाह

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्सा तुम्बी च महाफला ।
कटुतुम्बी हिमा हृद्या पित्तकासविषापहा । तिक्ता कटुर्विपाके च वातपित्तज्वरान्तकृत् ॥५९॥

कड़वी तुम्बी के संस्कृत नाम—इक्ष्वाकु, कटुतुम्बी, तुम्बी और महाफला ये सब हैं।

कड़वी तुम्बी—तिक्तरसयुक्त, विपाक में कटु रसयुक्त, शीतल, हृदय के लिए हितकर एवम्—पित्त, खांसी, विष, वात तथा पित्तज्वर को नष्ट करने वाली होती है ॥ ५९ ॥

४० कटुतुम्बी (कड़वी तुम्बी)

हि०—कटुलौकी, कड़वी तोंबी, तित लौकी, तितुआ लौका, तुमरी, तुम्बी । बं०—तितकाउ, तित लाओ । म०—कडु भोपळा । गु०—कड़वी तुम्बरी । क०—कहि सोरे । फा०—कदूय तल्ख । अ०—कर अउल् मुर, करउस् मुर । अं०—Bitter Gourd (बिटर गोर्ड) । ले०—*Lagenaria vulgaris Ser.* (लॅगेनेरिया वल्गेरिस्) । Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी) ।

कड़वी तुम्बी—इसके लता-पत्र-पुष्पादि सब उक्त अलाबू के समान होते हैं। फल—यह बहुत कड़वा होता है । यह इसका वन्य भेद है ।

रासायनिक संगठन—बीजों में सॅपोनिन् होता है ।

गुण और प्रयोग—इसकी गुद्दी अत्यन्त कड़वी, वामक एवं भेदन होती है । इन्द्रायण की तरह इसका प्रभाव है । इससे हैजे जैसी अवस्था होती है ।

प्राचीन ग्रन्थों में वमन कराने के लिये इसका उपयोग लिखा है । अल्प मात्रा में इससे मिचली आकर कफ निकलता है तथा शौच साफ होता है । कामला तथा कास श्वास में इसे देते हैं । कामला में पत्तों का क्वाथ देते हैं । यह भी विरेचन होता है । दाह एवं शोथ पर गुद्दी को लगाते हैं । पत्तों से सिद्ध तैल गंडमाला, गांठ या बद आदि पर मलते हैं ।

अथ कर्कटी (ककडी) । तस्या नामानि तत्पक्कापक्कफलगुणांश्चाह

एर्वारुः कर्कटी प्रोक्ता कथ्यन्ते तद्गुणा अथ ॥ ६० ॥
कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरी गुरुः । रुच्या पित्तहरा सामा पक्वा तृष्णाऽग्निपित्तकृत् ॥

ककड़ी का संस्कृत नाम—एर्वारु तथा कर्कटी है ।

कच्ची ककड़ी—मधुररस युक्त, शीतल, रूक्ष, ग्राही, गुरु, रुचिकारक तथा पित्तनाशक होती है । पकी ककड़ी—तृषा, जठराग्नि तथा पित्त को बढ़ाने वाली होती है ॥ ६०–६१ ॥

४१ ककड़ी

हि०—ककड़ी (री) । बं०—कांकुर । म०—कांकडी । क०—सौते । ते०—दोसकाया । ता०—वेळरिक्कै । फा०—ख्यार जाव, ख्यार दराल । अ०—किस्सा कदस । अं०—Snake Cucumber (स्नेक् कुकुम्बर) । ले०—*Cucumis utilissimus Roxb.* (कुकुमिस युटिलिसिमस्) । Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी) ।

यह युक्तप्रान्त, पञ्जाब आदि प्रान्तों में अधिक उत्पन्न होती है । इसकी लता खूब फैलती है । पत्ते—पञ्च कोणाकार और दन्तुर होते हैं । फूल—पीले रङ्ग के आते हैं । फल—कुछ इञ्चों से लेकर २ फीट तक लंबे होते हैं । यह हलके या गहरे हरे रंग के एवं कोमल अवस्था में मृदु रोमश होते हैं । बीज—छोटे छोटे होते हैं ।

इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं जिनमें कडवा भेद भी होता है । गरमी के दिनों में इसे लोग कच्चा या सब्जी के रूप में खाते हैं ।

गुण और प्रयोग—ककड़ी शीत, पाचन एवं मूत्रजनन है । बीज शीत, मूत्रजनन एवं बल्य हैं । पत्तों की राख कफ निस्सारक है ।

(१) बीजों का उपयोग मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात में करते हैं । इसमें बीज ४ भाग, दारु हल्दी १ भाग, मुलेठी १ भाग इनको पीसकर चावल की मांड के साथ पिलाते हैं ।

(२) गेहूँ, मकई, अरहर, मूंग आदि प्रोटीन युक्त आहार से उत्पन्न कुपचन में ककड़ी का उपयोग किया जाता है । इसे भोजन के साथ या भोजनोत्तर देते हैं । अजीर्ण से वमन हो तो बीजों को मट्ठे में पीसकर पिलाते हैं ।

(३) श्वास नलिकाओं में कफ जमा हो तो पत्तों की राख देते हैं ।

अथ चिचिण्डः (चिचिण्डा) । तस्य नामानि गुणांश्चाह

चिचिण्डः श्वेतराजिः स्यात्सुदीर्घो गृहकूलकः ।
चिचिण्डो वातपित्तघ्नो बल्यः पथ्यो रुचिप्रदः । शोषणोऽतिहितः किञ्चिद् गुणैर्न्यूनः पटोलतः ॥

चचेंड़ा के संस्कृत नाम—चिचिण्ड, श्वेतराजि, सुदीर्घ तथा गृहकूलक ये सब हैं ।

चचेंड़ा—वात तथा पित्त नाशक, बलदायक, पथ्य, रुचिकारक तथा शोष (क्षय) रोगी के लिये अत्यन्त हितकर होता है । एवम्—यह गुणों में परवल से कुछ कम होता है ॥ ६२ ॥

४२ चचेण्डा

हि०—चचेंडा, चिचिंडा चिचेंडा । बं०—चिचिंगा । म०—पड्वळ । गु०—पंडोलुं । ते०—पोटल काया । अं०—Snake Gourd (स्नेक गोर्ड) । ले०—*Trichosanthes anguina Linn.* (ट्रॉइकोसॅंथीस् ऍंग्विना) । Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी) ।

चिचेंडा—खेतों में बोया जाता है । इसकी लता—विस्तार से फैलती है । पत्ते—कटे किनारे वाले पंचकोणाकार होते हैं । फूल—पीले रङ्ग के आते हैं । फल—ककड़ी के समान लम्बा होता है परन्तु इसके दोनों छोर पतले होते हैं और इस पर लम्बी सफेद धारियां होती हैं ! इसकी सब्जी लोग खाते हैं ।

गुण और प्रयोग—इसके बीज शीतल होते हैं ।

अथ कारवेल्लं कारवेल्ली च (करेला, करेली) तयोर्नामानि गुणांश्चाह

कारवेल्लं कठिल्लं स्यात्कारवेल्ली ततो लघुः । कारवेल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तमवातलम् ॥६३॥
ज्वरपित्तकफास्रघ्नं पाण्डुमेहक्रमीन् हरेत् । तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद्दीपनी लघुः ॥६३॥

करेला के संस्कृत नाम—कारवेल्ल तथा कठिल्ल हैं । करेली का संस्कृत नाम—कारवेल्ली है । यह करेला की अपेक्षा छोटी होती है । करेला—तिक्त रसयुक्त, शीतल, मलभेदक, लघु, किंचिद् वातजनक होता है और ज्वर, पित्त, कफ, रक्तविकार, पाण्डु, प्रमेह तथा क्रमि का नाशक होता है ।

करेली—इसके गुण उक्त करेला के भाँति होते हैं किन्तु विशेष कर यह अग्निदीपक तथा लघु होती है ॥ ६३–६४ ॥

४३ करेला

हि०—करेला, करैला, करइला, करेली । बं०—करोला, बड़ा मसिया, उच्छे । म०—कारलें, कारली । गु०—कारेला, करेलुं । क०—हागल । ते०—काकर । ता०—पागल । फा०—कारेलाह । अ०—

किस्सा उश्शिमार, कसायुल हिमार। अं०-Carilla Fruit (कॅरिला फ्रूट); Bitter Gourd (बिटर गोर्ड) । ले-*Momordica charantia Linn.* (मोमोर्डिका चेरण्टिआ) । Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी) ।

प्रायः सब प्रान्तों में इसे रोपण करते हैं। इसकी लता-मृदुरोमश होती है। पत्ते-२ से ५ इञ्च के घेरे में गोलाकार, गहरे कटे किनारे वाले एवं ५-७ भागों में विभक्त रहते हैं। फूल-चमकीले पीले रङ्ग के आते हैं। फल-१ से ५ इञ्च लंबे, बीच में मोटे तथा दोनों तरफ नोकीले, त्रिकोणाकृति उभारों के कारण ऊबड़ खाबड़, हरे किन्तु पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं। बीज-चिपटे होते हैं।

इसके कृषिजन्य अनेक प्रकार, आकार तथा नाप के अनुसार पाये जाते हैं जिनमें से छोटे फल को करेली कहते हैं। इसके कड़वे स्वाद को कम करने के लिये सब्जी बनाने के पूर्व नमक के जल में इसे भिगोकर रखते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें गंधयुक्त उड़नशील तैल, कॅरोटीन, ग्लूकोसाइड, सॅपोनिन् एवं मोमोरिडिसाइन (Momoridicine) नामक क्षाराभ पाया जाता है। बीजों में ३२% विरेचक तैल होता है।

गुण और प्रयोग—इसके फल पित्तशामक, आनुलोमिक, कृमिघ्न एवं मूत्रजनन हैं। वृन्त-युक्त कोमल पत्ते कड़वे, मूत्रजनन, वामक एवं विरेचक हैं। कभी-कभी इससे वमन विरेचन अधिक होता है उस समय उसके निवारण के लिये घी भात खिलाना चाहिये। प्रयोग से देखा गया है कि खरगोश में इससे रक्तगत शर्करा की मात्रा कम हो जाती है। इस आधार पर इसके मधुमेह में लाभदायक सिद्ध होने की संभावना है।

(१) यकृत् प्लीहावृद्धि के साथ जलोदर हो तथा विषम ज्वर हो तब इसके पत्तों का रस देते हैं।

(२) पित्तप्रकोप, श्वसनिका शोथ आदि में वमन कराने के लिये पत्र रस दिया जाता है। केंचुवे की बीमारी में इसे गरम जल के साथ देते हैं।

(३) आमवात, वातरक्त, यकृत् प्लीहा वृद्धि एवं जीर्ण त्वचा के रोगो में बिना कड़वापन दूर किये फल की सब्जी लाभदायक होती है।

(४) पुराने त्वचा के रोगों में पत्तों का लेप किया जाता है।

(५) इसकी जड़ के क्वाथ से गर्भपात हो सकता है।

मात्रा—स्वरस १ से २ ड्राम; बच्चों को १/२–२ ड्राम।

अथ महाकोशातकी (नेनुआ) । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

महाकोशातकी प्रोक्ता हस्तिघोषा महाफला ॥ ६५ ॥
धामार्गवो घोषकश्च हस्तिपर्णश्च स स्मृतः । महाकोशातकी स्निग्धा रक्तपित्तानिलापहा ॥ ६६ ॥

नेनुआ के संस्कृत नाम—महाकोशातकी, हस्तिघोषा, महाफला, धामार्गव, घोषक तथा हस्तिपर्ण ये सब हैं। नेनुआ-स्निग्ध एवम् रक्तपित्त तथा वायु को नष्ट करनेवाली होती है ॥ ६५-६६ ॥

४४ नेनुआ

हि०-नेनुआ, बड़ी तोरई, घिया तोरई । बं०-धुंदुल, धुन्दुल। म०-घोसाळें। गु०-गुलका। क०-अरहिरे तुप्पिरी। ता०-पिचुक्कु। ते०-नेति बीर, बीर काया। फा०-खियार अं०-Sponge Gourd (स्पंज गोर्ड)। ले०-*Luffa aegyptiaca Mill ex Hook f.* (लूफा एजिप्टिएका) । Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी) ।

नेनुआ—एक बहुत प्रसिद्ध तरकारी प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होती है। इसकी लता विस्तार में फैलने वाली होती है। पत्ते-४-६ इंच के घेरे में, गोलाकार, ५ या क्वचित् ७ भाग वाले होते हैं। फूल-पीले रङ्ग के एवं हरी शिराओं से युक्त होते हैं। फल-५ से १२ इञ्च लंबे एवं लंबाई में धारीदार होते हैं। बीज—धूसर या काले, ३/८–१/२ इञ्च, चिपटे एवं अल्प पंखयुक्त होते हैं।

इसके कृषित एवं वन्य भेद होते हैं। कृषित की सब्जी बनाई जाती है। इसके पके फल का जाला स्पंज की तरह काम में आता है।

रासायनिक संगठन—इसके वन्य भेद में एक रक्तसंस्रायी सॅपोनिन तथा कड़वा विषैला पदार्थ रहता है।

गुण और प्रयोग—वन्य भेद के पत्तों का रस तथा बीज विरेचक एवं वामक होते हैं। सभी प्रकार के व्रण पर इसके पत्र स्वरस से बनाया मलहम लाभदायक होता है। गांठ आदि पर पत्तों के रस में गुड़, चूना या सिंदूर मिलाकर लेप करते हैं।

अथ राजकोशातकी (तोरई) । तस्या नामानि गुणाँश्चाह

धामार्गवः पीतपुष्पो जालिनी कृतवेधना । राजकोशातकी चेति तथोक्ता राजिमत्फला ॥ ६७ ॥
राजकोशातकी शीता मधुरा कफवातकृत् । पित्तघ्नी दीपनी श्वासज्वरकासकृमिप्रणुत् ॥ ६८ ॥

तोरई के संस्कृत नाम—धामार्गव, पीतपुष्प, जालिनी, कृतवेधना, राजकोशातकी तथा राजिमत्फला ये सब हैं। तोरई-मधुर रसयुक्त, शीतल, अग्निदीपक, कफ तथा वातकारक एवम्-पित्त, श्वास, ज्वर, खांसी तथा कृमि को दूर करने वाली होती है ॥ ६७-६८ ॥

४५ तोरई

हि०-तोरई, तरोई, तुरई। बं०-घोषा लता, झिंगा। म०-दोडका, शिराळें। गु०-तुरिया, घिसोड़ा, तुरया। क०-हीरे। ते०-बीर। ता०-मीर्कु। ले०-*Luffa acutangula Roxb.* (लूफा एक्यूटँगुला)। *Fam. Cucurbitaceae* (कुकुर्बिटेसी) ।

तोरई-सभी प्रान्तों में रोपण की जाती है तथा वन्य भी पाई जाती है। इसकी लता और पत्ते नेनुआ के समान होते हैं। फूल-पीले किन्तु पुंकेशर ३ रहते हैं जब कि नेनुआ में ५ रहते हैं। फल-६ से १२ इञ्च लंबे, आधार की तरफ संकुचित एवं १० धारीदार होते हैं। इसमें कभी-कभी कड़वे फल होते हैं। वह वास्तव में जंगली प्रकार नहीं है। जंगली प्रकार का स्वतंत्र आगे वर्णन किया गया है।

रासायनिक संगठन—फल में कड़वा द्रव्य एवं बीजों में तैल रहता है। कुत्तों में इस तैल से वमन, विरेचन एवं लालास्राव की वृद्धि होती है।

गुण और प्रयोग—इसके बीज वामक तथा विरेचक हैं। इसका साग बनाते हैं। रोहा में इसके ताजे पत्तों का रस आंख में डालते हैं। पत्तों का लेप प्लीहा वृद्धि, अर्श एवं कुष्ठ में किया जाता है।

४६ जंगली तोरई

हि०-कड़वी तरोई। ले०-लू. एक्यूटँगुला प्रकार अमारा (L. acutangula (Linn.) Roxb. var. amara Clarke)। यह पश्चिम की तरफ अधिक होती है।

इसके पत्ते तथा पुष्प तोरई के जैसे होते हैं। इसके पत्ते उसकी अपेक्षा छोटे, भूरे रङ्ग के, नये कोमल अवस्था के उनकी तरह मुलायम किन्तु बाद में खुरदरे हो जाते हैं। फल–२ से ४ इञ्च लंबा, १ से १½ इञ्च मोटा, तोरई जैसा १० धारीदार किन्तु कड़वा होता है। इसके सभी अंग कड़वे होते हैं।

रासायनिक संगठन—बीजों में तेल होता है।

गुण और प्रयोग—यह उष्ण, वामक, विरेचक, मूत्रजनन, व्रणशोधन एवं विषघ्न है। अल्प-मात्रा में इससे भूख बढ़ती है, शौच साफ होता है तथा उदर के सभी इन्द्रियों का कार्य ठीक होता है। अधिक मात्रा से वमन विरेचन होता है।

(१) यकृत, प्लीहा वृद्धि से उत्पन्न जलोदर में इसके पंचांग का टिंचर (१ : २०) लाभदायक है।

(२) सड़ने लगे व्रण को धोने के लिये इसका हिम (दो फल+शीतजल १ पाइंट) उपयोग में लाते हैं।

मात्रा—टिंचर १० से २० बूंद।

अथ पटोलः (परवल)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

पटोलः कुलकस्तिक्तः पाण्डुकः कर्कशच्छदः। राजीफलः पाण्डुफलो राजेयश्चामृतफलः ॥६९॥
बीजगर्भः प्रतीकश्च कुष्ठहा कासभञ्जनः। पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥
स्निग्धोष्णं हन्ति कासास्रज्वरदोषत्रयक्रिमीन् ॥ ७० ॥

परवर के संस्कृत नाम—पटोल, कुलक, तिक्त, पाण्डुक, कर्कशच्छद, राजीफल, पाण्डुफल, राजेय, अमृतफल, बीजगर्भ, प्रतीक, कुष्ठहा तथा कासभञ्जन ये सब हैं।

परवर—पाचक, हृदय के लिये हितकर, वीर्यवर्धक, लघु, अग्निदीपक, स्निग्ध, उष्ण एवम्—खांसी, रक्तविकार, ज्वर, त्रिदोष तथा क्रिमि को नष्ट करने वाला होता है ॥ ६९–७० ॥

अथ पटोलस्य मूल–नाल–पत्र–फलानां गुणानाह

पटोलस्य भवेन्मूलं विरेचनकरं सुखात् ॥ ७१ ॥
नालं श्लेष्महरं पत्रं पित्तहारी फलं पुनः। दोषत्रयहरं प्रोक्तं तद्वत्तिक्ता पटोलिका ॥ ७२ ॥

परवर की जड़—सुखपूर्वक विरेचन करने वाली होती है।

परवर की डंडी (नाल)–कफनाशक है। **परवर के पत्ते**–पित्तनाशक होते हैं। **परवल का फल**—त्रिदोषनाशक होता है। **कड़वे परवर** के भी गुण पूर्वोक्त परवर की भाँति ही होते हैं। संस्कृत में इसे "पटोलिका" कहते हैं। यह तिक्तरसयुक्त होती है ॥ ७१–७२ ॥

४७ परवल

हिं०–परवर, परवल, पलवल, परोर, परोरा। बं०–पटोल, पलता। म०–परवल। क०–पडवल। ता०–पुड़लै। ते० पोटल, आडर। गु०–पटोल। ले०–*Trichosanthes dioica Roxb.* (ट्राइकोसेन्थिस् डाओइका)। *Fam. Cucurbitaceae* (कुकुरबिटेसी)।

यह उत्तर भारत के मैदानी प्रदेश में तथा आसाम एवं पूर्वबङ्गाल तक होता है। इसकी खेती भी की जाती है। इसकी लता होती है। काण्ड रोमश होते हैं। पत्ते–२ × ३ इञ्च बड़े, अंडाकार आयताकार, हृदयाकार, तीक्ष्णाग्र, लहरदार दन्तुर एवं रूखे होते हैं। फूल–सफेद रङ्ग के आते हैं। फल–२–३ इंच लंबे, आयताकार या गोलाभ और पकने पर नारंग रक्त हो जाते हैं।

इसका एक वन्य प्रकार होता है वह कड़वा होता है। कृषित के फल साग के लिये काम में लाये जाते हैं। चिकित्सा में वन्य के पंचांग का उपयोग करते हैं। उपर्युक्त वन्य प्रकार के अतिरिक्त एक जाति ट्रा. कुकुमेरिना (T. cucumerina) के फल भी कड़वे होते हैं। यह १ से ३ इञ्च लम्बे, दीर्घवृत्ताभ–तर्कांकार एवं दोनों तरफ चोंच की तरह नोकदार होते हैं। यह कच्ची अवस्था में हरे, सफेद धारियों से युक्त एवं पकने पर गहरे लाल हो जाते हैं। इनका भी तिक्त पटोल के स्थान पर उपयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—मूल में सॅपोनिन, इन्द्रायण की तरह कड़वा पदार्थ, कुछ उड़नशील तेल तथा स्थिर तेल पाये जाते हैं।

गुण और प्रयोग—कड़वा परवर उष्ण, पित्त को न बढ़ाने वाला, वृष्य, कफघ्न, ज्वरनाशक एवं रेचन है। यह कामला, उदर, रक्तविकार, कण्डू, कुष्ठ, जीर्णज्वर एवं दाह में लाभदायक है। पित्तप्रधान रोग में रेचन के लिये पटोल का उपयोग करते हैं।

इसकी जड़ तीव्र रेचक होती है। हरे फल की गुद्दी भी रेचक होती है। पत्ते दीपन, पाचन, बल्य, तिक्त पौष्टिक एवं अधिक मात्रा में वामक एवं रेचक हैं।

इसके पत्ते तथा धनियां का क्वाथ पित्तज्वर में देते हैं। त्वचा के रोगों में इसे गुडूची के साथ देते हैं तथा पत्तों का रस लगाते हैं।

मात्रा—गुद्दी १ से २ रत्ती।

अथ बिम्बी (कुन्दुरी, कन्दूरी)। तस्य नामानि तत्फलगुणांश्चाह

बिम्बी रक्तफला तुण्डीतुण्डीकेरी च बिम्बिका। ओष्ठोपमफला प्रोक्ता पीलुपर्णी च कथ्यते ॥
बिम्बीफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्रवातजित्। स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाध्मानकारकम् ॥

कन्दूरी के संस्कृत नाम–बिम्बी, रक्तफला, तुण्डी, तुण्डीकेरी, बिम्बिका, ओष्ठोपमफला और पीलुपर्णी ये सब हैं। कन्दूरी का फल–स्वादिष्ट, शीतल, गुरु, स्तम्भन, लेखन, रुचिकारक तथा विबन्ध और आध्मान (अफरा) को करनेवाला एवम्–पित्त, रक्तविकार तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ ७३–७४ ॥

४८ कन्दूरी (कुन्दरू)

हिं०–कन्दूरी, कुनली, कुनरी, कुन्दरी, कुन्दुरू। बं०–तेला कुचा। म०–तोंडली। गु०–घोला, घोली, टिंडोरॉं। क०–तोंडे। ता०–कोवै। ते०–दोंडा तिगे। अं०–Ivy-gourd (आइवी-गोर्ड)। ले०–*Coccinia indica W. & A.* (कोक्सीनिया इण्डिका)। Fam. Cucurbitaceae (कुकुरबिटेसी)।

यह सभी प्रान्तों में होती है। इसकी लता–आरोही, बहुवर्षायु, निःशाख तन्तुओं से युक्त एवं मूल लम्बे कन्दवत् होते हैं। काण्ड–पांच कोण युक्त होता है। पत्ते–प्रायः १½–३½ इञ्च बड़े, हृद्वाकार या वृत्ताकार, ३ से ५ खण्ड या कोणयुक्त, चिकने एवं दूर-दूर पर किञ्चित् दन्तुर होते हैं। पुष्प–श्वेत होते हैं। फल–मांसल, दीर्घवृत्ताभ या बेलनाकार, १–२ इञ्च लम्बे, ½–१ इञ्च व्यास के, कच्ची अवस्था में १० श्वेत धारियों से युक्त, चिकने, चमकीले हरे तथा पकने पर गहरे लाल रङ्ग के रहते हैं।

इसके कई प्रकार होते हैं जिनमें जङ्गली कड़वी होती है। चिकित्सा में पंचांग का एवं शाकार्थ फल का उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसके कोमल फलों में आर्द्रता ९३·१, प्रोटीन १·२, स्नेह ०·१, रेशा १·६, कार्बोहाइड्रेट ३·५, खनिज ०·५, खटिक ·०४, फास्फोरस् ०·०३%, लोह १·४ मि. ग्रा. प्रति १०० ग्राम, विटामिन 'ए' २६० अ. एकक प्र. १०० ग्रा. एवं विटामिन 'सी' २८ मि. ग्रा. प्र. १०० ग्रा. रहता है। इसके रस में अमाइलेस् पाया जाता है। इनके अतिरिक्त एक किण्व, हारमोन एवं क्षाराभ भी पाये गये हैं।

गुण और प्रयोग—यह स्नेहन, मूत्रसंग्रहणीय, कफनाशक एवं व्रणरोपक है।

इसका उपयोग मधुमेह, सोजाक, प्रदर, कास तथा व्रण में किया जाता है।

(१) मधुमेह में लता का स्वरस वसंत कुसुमाकर आदि रस योगों के अनुपान के लिये देते हैं। इसमें मूल का स्वरस १ तो० या चूर्ण ¼-½ तोला, वंगेश्वर या सोमनाथ रस के साथ दिया जाता है। साथ में शाकार्थ फल भी देते हैं। कर्नल चोपरा के प्रयोगों में इसे मधुमेह के लिये निरुपयोगी बतलाया गया है।

(२) व्रण एवं त्वचा के रोगों में पत्तों का स्वरस लगाते हैं। जीभ में छाले होने पर फल को चबाते हैं।

अथ शिम्बीः—पुस्तशिम्बी च (सेम-सेमभेद)। तयोर्नामानि गुणाँश्चाह

शिम्बिः शिम्बी पुस्तशिम्बी तथा पुस्तकशिम्बिका। शिम्बीद्वयं च मधुरं रसे पाके हिमं गुरु॥
बल्यं दाहकरं प्रोक्तं श्लेष्मलं वातपित्तजित्॥ ७५॥

सेम का संस्कृत नाम—शिम्बी तथा शिम्बी है। सेम भेद का संस्कृत नाम—पुस्तशिम्बि तथा पुस्तकशिम्बिका है। उक्त दोनों प्रकार की सेम—रस तथा विपाक में मधुर (मीठी), शीतल, गुरु, बलकारक तथा दाह और कफ को उत्पन्न करने वाली एवम् वात और पित्त को दूर करने वाली होती है॥ ७५॥

४९ सेम

सेम को अनेक प्रकार होते हैं। धान्यवर्ग में निष्पाव के अन्तर्गत एक सेम का उल्लेख किया गया है जिसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं। उन्हीं भेदोपभेदों में से उपर्युक्त शिम्बी के भेद हो सकते हैं।

अथ कोलशिम्बिः तस्या नामानि गुणाँश्चाह

कोलशिम्बिः कृष्णफला तथा पर्यङ्कपट्टिका॥ ७६॥
कोलशिम्बिः समीरघ्नी गुर्व्युष्णा कफपित्तकृत्। शुक्राग्निसादकृद् वृष्या रुचिकृद् बद्धविड् गुरुः॥

कोलशिम्बि के संस्कृत नाम—कोलशिम्बि, कृष्णफला तथा पर्यङ्कपट्टिका ये सब हैं। कोलशिम्बि—वातनाशक, अधिक उष्ण, कफ तथा पित्त कारक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, मल को बाँधने वाली, गुरु एवम् शुक्र तथा जठराग्नि को क्षीण करने वाली होती है॥ ७६-७७॥

५० कोलशिम्बि

यह भी प्रथमोक्त सेम के भेदों में से हो सकती है या अन्य लता हि०—बड़ासेम; बं०—माखन सेम; ले०—कॅनॅवेलिया ग्लेडिएटा (*Canavalia gladiata* (*Jacq.*) *DC.*) हो सकती है। इसके भी कई प्रकार सेम की लम्बाई तथा बीजों की संख्या के अनुसार होते हैं। इसकी लता—बड़ी होती है। फूल—श्वेत तथा गुलाबी होते हैं। फली—८-१२ इञ्च लम्बी, १-१½ इञ्च चौड़ी, तलवार के आकार की होती है। बीज—गुलाबी, धूसर या श्वेत होते हैं। इसकी कोमल फलियों का शाकार्थ उपयोग किया जाता है। केंवाच की एक अन्य जाति होती है जिसकी फली का भी सेम के नाम से व्यवहार किया जाता है।

अथ शोभाञ्जनफलम् (सहेजन की फली)। तस्य गुणानाह

शोभाञ्जनफलं स्वादु कषायं कफपित्तनुत्। शूलकुष्ठक्षयश्वासगुल्महृद् दीपनं परम्॥ ७८॥

सहेजन की फली—स्वादिष्ट, कषाय रस युक्त, अत्यन्त अग्निदीपक, एवम्—कफ, पित्त, शूल, कुष्ठ, क्षय, श्वास तथा गुल्म को दूर करने वाली होती है॥ ७८॥

५१ सहेजन की फली

सहिजन का परिचय गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ ३४०) में दिया गया है॥ ५१॥

अथ वृन्ताकम् (बैंगन, भण्टा)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

वृन्ताकं स्त्री तु वार्त्ताकुर्भण्टाकी भाण्टिकाऽपि च।
वृन्ताकं स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकमपित्तलम्॥
ज्वरवातबलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु।

बैंगन के संस्कृत नाम—वृन्ताक, वार्त्ताकु (स्त्रीलिङ्ग), भण्टाकी तथा भाण्टिका ये सब हैं। बैंगन—स्वादिष्ट, विपाक में कटुरस युक्त, तीक्ष्ण, उष्ण तथा किञ्चित पित्तजनक, ज्वर, वायु तथा कफ को नष्ट करने वाला, अग्निदीपक, शुक्रजनक और लघु होता है॥ ७९॥

अथ तद्बालवृद्धफलयोर्गुणानाह

तद्बालं कफपित्तघ्नं वृद्धं पित्तकरं गुरु॥ ८०॥

बैंगन का छोटा फल—कफ तथा पित्तनाशक होता है। बड़ा फल—गुरु तथा पित्तकारक होता है॥ ८०॥

अथाङ्गारपरिपाचितवृन्ताकफलगुणानाह

वृन्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम्। कफमेदोऽनिलामघ्नमत्यर्थं लघु दीपनम्॥ ८१॥

अङ्गारे पर भुना हुआ बैंगन—किञ्चित पित्तजनक, अत्यन्त लघु, अग्निदीपक एवम्—कफ-मेद-वायु तथा आम को दूर करने वाला होता है॥ ८१॥

अथ तैललवणान्वितवृन्ताकफलस्य श्वेतवृन्ताकस्य च गुणानाह

तदेव हि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितम्। अपरं श्वेतवृन्ताकं कुक्कुटाण्डसमं भवेत्।
तदर्शःसु विशेषेण हितं हीनं च पूर्वतः॥ ८२॥

अङ्गारे पर भुने हुए उसी बैंगन में यदि तेल तथा निमक डाल दिया जाय तो वह-गुरु तथा स्निग्ध होता है। भेद—एक दूसरे प्रकार का और बैंगन होता है जिसे संस्कृत में "श्वेतवृन्ताक" तथा हिन्दी में "सफेद बैंगन" कहते हैं। वह आकार में मुर्गे के अण्डे के समान होता है। सफेद बैंगन—अर्श में विशेष करके हितकर होता है और पूर्वोक्त बैंगन की अपेक्षा यह हीन गुण वाला होता है॥ ८२॥

५२ भंटा

हि॰–भंटा, बैगन, बेगुन । **बं॰**–बेगुन । **म॰**–वांगे, वांगी । **गु॰**–रिङ्गणा, वेंगण, वंताक । **क॰**–बदने । **तै॰**–वंकाया । **ता॰**–कत्तरिकाइ । **फा॰**–बादंगान । **अ॰**–बादं जान, बादंजान, बाजं बान । **अं॰**–Bringal (ब्रिजल); Egg-Plant (एग प्लैन्ट) । **ले॰**–*Solanum melongena Linn.* (सोलेनम् मेलोंगेना) । Fam. Solanaceae (सोलेनेसी) ।

यह गुडूच्यादि वर्गोक्त बृहती के अन्तर्गत वर्णित एक जाति का कृषित प्रकार है । यह प्रसिद्ध फल शाक प्रायः सब प्रान्तों मे उत्पन्न होता है । इसका क्षुप–३ फुट तक ऊँचा होता है । पत्ते–वन भंटे के समान परन्तु इनसे लम्बे चौड़े होते हैं । फूल–कंटकारी के समान बैगनी रङ्ग के और फल–गोल लम्बे होते हैं । किसी के फल गोल, हरे और बैंगनी रङ्ग के, किसी के गोलाई लिये लम्बे सफेद होते हैं ।

गुण और प्रयोग–इसके वन्य प्रकार का बृहती की तरह उपयोग होता है । कृषित का शाकार्थ उपयोग करते हैं ।

अथ डिण्डिशः (टिंडा) तस्य नामगुणानाह

डिण्डिशो रोमशफलो मुनिनिर्मित इत्यपि ॥ ८३ ॥
डिण्डिशो रुचिकृद्भेदी पित्तश्लेष्मापहः स्मृतः । सुशीतो वातलो रूक्षो मूत्रलश्चाश्मरीहरः ॥

टिंडा के संस्कृत नाम—डिण्डिश, रोमशफल तथा मुनिनिर्मित ये सब हैं ।

टिंडा–रुचिकारक, मलभेदक, अत्यन्त शीतल, वातजनक, रूक्ष, मूत्र लाने वाला एवम् पित्त, कफ तथा पथरी को दूर करने वाला होता है ८३–८४ ॥

५३ टिंडा

हि॰–ढेंड्स, टिंडा । **म॰**–ढेंडसे, दिंडशी । **ले॰**–*Citrullus vulgaris var. fistulosus* (सिट्रुलस् वल्गेरिस् प्रकार फिस्चुलोसस्) । Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी) ।

उत्तरप्रदेश, पंजाब तथा बम्बई में इसकी उपज की जाती है ।

इसका क्षुप आरोही या प्रसरणशील होता है तथा काण्ड दृढ़ होता है । इसके फल–छोटे, बड़े, २–३ इञ्च व्यास के गोल, हलके या गहरे हरे रंग के होते हैं । बीज–कुछ कृष्णाभ होते हैं । इनमें से हलके रंग के फल अधिक अच्छे होते हैं ।

रासायनिक संगठन–इसमें आर्द्रता ९२·३, प्रोटीन १·७, स्नेह ०·१, खनिज ०·६, कार्बोहाइड्रेट ५·३, खटिक ०·०२, फास्फोरस ०·०३%, लोह ०·९ मि॰ ग्राम प्र॰ १०० ग्रा॰, विटामिन 'ए' २८ अ॰ एकक् प्रति १०० ग्रा॰ आदि पाये जाते हैं ।

गुण और प्रयोग–इसका फल शाकार्थ व्यवहार में लाते हैं । बीजों को सुखाकर भूनकर उपयोग में लाते हैं ।

अथ पिण्डारम् (पिण्डार) । तस्य गुणानाह

पिण्डारं शीतलं बल्यं पित्तघ्नं रुचिकारकम् । पाके लघु विशेषेण विषशान्तिकरं स्मृतम् ॥

पिण्डालु–शीतल, बलकारक, पित्तनाशक, रुचिकारक, विपाक में लघु होता है । एवम् यह विशेष करके विष का शमन करने वाला होता है ॥ ८५ ॥

५४ पिंडार

हि॰–पिंडार, पिंडारी, पिंडारू, पिंडालु । **बं॰**–पिरालो । **गु॰**–गंगेडा । **म॰**–पेंढर, पेंढारी, पेंढू, पेंदूर । **क॰**–पेराळु । **ते॰, ता॰**–नलैक । **ले॰**–*Randia uliginosa* DC. (रॅन्डिया युलिजिनोसा) Fam. Rubiaceae (रूबिएसी) ।

यह पूर्व, मध्य, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में होता है । उत्तर में कम होता है ।

इसके वृक्ष–छोटे; टहनियां मोटी और कृष्णाभ; कांटे कम; पत्ते–अण्डाकार, आयताकार या कभी कभी अभिलट्वाकार, २–८×१–४ इञ्च बड़े, टहनियों पर गुच्छाकार क्रम में निकले हुये; पुष्प–१–२ इञ्च व्यास के बड़े, श्वेत, सुगंधि; फल–मांसल, दीर्घवृत्ताभ, २–२·५ इञ्च व्यास के, पकने पर पीले, चिकने तथा अमरूद की तरह दिखलाई देते हैं । कच्चे फल का शाकार्थ उपयोग करते हैं ।

नोट–पिंडार नाम एक अन्य वृक्ष ट्रेविआ न्यूडिफ्लोरा (Trewia nudiflora Linn.) को भी लिखा मिलता है जिसका गंभारी के स्थान पर कहीं कहीं प्रयोग किया जाता है। उसका वर्णन पृष्ठ २७८ पर किया जा चुका है । यहां शाकवर्ग में जिसका वर्णन आया है वह उपर्युक्त रॅ. युलिजिनोसा है । इसके गुणों में विषघ्न गुण भी लिखा हुआ है । इस वृक्ष का स्थानिक नाम 'गद पिंडार' भी मिलता है जो इसके अगद के रूप में व्यवहार का द्योतक है । शाकार्थ इस के फल का उपयोग भी करते हैं । डा॰ देसाई ने इसे 'गांगेरुक' लिखा है ।

गुण और प्रयोग–इसका पका फल मधुर, शीतल एवं मूत्रजनन है । कच्चा फल स्तंभन है । कच्चे फल को आग में भूनकर ऊपर का भाग अतिसार एवं आंव में देते हैं । अन्दर का बीज का भाग नहीं देते ।

अथ कर्कोटी (ककोडा, खेखसा) । तस्या नामानि गुणांश्चाह

कर्कोटकी पीतपुष्पा महाजालीति चोच्यते । कर्कोटी मलहृत्कुष्ठहृल्लासारुचिनाशिनी ।
श्वासकासज्वरान्हन्ति कटुपाका च दीपनी ॥ ८६ ॥

ककोड़ा के संस्कृत नाम–कर्कोटकी, पीतपुष्पा और महाजाली ये सब हैं । ककोड़ा—विपाक में कटुरस युक्त, अग्निदीपक, मलनाशक एवम्—कुष्ठ, हृल्लास (जी मचलाना), अरुचि, श्वास, खांसी तथा ज्वर का नाशक है ॥ ८६ ॥

५५ ककोड़ा (खेकसा)

हि॰–खेकसा, खेखसा, ककोड़ा, ककोरा । **बं॰**–वनकरेला । **म॰**–कर्टोली, कांटोलें । **गु॰**–कंटोला, कोडा । **ते॰**–आगाकर । **क॰**–माडहा । **ता॰**–पगारवल्लि । **ले॰**–*Momordica dioica, Roxb.* (मोमोर्डिका डायोइका) । Fam. Cucurbitaceae (कुकुर्बिटेसी) ।

सभी प्रान्तों में यह होता है । इसकी लता–आरोहणशील, चिकनी एवं प्रायः दुर्गंधयुक्त होती है । काण्ड–कोनदार होते हैं । तन्तु बिना शाखा के होते हैं । पत्ते–हृदयाकार, लट्वाकार, अखण्ड या ३ खण्ड वाले, प्रायः लहरदार दन्तुर किनारेवाले एवं २–४½ इञ्च व्यास के होते हैं । पुष्प–पीले होते हैं । इसमें नर एवं नारी पुष्पों की लताएँ अलग-अलग होती हैं । नर पुष्प की लता में फल न लगने के कारण उसे बांझ खेखसा, या वन्ध्याकर्कोटकी कहा जाता है । फल देने वाली, नारीपुष्प की लता होती है जिसे कर्कोटकी कहते हैं । नरपुष्प पतले एवं २ से ६ इञ्च लंबे दण्ड से युक्त तथा नारीपुष्प के दण्ड छोटे या उतने ही बड़े होते हैं । फल–१ से ३ इञ्च

लंबा, दीर्घ वृत्ताभ एवं तीक्ष्णाग्र या अण्डाकार होता है तथा इस पर मुलायम कंटि सदृश उभार होते हैं। इसमें नीचे कन्दवत् बहुवर्षायु मूल होता है जो शलगम की तरह किन्तु लंबा, पीताभ श्वेत, गोल कंकणाकृति चिन्हों से युक्त एवं स्वाद में कसैला होता है।

इसकी स्त्री जाति की लता के कंद का उपयोग चिकित्सा में करते हैं।

गुण और प्रयोग—इसका कंद कुछ रक्तसंग्राहक होता है। इसे रक्तार्श में देते हैं। मधुमेह में कंदचूर्ण वंगभस्म के साथ देते हैं। इसकी अधिक मात्रा से वमन होता है।

इसको पीसकर इसका लेप ज्वर एवं प्रलाप में शरीर पर किया जाता है। इसके फल का चूर्ण या फांट का नस्य के लिये उपयोग करते हैं।

मात्रा—१ से ५ ड्राम शर्करा के साथ।

अथ डोडिका। तस्या नामानि गुणांश्चाह

डोडिका विषमुष्टिश्च डोडिस्यपि सुमुष्टिका ॥ ८७ ॥
डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः। हन्ति पित्तकफार्शांसि कृमिगुल्मविषामयान्॥

डोडिका के संस्कृत नाम—डोडिका, विषमुष्टि, डोडी और सुमुष्टिका ये सब हैं। डोडिका—पुष्टिदायक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, जठराग्नि को दीप्त करने वाला, लघु एवम्—पित्त, कफ, अर्श, कृमि, गुल्म तथा विषरोग को दूर करने वाला है॥ ८७-८८ ॥

५६ डोडिका

नोट—इसके सम्बन्ध में मतभेद है। कोई इसे करेला मानते हैं। कोई जीवन्ती शाक मानते हैं। अधिक संभावना जीवन्ती शाक की है जिसका वर्णन पहले गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ २९१) में किया जा चुका है।

अथ कण्टकारीफलं (कटेरी का फल)। तस्य गुणानाह

कण्टकारीफलं तिक्तं कटुकं दीपनं लघु। रूक्षोष्णं श्वासकासघ्नं ज्वरानिलकफापहम् ॥ ८९ ॥

कटेरी का फल—तिक्त तथा कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, लघु, रूक्ष, उष्ण एवम्—श्वास, खांसी, ज्वर, वायु तथा कफ को दूर करने वाला होता है॥ ८९ ॥

५७ कंटकारी फल

कंटकारी का पूर्ण परिचय गुडूच्यादि वर्ग (पृष्ठ २९०) में दिया गया है।

इति फलशाकानि।

अथ नालशाकानि। तत्र सार्षपनालगुणानाह

तीक्ष्णोष्णं सार्षपं नालं वातश्लेष्मव्रणापहम्। कण्डूकृमिहरं दद्रुकुष्ठघ्नं रुचिकारकम् ॥९०॥

सरसों का नाल—तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकारक एवम्—वात, कफ, व्रण, खुजली, कृमि, दाद तथा कुष्ठ को दूर करने वाला होता है।

५८ सरसों का नाल

सरसों का विवरण शिम्बीधान्य वर्ग (पृष्ठ ६५४) में किया गया है।

इति नालशाकानि

अथ कन्दशाकानि। तत्र सूरणम् (जमीकन्द)। तस्य नामानि गुणांश्चाह

सूरणः कन्द ओलश्च कन्दलोऽर्शोघ्न इत्यपि। सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डुकृत् कटुः ॥
विष्टम्भी विशदो रुच्यः कफार्शः कृन्तनो लघुः। विशेषादर्शसे पथ्यः प्लीहगुल्मविनाशनः ॥
सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते। दद्रूणां कुष्ठिनां रक्तपित्तिनां न हितो हि सः।
सन्धानयोगं सम्प्राप्तः सूरणो गुणवत्तरः ॥ ९३ ॥

कन्द शाकों में सूरन (जिमीकन्द) के संस्कृत नाम—सूरन, कन्द, ओल, कन्दल तथा अर्शोघ्न ये सब हैं।

सूरन—कषाय तथा कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, रूक्ष, खुजली पैदा करने वाला, विष्टम्भक, विशद गुण युक्त, रुचिकारक, लघु एवम्—कफ तथा अर्श को नष्ट करने वाला होता है। और यह विशेष रूप से अर्श के रोगियों के लिये पथ्य है तथा प्लीहा और गुल्म का नाशक है।

सम्पूर्ण कन्दशाकों में सूरन श्रेष्ठ समझा जाता है किन्तु यह दाद, कुष्ठ तथा रक्तपित्त के रोगियों के लिये हितकर नहीं होता है।

और यदि सूरन का सन्धान के साथ योग हो अर्थात् इसका अचार आदि बनाया जाय तो विशेष गुणकारी हो जाता है॥ ९१-९३ ॥

५९ सूरन कन्द

हि०-सूरन कन्द, जमी कन्द, जिमिकन्द, जिमीकन्द, ओल। **ब०**-ओल। **म०**-सुरण। **गु०**-सूरण। **क०**-सूरण, सुर्णगड्ड। **ते०**-कन्द। **ता०**-कर्णैकिलंगु। **फा०**-ओला। **ले०**-*Amorphophallus campanulatus Blume.* (एमोर्फोफैलस् कम्पॅनुलेटस्)। Fam. Araceae (ॲरेसी)।

यह प्रायः सब प्रान्तों में उत्पन्न होता है। कहीं इसको रोपण करते हैं, कहीं आप ही आप उगता है। इसका क्षुप दृढ़ होता है। इसके नीचे बड़े बड़े कन्द होते हैं। पत्र—पुष्पित होने के बहुत बाद आता है। पत्रफलक १ से ३ फीट चौड़ा, अनेक भागों में विभक्त, हरे रंग का एवं छत्र की तरह फैला हुआ रहता है। पत्रवृन्त २ से ३ फीट लंबा, दृढ़, कुछ कांटों जैसे उभारों से खुरदरा, हरे रंग का तथा हलके रंग के धब्बों से युक्त होता है। यह ऊपर ३ भागों में विभक्त हो जाता है जिसमें कटे हुए पत्रक लगे होते हैं। पुष्पव्यूह—पत्रावृत अवृन्त काण्डज (Spadix) स्वरूप का तथा हरिताभ बैंगनी रंग का होता है। पुं एवं स्त्री पुष्पव्यूह अलग-अलग होते हैं। फल—लाल तथा २ से ३ बीजों से युक्त होता है। कन्द (Corm)—शीर्ष पर धंसा हुआ, गोलार्ध के सदृश, ८ से १० इञ्च व्यास का तथा हलके भूरे रंग का होता है।

इसके अनेक प्रकार वन्य एवं कृषित होते हैं। वन्य के कन्द बहुत प्रक्षोभक तथा रक्ताभ श्वेत होते हैं क्योंकि उसमें कॅल्शियम् आक्झेलेट (Calcium oxalate) के रवे होते हैं। कृषित (प्रायः श्वेत) में खुजली कम होती है। चिकित्सा में प्रायः वन्य कन्द का एवं शाकार्थ कृषित का उपयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—इसमें आर्द्रता ७८·७, प्रोटीन १·२, स्नेह ८०.१, कार्बोहाइड्रेट १८·४, खनिज ०·८, खटिक ०·०५, फॉस्फोरस् ०·०२%, लोह ०·४ मि० ग्रा०, विटामिन 'ए' ४३४ अ० एकक एवं विटामिन 'बी$_1$', १० अ० ए० प्रति १०० ग्राम रहता है।

गुण और प्रयोग—यह कटु, वातहर, दीपन, पाचन एवं रुचिकर है। इसका उपयोग अर्श, कास, श्वास, प्लीहावृद्धि, गुल्म, आमवात एवं आन्त्र के रोगों में किया जाता है। कन्दशाक में इसे श्रेष्ठ मानते हैं।

(१) अर्श में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इससे यकृत की क्रिया ठीक होती है, शौच साफ होता है तथा अर्श की रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है। इसका पुटपाक करके फिर साग बनाना चाहिये या चूर्ण करके रखना चाहिये। कांजी में संधान करके रखने से यह अधिक गुण वाला होता है। पर्याप्त धोने से तथा अधिक पकाने से भी इसका दोष दूर होता है। कच्चे सूरण के प्रयोग से मुह में खुजली आदि होती है जिसके निवारण के लिए इमली आदि अम्ल पदार्थ का उपयोग करना चाहिये।

(२) आंत्र के रोगों में इसका शाक देते हैं।

मात्रा—चूर्ण १ से ३ माशा।

अथालुकम् (आलुक)। तस्य नामानि भेदांश्चाह

आरुकं वीरसेनञ्च वीरं वीरारुकं तथा। आरुकमप्यालुकं तत्कथितं वीरसेनकम् ॥ ९४॥
काष्ठालुकशङ्खालुकहस्त्यालुकानि कथ्यन्ते। पिण्डालुकमध्वालुक[1]रक्तालुकानि चोक्तानि ॥

आलुक के संस्कृत नाम—आरूक, वीरसेन, वीर, वीरारुक, आरुक, आलुक तथा वीरसेनक ये सब हैं। भेद—१ काष्ठालुक, २ शंखालुक, ३ हस्त्यालुक, ४ पिण्डालुक, ५ मध्वालुक, ६ रक्तालुक ये सब आलू के भेद हैं ॥ ९४-९५ ॥

काष्ठालुकं=काठिन्ययुक्तम् (कठालू)। शङ्खालुकं=श्वेततायुक्तम् (शङ्खालू)। हस्त्यालुकं=दीर्घतायुक्तं महाशरीरञ्च। पिण्डालुकं=वर्तुलम् (सुथनी, पिण्डालू)। मध्वालुकं= मधुरतायुक्तं रोमान्वितम् (दीर्घसुथनी)। रक्तालुकम्=("रक्तालू, रताल, रतण्डा" इति च) ॥ ९४-९५ ॥

यहाँ पर काष्ठालुक आदि का निम्नलिखित अर्थ समझना चाहिये।

काष्ठालुक—यह कठिनतायुक्त होता है। इसे हिन्दी में "कठालू" कहते हैं।

शंखालुक—यह सफेदी लिये हुये होता है, इसका हिन्दी नाम "शंखालू" है।

हस्त्यालुक—यह लम्बाई लिये हुये आकार में अत्यन्त बड़ा होता है।

पिण्डालुक—यह गोल होता है, इसे लोक में सुथनी या पिण्डालू कहते हैं।

मध्वालुक—यह मीठापन लिये हुये होता है तथा इसके ऊपर लम्बे-लम्बे रोवें होते हैं। हिन्दी में इसे "दीर्घ सुथनी" कहते हैं।

रक्तालुक—यह लाल रंग का होता है, इसे लोक में "रक्तालू-रतालू या रतण्डा" कहते हैं ॥

अथालुकमात्रगुणानाह

आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु ॥ ९६ ॥
सृष्टमूत्रमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत्। कफानिलकरं बल्यं वृष्यं स्वल्पाग्निवर्द्ध[2]नम् ॥ ९७ ॥

सभी प्रकारके आलुक-शीतल, विष्टम्भजनक, मधुर रसयुक्त, गुरु, मूत्र तथा मल को निकालने वाले, रूक्ष, देर में हजम होने वाले, कफ तथा वायु को उत्पन्न करने वाले, बलकारक, वीर्यवर्धक, किंचित जठराग्नि को बढ़ानेवाले एवम् रक्तपित्त को नष्ट करने वाले होते हैं ॥९६-९७॥

१. सप्तालुक इति पाठा०। २. स्तम्भविवर्धनम् इति पाठा०।

६० आलुकभेद

अं०—Yam (यॅम्)। ले०—*Dioscorea sp.* (डायोस्कोरिआ जातियां)। Fam. Dioscoreaceae (डायोस्कोरिएसी)।

इस प्रजाति (Genus) में अनेक जातियां होती हैं। भारत में करीब ५० जातियां (Species) पाई जाती हैं जिनमें कुछ वन्य एवं कुछ कृषित होती हैं। इनमें दो मुख्य प्रकार की लताएं होती हैं। एक वामावर्त तथा दूसरी दक्षिणावर्त।

ये वर्षायु लताएं होती हैं जिनमें से कृषित के कन्दों का उपयोग खाने के लिये किया जाता है। भावप्रकाशकार इसके आकार, रंग, स्वाद आदि के आधार पर अनेक भेद लिखते हैं। जितनी जातियां भारत में होती हैं उनमें अनेक प्रकार के कन्द पाये भी जाते हैं। इनमें बहुत बड़े, लम्बे गोल, बहुत गहराई में होने वाले, सतह के पास होने वाले, एकाकी, गुच्छों में अनेक, मुलायम, कठोर, रोएँदार, बिना रोएँदार आदि प्रकार पाये जाते हैं। इनमें से कुछ वन्य जातियों को जानवर भी खाते हैं। कुछ कन्दों में क्षाराभ (Dioscorine-डायोस्कोरिन), सॅपोनिन् एवं टैनिन् आदि होने से ये विषैले एवं अस्वादु होते हैं।

कुछ लताओं में ऊपर पत्रकोणों में छोटी कन्दवत् रचनाएं भी पाई जाती हैं।

इन्हीं कंदों में से वाराहीकंद है जिसका गुडूच्यादिवर्ग (पृष्ठ ३८६) में वर्णन किया गया है।

रासायनिक संगठन—इनमें स्टार्च, विटामिन बी एवं कॅल्शियम् आक्झेलेट काफी रहता है। प्रोटीन, खटिक एवं लोह कम रहता है। इसकी विभिन्न जातियों में डायोस्कोरिन् (Dioscorine, O_3, H_1, O_2, N) क्षाराभ की मात्रा कम या अधिक रहती है। इससे युक्त कन्दों के अधिक सेवन से श्वसनाघात हो सकता है। सॅपोनिन (Saponin) युक्त कन्दों का उपयोग सिल्क, ऊन आदि धोने के लिये किया जाता है। इनकी कुछ अमेरिकी जातियों से कॉर्टिजोन (Cortisone) जैसे संधिवात में उपयोगी द्रव्य निर्माण के लिये आवश्यक प्रारम्भिक द्रव्य प्राप्त किये गये हैं। मद्यसार बनाने के लिये भी इनका उपयोग किया जाता है।

गुण और प्रयोग—इनमें से कुछ कन्दों का आलू की तरह भोज्य द्रव्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। अकाल आदि के समय पहाड़ी लोग इनका उपयोग करते हैं। इनको काफी धोकर, पकाकर या भूनकर प्रयोग करते हैं जिससे विषैलापन निकल जाता है तथा खाने से गले में खुजली आदि नहीं होने पाती। कच्चा खाने से इसमें के कॅल्शियम् आक्झेलेट से गले में खराश आदि हो जाती है।

नोट—नित्य व्यवहार में लाये जाने वाला आलू इससे भिन्न सोलॅनम् ट्युबरोजम् (Solanum tuberosum) के कन्द हैं। इसी प्रकार शकरकंद भी इससे भिन्न आइपोमिया बटाटास् (Ipomoea batatas Lam.) के कन्द हैं।

अथालुकी रक्तालुभेदः। तस्या लक्षणं गुणाँश्चाह

रक्तालुभेदो या दीर्घा तन्वी च प्रथिताऽऽलुकी।
आलुकी बलकृत्स्निग्धा गुर्वी हृत्कफनाशिनी ॥
विष्टम्भकारिणी तैले तलिताऽतिरुचिप्रदा ॥ ९८ ॥

रक्तालू के भेद का संस्कृत नाम-आलुकी है। लक्षण-यह रतालू का भेद है एवं उससे लम्बी तथा पतली होती है। आलुकी—बलकारक, स्निग्ध, गुरु, हृदत कफ को दूर करने वाली, एवम् विष्टम्भजनक होती है और तेल में तली हुई अत्यन्त रुचिकारक होती है ॥ ९८ ॥

नोट—रक्तालु भेद लिखने के कारण इनके पूर्वोक्त आलुक भेदों में से किसी लता के कन्द होने की अधिक सम्भावना है। प्रसंगतः अरूई का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

६१ अरूई

हि०–अरुई, अरई, घुइयां। **बं०**–काचू। **म०**–अळवाचा कान्दा, आळु। **गु०**–अलवी। **क०**–केसवे। **ता०**–शिमेळं। **ते०**–चम्मडुम्पा। **अ०**–इयाकल्कास, कलकलास। **ले०**–*Colocasia antiquorum Schott.* (कोलोकेसिया एन्टीकोरम्)। Fam. Araceae (अरेसी)।

यह नदी, तालाब, दलदल आदि के किनारे तथा जंगलों के छायादार, आर्द्र स्थानों में वन्य अवस्था में होती है। अनेक स्थानों पर इसकी खेती भी की जाती है।

इसका **क्षुप**–बहु वर्षायु होता है। पर्णवृन्त १½ से ७ फीट तक लंबा होता है। **पत्ते**–बहुत बड़े एवं हृदयाकार होते हैं। **कन्द**–विभिन्न नाप एवं आकार के होते हैं। ये ½ से १ इञ्च व्यास के गोल आकृति से लेकर ८ इञ्च व्यास एवं २४ इञ्च तक लम्बे होते हैं। किसी में एक समान थोड़े कन्द होते हैं तो किसी में विभिन्न नाप के अनेक कन्द होते हैं। इसके अन्दर के रंग के आधार से भी पीले, नारंगी, लाल या बैंगनी प्रकार होते हैं। वैसे तो इसके अनेक प्रकार होते हैं तथापि इसके दो वर्ग दिखलाई देते हैं। एक में पत्ते एवं वृन्त गहरे बैंगनी तथा दूसरे में हरे होते हैं। गहरे बैंगनी का चिकित्सा में उपयोग करते हैं। इसके स्वाद में कुछ चरपरापन रहता है जो प्रकार के अनुसार कम या अधिक होता है।

रासायनिक संगठन—इसके कन्द के रस में अमाइलेस (Amylase) रहता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन काफी रहता है तथा यह आलू की अपेक्षा १½ गुना अधिक पोषक है। अन्य स्टार्च युक्त खाद्यद्रव्य की अपेक्षा यह अधिक सुपाच्य है तथा इसमें विटामिन ए, 'बी'₁ एवं खटिक तथा फॉस्फोरस भी काफी रहता है। इसके पत्तों में भी विटामिन 'ए' का पूर्व भाग एवं विटामिन 'सी' रहता है। इसमें के कॅल्शियम् आग्झेलेट के कारण यह गले में लगता है जिसके लिये इसको पकाकर तथा पकते समय थोड़ा 'पकाने का सोडा' डाल कर प्रयोग में लाते हैं। इसके स्टार्च के कण छोटे होते हैं।

गुण और प्रयोग—इसके कन्द तथा कोमल पत्तों का शाकार्थ उपयोग करते हैं।

इसके पर्णवृन्त का स्वरस रक्तस्तम्भक होता है। क्षत पर लगाने से रक्तस्राव रुककर जल्दी व्रणपूरण होता है। गाँठ आदि पर पर्णवृन्त को नमक के साथ पीस कर बाँधते हैं।

यकृत वृद्धि एवं अर्श में अरई के कन्दों का साग खिलाते हैं।

अथ मूलकद्वयम् (मूली, बड़ी मूली)।
तस्य नामानि भेदान् गुणाँश्चाह

मूलकं द्विविधं प्रोक्तं तत्रैकं लघुमूलकम्। शालामर्कटकं विस्रं शालेयं मरुसम्भवम् ॥ ९९ ॥
चाणक्यमूलकं तीक्ष्णं तथा मूलकपोतिका। नेपालमूलकं चान्यत्तद्भवेद्गजदन्तवत् ॥१००॥
लघुमूलं कटूष्णं स्याद्रुच्यं लघु च पाचनम्। दोषत्रयहरं स्वर्यं ज्वरश्वासविनाशनम् ॥१०१॥
नासिकाकण्ठरोगघ्नं नयनामयनाशनम् ॥ १०२ ॥
महत्तदेव रूक्षोष्णं गुरु दोषत्रयप्रदम्। स्नेहसिद्धं तदेव स्याद् दोषत्रयविनाशनम् ॥ १०३ ॥

मूली के भेद—१ मूली, २ बड़ी मूली, इस प्रकार से मूली के दो भेद होते हैं। इनमें जो पहिली मूली अर्थात् छोटी मूली होती है उसके संस्कृत नाम-लघुमूलक, शालामर्कटक, विस्र,

शालेय, मरुसंभव, चाणक्यमूलक, तीक्ष्ण तथा मूलकपोतिका ये सब हैं। दूसरी जो हाथी के दाँत की तरह बड़ी मूली होती है, उसका संस्कृत नाम—नेपालमूलक है।

छोटी मूली—कटु रसयुक्त, रुचिकारक, लघु, पाचक, त्रिदोषनाशक, कण्ठस्वर को उत्तम करने वाली एवम्–ज्वर, श्वास, नाक, कण्ठ तथा नेत्र के रोगों को दूर करने वाली होती है।

बड़ी मूली—रूक्ष, उष्ण, गुरु एवं त्रिदोषकारक होती है।

बड़ी मूली यदि तेल में भूनी हुई हो तो भी त्रिदोषनाशक होती है ॥ ९९-१०३ ॥

६२ मूली

हि०–मूली, मुरई। **बं०**–मूला। **म०**–मुळा। **गु०**–मूळा। **क०**–मुलङ्गी। **ता०**–मुलंगि। **ते०**–मुल्लङ्गि। **फा०**–तुख, तुर्ब। **अ०**–फज़ल, हुज़ल। **अं०**–Radish (रॅडिश्)। **ले०**–*Raphanus sativus Linn.* (रॅफेनस् सेटाइवस्)। Fam. Cruciferae (क्रुसीफेरी)।

मूली सभी प्रांतों में बोई जाती है। इसका **कन्द**–गाजर के समान पर सफेद होता है। **पत्ते**–नवीन सरसों के पत्तों के समान; **फूल**–सफेद सरसों के फूल के आकार के और **फल**–भी सरसों ही के समान किन्तु उससे कुछ मोटा और लगभग १-२ इञ्च लंबा होता है। **बीज**–सरसों से बड़े होते हैं।

भावप्रकाशकार इसके दो भेद छोटी मूली–चाणक्यमूलक तथा बड़ी मूली—नेपालमूलक लिखते हैं। बड़ी मूली नेपाल इत्यादि की तरफ होती है। इसमें गंध कम होती है। छोटी मूली के भी आकार के अनुसार, लंबी, दीर्घवृत्ताभ एवं शलजमाकार ये ३ भेद होते हैं। इसके पंचांग का शाकार्थ एवं कन्दस्वरस और बीज का चिकित्सार्थ प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसके बीजों में उड़नशील तैल होता है। कन्द में आर्सेनिक ·०१ मि० ग्रा० प्र० १०० ग्राम में रहता है। मूल तथा बीज में स्थिर तैल भी पाया जाता है।

गुण और प्रयोग—कच्ची (कोमल) मूली त्रिदोषहर एवं परिपक्व, बिना पकाये खाने से त्रिदोषकारक तथा पकाकर खाने से त्रिदोषहर एवं सूखी त्रिदोषहर है। इसके पत्तों का स्वरस मूत्रल एवं मृदुविरेचक होता है। आनाह, शूल, अर्श एवं अश्मरी में इसको देते हैं।

इसके बीज कफनिःसारक, पाचन, वातानुलोमन मूत्रल एवं मृदुविरेचक हैं। अनार्तव में बीज खिलाते हैं।

मूली के कन्द का नित्य शाकार्थ प्रयोग करने से पुराना विबंध दूर होता है। अन्य सूखे शाकों की तरह यह विष्टम्भ एवं वातकारक नहीं है (सु० सू० अ० ४६)। यह पाचन एवं वातानुलोमक है।

मात्रा—स्वरस २ से ४ तोला; बीज चूर्ण १ से ३ माशा।

अथ गृञ्जनम् (गाजर)। तस्य नामगुणानाह

गृञ्जनं गाजरं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम्। गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु।
संग्राहि रक्तपित्तार्शोग्रहणीकफवातजित् ॥ १०४ ॥

गाजर के संस्कृत नाम—गृञ्जन, गाजर और नारङ्गवर्णक ये सब हैं। **गाजर**–मधुर तथा तिक्त रसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, लघु, ग्राही एवम्–रक्तपित्त, अर्श, ग्रहणी, कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ १०४ ॥

६३ गाजर

हि०, म०, बं०, गु०–गाजर । **क०**–गर्जरि । **ते०, ता०**–गाजार । **फा०**–जर्दक । **अ०**–जजर । **अं०**–Carrot (कॅरट्) । **ले०**–*Daucus carota var. sativa DC.* (डॅकस् कॅरोटा प्रकार सटाइवा) । Fam. Umbelliferae (अम्बेलिफेरी) ।

यह इस देश के प्रायः सब प्रान्तों के खेतों में रोपण किया जाता है ।

इसका **क्षुप**–वर्षायु या द्विवर्षायु, सीधा अनेक शाखा युक्त एवं १ से ४ फीट ऊंचा होता है । **पत्ते**–पक्षवत् अनेक भागों में विभक्त होते हैं । **पुष्प**–श्वेत या पीताभ होते हैं जो गोलाभ छत्राकार गुच्छ में आते हैं । **फल**–$\frac{1}{8}$ इञ्च लम्बे, आयताकार एवं रोमश होते हैं । **मूल**–२ से १२ इञ्च लम्बा एवं मांसल होता है । इसके अनेक प्रकार रंग एवं आकार के अनुसार होते हैं । चिकना, कोमल, चमकीला लाल या नारंगी रंग का गाजर अच्छा माना जाता है ।

उपर्युक्त प्रकार यह कृषित प्रकार है । वन्य भेद में कन्द पतले, लम्बे, काष्ठीय, क्रमशः नोकीले, तीव्र गन्ध वाले एवं अस्वादु, चरपरे तथा कुछ कड़वे होते हैं । अधिकतर बोने के लिये इसके बीज यूरोप तथा अमेरिका से आते हैं यद्यपि अपने यहां बीजों की प्राप्ति का प्रयत्न कश्मीर, कुलू आदि में किया जा रहा है ।

गाजर का उपयोग शाक, सलाद, अचार, हलुवा, मुरब्बा आदि के रूप में किया जाता है । मक्खन आदि रंगने के लिये इसका रस काम में लाते हैं ।

रासायनिक संगठन—गाजर में आर्द्रता ८६, प्रोटीन ०·९, स्नेह ०·१, कार्बोहाइड्रेट १०·७, रेशा १·२, खनिज १·१, खटिक ०·०८, फास्फोरस् ०·०३%, लोह २·५ मि० ग्रा० प्र० १०० ग्राम, **कॅरोटीन** (विटामिन 'ए' का पूर्वरूप) २००० से ४३०० ए० प्र० १०० ग्रा० एवं विटामिन 'बी', 'डी' तथा 'सी' रहते हैं ।

वृद्धि के साथ इसके प्रोटीन की मात्रा कम होती है तथा शर्करा की मात्रा बढ़ती है । कॅरोटीन की मात्रा भी वृद्धि के साथ बढ़ती है । यह श्वेत गाजर में नहीं रहता । पेट्रोल तथा ईथर के द्वारा प्राप्त इसके पीतसत्व के सूचिकाभरण से रक्तगत शर्करा की मात्रा कम होती है ।

इसको पकाने से इसके पौष्टिक तत्व बहुत कम हो जाते हैं । बाष्प द्वारा पकाने से इतना ह्रास नहीं होता । कॅरोटीन का शोषण गाजर को महीन पीसकर या कसकर खाने से होता है ।

इसके बीजों में सुगन्धि तैल तथा स्थिर तैल होता है । पत्तों में भी उड़नशील तैल होता है ।

गुण और प्रयोग—यह मूत्रजनन, बल्य एवं पोषक है । इसमें के कॅरोटीन के कारण जो विटामिन 'ए' का पूर्वरूप (Precursor) है, इसका अधिक उपयोग किया जाता है ।

इसके बीज सुगंधि, मूत्रजनन, गर्भाशय उत्तेजक, बल्य एवं वृष्य हैं ।

गाजर को कसकर के सूत्रकृमि में खिलाते हैं । कामला में इसका क्वाथ देते हैं । गाजर को कसकर, गरम कर लेप करने से शोथ, व्रण, दग्धव्रण आदि में लाभ होता है ।

इसके बीजों का उपयोग सर्वांगशोफ एवं वृक्करोग में करते हैं । गर्भाशय की पीड़ा एवं प्रसव के समय बीजों को देते हैं । इससे गर्भपात की संभावना रहती है ।

अथ कदलीकन्दः (केलाकन्द) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

शीतलः कदलीकन्दो बल्यः केश्योऽम्लपित्तजित् ।
वह्निकृद्दाहहारी च मधुरो रुचिकारकः ॥ १०५ ॥

केले का कन्द—शीतल, बलकारक, बालों के लिये हितकर, जठराग्निवर्धक, मधुर रस युक्त, रुचिकारक एवम् अम्लपित्त तथा दाह को नष्ट करने वाला होता है ॥ १०५ ॥

६४ कदली कन्द

केले का विवरण आम्रादि फल वर्ग (पृष्ठ ५५७) में दिया गया है ॥ ७० ॥

अथ मानकन्दः । तस्य नामगुणानाह

मानकः स्यान्महापत्रः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ । मानकः शोथहृच्छीतो रक्तपित्तहरो लघुः ॥

मानकन्द का संस्कृत नाम—मानकन्द और महापत्र है । मानकन्द–शीतल, लघु एवम्–शोथ तथा रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥ १०६ ॥

६५ मानकन्द

हि०–मानकन्द । **बं०**–मानकचू । **म०**–कासाळू । **अं०**–Giant taro (जाएन्ट टारो) । **ले०**–*Alocasia indica (Roxb.) Schott.* (एलोकेसिया इंडिका) । Fam. Araceae (एरॅसी) ।

प्रायः इसको बागों में लगाते हैं और आसाम तथा बंगाल में इसकी उपज की जाती है । इसका **क्षुप**–अरुई की तरह किन्तु उससे बड़ा एवं ३ से ६ फीट ऊँचा होता है । **स्कंध**–मांसल, फूला हुआ, ४ से ८ इञ्च व्यास का होता है । **पत्ते**–२ से ३ फीट लंबे, पुंखवत् त्रिभुजाकार होते हैं । इसके अग्र खण्ड त्रिभुजाकार एवं पार्श्व खण्ड लट्वाकार होते हैं । **पुष्प**–पुं पुष्प एवं स्त्री पुष्प पत्रावृत व्यूह में पृथक पृथक, ४ से ८ इञ्च लंबे वृन्त पर आते हैं । **फल**–बाली के रूप में आते हैं जिसमें दाने (फल) लाल होते हैं । स्कन्ध से मूल निकले रहते हैं एवं मूल स्तम्भ से निकले हुए मूलों के अग्र कन्द सदृश होते हैं । स्कन्ध तथा छोटे कन्द खाये जाते हैं । इसके कई भेदोपभेद पाये जाते हैं जिनमें एक मीठा तथा दूसरा कड़वा होता है । मीठे का उपयोग किया जाता है । इसको प्रयोग के पूर्व उबाल कर धोना पड़ता है ।

रासायनिक संगठन—इसमें स्टार्च काफी होता है । इसमें कॅल्शियम् आग्झेलेट भी होता है । इसका आटा चावल की अपेक्षा अधिक सुपाच्य होता है ।

गुण और प्रयोग—मानकन्द सुपाच्य, पौष्टिक, मूत्रजनन, अल्प मृदुविरेचन एवं स्कंध स्वरस रक्तसंग्राहक एवं कषाय है ।

इसके सूखे कंद के चूर्ण को चावल की मांड़ के साथ पकाकर, छानकर देने से शोथ और जलोदर में लाभ होता है । उस समय आहार में और कोई पदार्थ नहीं दिया जाता ।

कंद का साग पुराने विबंध एवं उससे उत्पन्न अर्श में दिया जाता है ।

कर्णस्राव में इसके स्कंध को भूनकर निकाला स्वरस डालने से लाभ होता है । मूल को कस कर गरम करके उससे सन्धिशोथ में सेंकते हैं ।

मात्रा—मूल चूर्ण १ से २ तोला ।

अथ वाराहीकन्दः (गेंठी) । तस्य गुणानाह

वाराही पित्तला बल्या कट्वी तिक्ता रसायनी । आयुःशुक्राग्निकृन्मेहकफकुष्ठानिलापहा ॥

वाराहीकन्द—कटु तथा तिक्त रस युक्त, पित्तजनक, बलकारक, रसायन तथा आयु, शुक्र

और जठराग्नि को बढ़ाने वाला एवम्—प्रमेह, कफ, कुष्ठ और वायु को नष्ट करने वाला होता है ॥ १०७ ॥

६६ वाराही कन्द

इसका विवरण गुडूच्यादिवर्ग (पृष्ठ ३८६) में एवं आलुक के वर्णन के साथ इसी वर्ग (पृष्ठ ६९५) में किया जा चुका है।

अथ हस्तिकर्णा । तस्यास्तत्कन्दस्य च गुणानाह

गजकर्णा तु तिक्तोष्णा तथा वातकफाञ्जयेत् । शीतज्वरहरी स्वादुः पाके तस्यास्तु कन्दकः॥
पाण्डुशोथकृमिप्लीहगुल्मानाहोदरापहः । ग्रहण्यर्शोविकारघ्नो वनसूरणकन्दवत् ॥ १०९ ॥

हस्तिकर्ण के संस्कृत नाम—गजकर्णा और हस्तिकर्णा इसके संस्कृत नाम हैं।

हस्तिकर्ण–तिक्तरसयुक्त, उष्ण, विपाक में मधुर रसयुक्त एवम्–वात–कफ तथा शीतज्वर को दूर करने वाला होता है।

इसका कन्द—जङ्गली सूरन के कन्द की भांति, पाण्डु, शोथ, कृमि, प्लीहा, गुल्म, आनाह (अफरा), उदररोग, ग्रहणी तथा अर्श के विकारों को नष्ट करने वाला होता है ॥ १०८–१०९ ॥

नोट—टीकाकारों ने इसे भूपलाश, रक्तएरण्ड तथा कुछ ने मानकन्द का बड़ा भेद लिखा है किन्तु निम्न वर्णित क्षुप ही हस्तिकर्ण है।

६७ हस्तिकर्ण

हि०–हस्कन, हस्तिकर्ण पलाश, समुद्रक। बं०–ढोलसमुद्र। म०–दिंडा। ले०–*Leea macrophylla Horn.* (लिआ मॅक्रोफाइला)। Fam. Vitaceae (विटेसी)।

भारत के समस्त उष्णप्रदेश एवं आसाम में यह होता है।

इसका क्षुप–१ से ३ फीट ऊंचा, मोटा तथा बहुवर्षायु कन्द से प्रति वर्ष निकलता है। पत्ते–हाथी के कान की तरह बहुत बड़े, १ से २ फीट लम्बे एवं लट्वाकार–हृद्वत होते हैं। उपपत्र बहुत बड़े होते हैं। पुष्प–श्वेत होते हैं। फल–काले एवं झुमकेदार होते हैं। इसके कन्द का उपयोग चिकित्सा में किया जाता है।

गुण और प्रयोग—यह ग्राही, वेदनास्थापक एवं रक्तस्कन्दक है।

कन्द को पीसकर व्रण, दाद एवं नारूकृमि पर लगाते हैं। इससे वेदना कम होती है और स्थानिक रक्तस्राव भी रुकता है।

कहीं-कहीं क्षय में भी इसका उपयोग किया जाता है।

अथ केमुकम् (केमुआं)। तस्य गुणानाह

केमुकं कटुकं पाके तिक्तं ग्राहि हिमं लघु ॥ ११० ॥
दीपनं पाचनं हृद्यं कफपित्तज्वरापहम् । कुष्ठकासप्रमेहास्त्रनाशनं वातलं कटु ॥ १११ ॥

केमुक—विपाक में कटुरसयुक्त, स्वाद में तिक्त तथा कटुरसयुक्त, ग्राही, शीतल, लघु, अग्नि-दीपक, पाचक, हृदय के लिये हितकर, वातजनक एवम् कफ, पित्त, ज्वर, कुष्ठ, कास, प्रमेह तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ११०–१११ ॥

६८ केमुक

हि०–केमुआ, केमुक, केवुक कन्द, केवा। म०–पेवा। ते०, क०–चेंगल्वकोष्टू। बं०–केऊ। ले०–*Costus speciosus (Koen) Sm.* (कोस्टस् स्पेसिओसस्)। Fam. Zingiberaceae (जिंजिबेरेसी)।

यह प्रायः सभी स्थानों पर किन्तु विशेष रूप से बंगाल तथा कोंकण में होता है। इसे शोभा के लिए बागों में भी लगाते हैं। आर्द्र तथा छायादार स्थानों में वर्षा में यह अधिक होता है।

इसका क्षुप–२ से ६ फीट ऊँचा होता है। मूलस्तम्भ कन्दवत् तथा अदरख के समान होता है। पत्ते–भालाकार, ६ से १२ इंच लंबे एवं अधर तल पर रोमश होते हैं। पुष्प–कांड के अग्र पर, सफेद, ३–४ इञ्च बड़े, निर्गन्ध पुष्प, व्यूह में आते हैं जिनके कोणपुष्पक भड़कीले लाल होते हैं। इसके कन्द को पकाकर खाते हैं। यह निर्गंध, कुछ कसैला एवं कुछ लुआबदार होता है।

नोट—गलती से इसे कहीं-कहीं कलिहारी माना जाता है। इसी प्रकार कुष्ठ के नाम से भी इसका गलत उपयोग, विशेष रूप से दक्षिण में होता है।

रासायनिक संगठन—इसमें स्टार्च होता है।

गुण और प्रयोग—इसे बल्य, कुछ विरेचन, रक्तशोधक एवं कृमिनाशक मानते हैं। इसके ताजे कंदों का मुरब्बा रुचिकारक एवं पौष्टिक मानते हैं। हड्डियों में पीड़ा होने पर इसका उपयोग करते हैं।

नवीन प्रयोगों से देखा गया है कि कलिहारी की तुलना में इसमें गर्भाशय संकोचक गुण अधिक होता है (कु० प्रे० तिवारी तथा अन्य; आ० अनु० पत्रिका, भाग १, अंक २)।

अथ कसेरु, चिचोढं च । तयोर्गुणानाह

कसेरु द्विविधं तत्तु महद्राजकसेरुकम् । मुस्ताकृति लघु स्याद्यत्तच्चिचोढमिति स्मृतम्॥११२॥
कसेरुकद्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु । पित्तशोणितदाहघ्नं नयनामयनाशनम् ।
ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मारुचिस्तन्यकरं स्मृतम् ॥ ११३ ॥

कसेरू के भेद—१ बड़ा, २ छोटा, भेद से कसेरू दो प्रकार का होता। उनके संस्कृत नाम—जो बड़ा कसेरू होता है उसे "राजकसेरुक" कहते हैं और छोटा मोथे के समान आकार वाला होता है उसे "चिचोढ़" कहते हैं।

दोनों प्रकार के कसेरू—शीतल, मधुर तथा कषाय रसयुक्त, गुरु, ग्राही एवम्–शुक्र, वायु, कफ, अरुचि तथा दुग्धवर्धक होते हैं और पित्त, रक्तविकार, दाह, नेत्ररोग इन सबका नाश करने वाले होते हैं ॥ ११२–११३ ॥

६९ कसेरू

हि०–कसेरू। बं०–केसूर। म०–कचरा। अं०–Water chestnut (वाटर चेस्टनट)। ले०–*Scirpus kysoor Roxb.* (स्किर्पस् कायसूर)। Fam. Cyperaceae (साइपेरेसी)।

सभी प्रान्तों में यह होता है।

इसके पौधे–तालाबों में प्रायः एक फुट या अधिक गहरे पानी में होते हैं। काण्ड–४ से ६ फीट ऊँचा तथा ३ पहल का होता है। पत्ते–एक इञ्च चौड़े तथा काण्ड के बराबर या कुछ कम लंबे होते हैं। पुष्प मंजरी—करीब-करीब ३ फीट लंबी होती है। फल–छोटे, धूसर या कृष्णवर्ण के होते

हैं। कन्द-ऊपर से काले रंग के, अंदर से श्वेत, जायफल इतने बड़े एवं कुछ गोलाई लिये हुवे होते हैं। इनका स्वाद कुछ मधुर एवं सुगन्धित होता है।

स्कि० आर्टिक्युलेटस् (S. articulatus Linn.) तथा साइपेरस् एस्क्यूलेन्टस् (Cyperus esculentus Linn.) के कन्दों को जो कसेरू जैसे ही होते हैं **'चिचोड़ा'** कहा जाता है जो भावप्रकाशोक्त चिचोढ है।

कसेरू को भून कर, उबाल कर या वैसे ही खाया जाता है।

रासायनिक संगठन—इसमें कार्बोहाइड्रेट ६२, प्रोटीन ७, गोंद ७, रेशा ६ एवं राख २५ भाग होती है।

गुण और प्रयोग—यह मधुर, शीत, ग्राही, कफ-वातवर्धक, शुक्रल तथा स्तन्य है।

इसका उपयोग तृषा, दाह, अतिसार एवं वमन में किया जाता है। गर्भावस्था में गर्भपात की संभावना होने पर तथा प्रसूता को दुग्धवृद्धि के लिये इसे देते हैं। हैजे में इसे गुलाबजल में पीस कर पिलाते हैं जिससे प्यास कम होती है, दस्त एवं वमन कम होता है तथा हृदय को बल भी मिलता है।

अथ शालूकम् भिस्साण्डश्च । तयोर्नामानि गुणांश्चाह

पद्मादिकन्दः शालूकं करहाटश्च कथ्यते ॥ ११४ ॥

मृणालमूलं भिस्साण्डं [1]जलालूकश्च कथ्यते । शालूकं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रनुद् गुरु ११५॥

दुर्जरं स्वादुपाकश्च स्तन्यानिलकफप्रदम् । संग्राहि मधुरं रूक्षं भिस्साण्डमपि तद्गुणम्॥११६॥

कमल आदि के कन्दों के संस्कृत नाम—कमलकन्द, शालूक तथा करहाट ये सब हैं। मृणाल (कमल के नाल) के मूल भाग के संस्कृत नाम—मृणालमूल, भिस्साण्ड और जलालूक ये सब हैं। **कमलकन्द**—शीतल, वीर्यवर्धक, गुरु, कठिनता से हजम होने वाला, दुग्ध, वायु तथा कफ को करने वाला, ग्राही, रूक्ष, मधुर रसयुक्त, विपाक में भी मधुर एवम्-पित्त, दाह और रक्तविकार को दूर करने वाला होता है।

भसींडा—गुणों में कमल कन्द के ही समान होता है ॥ ११४-११६ ॥

७० कमलकन्द, भसींडा

वास्तव में भसींडा यह कमल के नाल का आधारीय भाग है जो मोटा तथा लंबा होता है एवं कुमुद में आधारीय भाग कन्दवत् होता है। कमल का पूर्ण परिचय पुष्पादिवर्ग (पृष्ठ ४७९) में दिया गया है॥

अथ निषिद्धशाकान्याह

बालं ह्यनार्त्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम् । कन्दं विवर्जयेत्सर्वं यद्वाऽग्न्यादिविदूषितम् ।

अतिजीर्णमकालोत्थं रूक्षसिद्धमदेशजम् ॥ ११७ ॥

कर्कशं कोमलं चातिशीतव्यालादिदूषितम् । संशुष्कं सकलं शाकं नाश्नीयान्मूलकं विना ११८

निषिद्ध (न खाने योग्य) शाक—जो कन्द-कच्चा, बिना ऋतु के (असमय में) होने वाला, पुराना, रोगयुक्त, कीड़ों से खाया हुआ अर्थात् जिसमें कीड़े आदि पड़े हों या खाये हों अथवा अग्नि आदि से दूषित हो गये हों उन सबों को त्याग देना चाहिये।

१. जलालूवं इति पाठः।

जो शाक—अत्यन्त पुराना, अकाल में उत्पन्न हुआ, बिना तेल आदि के पकाया हुआ, अशुभ स्थान श्मशान आदि में उत्पन्न हुआ, कठिन, कोमल, अत्यन्त शीत पड़ने तथा सर्पादि से दूषित हुआ हो उसे त्याग देना चाहिये।

एवम्—सभी सूखे शाक नहीं खाने चाहिये, किन्तु मूली के लिये यह नियम नहीं है, उसे सूखी भी खा सकते हैं ॥ ११७-११८ ॥

रूक्षसिद्धम् = अतैलादिसिद्धम् । अदेशजम् = अशुभस्थानजम् ॥ ११८-११८ ॥

यहाँ पर मूल में "रूक्षसिद्ध" पद का "बिना तेल आदि के पकाया हुआ" तथा "अदेशज" पद का "अशुभ स्थान श्मशान आदि में उत्पन्न हुआ" अर्थ समझना चाहिये ॥ ११७-११८ ॥

इति कन्दशाकानि।

अथ संस्वेदजशाकानि । तेषां नामानि गुणानाह

उक्तं संस्वेदजं शाकं भूमिच्छत्रं शिलीन्ध्रकम् । क्षितिगोमयकाष्ठेषु वृक्षादिषु तदुद्भवेत् ॥११९॥

सर्वे संस्वेदजाः शीता दोषलाः पिच्छिलाश्च ते । गुरवश्छर्द्यतीसारज्वरश्लेष्मामयप्रदाः ॥१२०॥

श्वेताशुचिस्थलीकाष्ठवंशगोमयसम्भवाः । नातिदोषकरास्ते स्युः शेषास्तेभ्यो विगर्हिताः ॥

संस्वेदज शाक के संस्कृत नाम—संस्वेदज, भूमिच्छत्र और शिलीन्ध्रक ये सब हैं।

उत्पत्ति स्थान—संस्वेदज शाक-पृथ्वी, गोबर, काष्ठ तथा वृक्षादिकों पर उत्पन्न होता है।

संस्वेदज शाक-शीतल, दोषकारक, पिच्छिल, गुरु एवम्-वमन, अतिसार, ज्वर और कफ सम्बन्धी रोगों को उत्पन्न करने वाले होते हैं।

किन्तु जो संस्वेदज शाक-श्वेत वर्णवाले, पवित्र स्थान, काष्ठ, बांस तथा गोबर पर उत्पन्न होने वाले होते हैं, वे अत्यन्त दोषकारक नहीं (साधारण दोषकारक) होते हैं। शेष अर्थात् इनसे अन्य स्थान में उत्पन्न होने वाले संस्वेदज शाक निन्दित (त्याज्य) होते हैं ॥ ११९-१२१ ॥

७१ छत्रक

हि०-भुई छत्ता, भुई फोड़ छत्ता छतोना, छाता, सांप की छत्री, खुमी, धरतीफूल। **बं०**—कोड़क छाता, व्यागेर छाता, छातकुड़, भुई छाति, छात कुण्ड। **पं०**—फ्लेओफोरे। **सि०**—खुम्भी। **म०**—अळम्बे। **गु०**—बिलाडीनो टोप। **अं०**—Mush-room (मशरूम)। **ले०**—*Agaricus campestris Linn.* (एगेरिकस् कॅम्पेस्ट्रिस्)। Fam. Agaricaceae (एगेरिकेसी)।

यह सभी प्रांतों में होता है किंतु पंजाब में अधिक होता है।

भुई छत्ता-वर्षा ऋतु में आप ही आप जमीन फोड़कर उत्पन्न होता है। यह खाद की ढेरी पर अधिक होता है। इसका क्षुप-६-७ इञ्च ऊँचा होता है और इसमें कोई डाली नहीं होती, केवल एक डण्डी जो जमीन फोड़ कर निकलती है उस पर गोल छत्ते के आकार का एक छत्र होता है।

छत्र के नीचे की सतह से पतले परदे लटकते हैं जिन्हें गिल (Gill) कहा जाता है जिसमें अनेक बीजाणु (Spores) रहते हैं।

छत्रक के अनेक प्रकार होते हैं जिनमें से कुछ विषैले होते हैं। निम्नलिखित लक्षणों से यद्यपि इसका ज्ञान हो सकता है तथापि अनुभव के आधार पर ही इसका आसानी से ज्ञान होता है। जब तक निश्चित ज्ञान न हो तब तक इनका प्रयोग उचित नहीं है। इनकी उपज भी की जाती है।

निर्विष के लक्षण – छोटे, शीर्ष का भाग २ से ४ इञ्च चौड़ा, दुर्गंधहीन, श्वेत या गुलाबी, गिल गुलाबी, कांड से अलग तथा बीजाणु गहरे बैंगनी, ठोस, घास या कचरे के ढेर पर होने वाले, छत्र के नीचे कांड पर वलययुक्त प्रायः विषैले नहीं होते।

विषैले छत्रक—बहुत भंगुर या कड़े, छत्र चमकीला, पतला, गिल समान लंबाई के, सड़े में उत्पन्न, कृमि द्वारा खाये हुए, तोड़ने पर नीले रंग के, दुर्गंधयुक्त, स्वाद में कड़वे, अम्ल, खराब, डण्ठल के आधार भाग पर कटोरी जैसी रचना युक्त, पकाने पर चमकीले पीले हो जाने वाले, छायादार स्थान में होने वाले एवं दुग्ध जैसे रसयुक्त अखाद्य होते हैं।

गुण और प्रयोग—यह पौष्टिक एवं कामवर्धक होते हैं। मांस के समान यह पौष्टिक है। इसका साग आमाशय की दुर्बलता से उत्पन्न दुर्बलता तथा कृशता में दिया जाता है। क्षय में दूध तथा शर्करा के साथ इसे उबालकर देते हैं।

मात्रा—५ से १० तोला।

इति श्रीलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
दशमः शाकवर्गः समाप्तः ॥ १० ॥

अथैकादशो मांसवर्गः

अथ मांसम्। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

मांसं तु पिशितं क्रव्यमामिषं पललं पलम्। मांसं वातहरं सर्वं बृंहणं बलपुष्टिकृत्॥
प्रीणनं गुरु हृद्यञ्च मधुरं रसपाकयोः॥ १॥

मांसवर्ग में प्रथम मांस के संस्कृत नाम—मांस, पिशित, क्रव्य, आमिष, पलल तथा पल ये हैं। **सभी मांस**—रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), बल तथा पुष्टि के करने वाले, सन्तर्पण कारक, गुरु, हृदय के लिये हितकर तथा वातनाशक होते हैं॥ १॥

अथ मांसभेदानाह

मांसवर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलानूपभेदतः॥ २॥

मांस के भेद—मांसवर्ग दो भागों में विभक्त है, १—जाङ्गल (जङ्गली जीवों के) मांस २—आनूप (जल के समीप या जल में रहने वाले जीवों के) मांस॥ २॥

अथ जाङ्गलमांसस्य भेदान् गुणाँश्चाह

मांसवर्गेऽत्र जङ्घाला बिलस्थाश्च गुहाशयाः। तथा पर्णमृगा ज्ञेया विष्किराः प्रतुदस्तथा॥
प्रसहा अथ च ग्राम्या अष्टौ जाङ्गलजातयः। जाङ्गला मधुरा रूक्षास्तुवरा लघवस्तथा॥४॥
बल्यास्ते बृंहणं वृष्या दीपना दोषहारिणः। मूकतां मिन्मिनत्वं च गद्गदत्वार्दिते तथा॥५॥
बाधिर्यमरुचिच्छर्दिप्रमेहमुखजान् गदान्। श्लीपदं गलगण्डञ्च नाशयत्यनिलामयान्॥६॥

जाङ्गल मांस के भेद—इस मांसवर्ग में—१-जङ्घाल (जङ्घा के बल से चलने वाले), २-बिलस्थ (बिल में रहने वाले), ३-गुहाशय (गुफा में सोने वाले), ४-पर्णमृग (वृक्षों पर चढ़ने वाले), ५—विष्किर (कुरेद २ कर खाने वाले), ६—प्रतुद (चोंच से पदार्थ को निकाल कर खाने वाले) ७—प्रसह (जबरदस्ती से छीन कर खाने वाले), ८—ग्राम्य (ग्राम में रहने वाले) ये ८ जातियां "जाङ्गल" होती हैं। इन्हीं का मांस "जाङ्गल" मांस कहलाता है।

जाङ्गल मांस—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, रूक्ष, लघु, बलकारक, बृंहण (रसरक्तादि वर्धक), वीर्यवर्धक, अग्निदीपक, दोषनाशक एवम्—मूकता (गूंगापन), मिन्मिनापन, तोतलापन, अर्दित-वात (मुंह का लकवा), बहिरापन, अरुचि, वमन, प्रमेह, मुख में होने वाले रोग, श्लीपद (फीलपांव), गलगण्ड और वातसम्बन्धी रोग को दूरकरने वाला होता है॥ ३-६॥

अथानूपमांसस्य भेदान् गुणाँश्चाह

कूलेचराः प्लवाश्चापि कोशस्थाः पादिनस्तथा। मत्स्या एते समाख्याताः पञ्चधाऽऽनूपजातयः॥
अनूपा मधुराः स्निग्धा गुरवो वह्निसादनाः। श्लेष्मलाः पिच्छिलाश्चापि मांसपुष्टिप्रदा भृशम्॥
तथाऽभिष्यन्दिनस्ते हि प्रायः पथ्यतमाः स्मृताः॥ ८॥

आनूप मांस के भेद—१ कूलेचर (नदी आदि के किनारे पर चलने वाले), २ प्लव (जल के ऊपर तैरने वाले पक्षी), ३ कोशस्थ (ढकने के मध्य में रहने वाले), ४ पादी (पाँव वाले जल के जीव), ५ मत्स्य (मछली), ये ५ प्रकार की जातियाँ आनूप कहलाती हैं।

आनूपमांस—मधुररसयुक्त, स्निग्ध, गुरु, जठराग्नि को मन्द करने वाला, कफ उत्पन्न करने वाला, पिच्छिल, मांस को अत्यन्त पुष्ट करने वाला, अभिष्यन्दी तथा प्रायः करके अत्यन्त पथ्य होता है ॥ ७-८ ॥

अथ जाङ्गलाः। तत्र जङ्घालानां गणनां लक्षणानि विशिष्टगुणाँश्चाह

हरिणैणकुरङ्गर्क्ष्यपृषतन्यङ्कुशम्बराः ॥ ९ ॥
राजीवोऽपि च मुण्डी चेत्याद्या जङ्घालसंज्ञकाः।
हरिणस्ताम्रवर्णः स्यादेणः कृष्णः प्रकीर्तितः ॥ १० ॥

कुरङ्गईषत्ताम्रः स्यादेणतुल्याकृतिर्महान्। ऋष्यो नीलाङ्कको लोके स रोझ इति कीर्त्तितः ॥
पृषतश्चन्द्रबिन्दुः स्याद्धरिणात्किञ्चिदल्पकः। न्यङ्कुर्बहुविषाणोऽथ शम्बरो गवयो महान् ॥
राजीवस्तु मृगो ज्ञेयो राजिभिः परितो वृतः। यो मृगः शृङ्गहीनः स्यात्स मुण्डीति निगद्यते ॥
जङ्घालाः प्रायशः सर्वे पित्तश्लेष्महराः स्मृताः। किञ्चिद्वातकराश्चापि लघवो बलवर्द्धनाः ॥

जाङ्गल जीवों में प्रथम जङ्घाल संज्ञक जीवों की गणना—हरिण, एण, कुरङ्ग, ऋष्य, पृषत, न्यङ्कु, शम्बर, राजीव और मुण्डी इत्यादि जंघालसंज्ञक जीव हैं।

लक्षण—हरिण-यह ताँबे के समान वर्णवाला मृग होता है। एण-यह कृष्ण वर्ण का मृग होता है। कुरङ्ग-यह किंचित् ताँबे में समान वर्ण वाला, आकार में एण मृग के समान किन्तु उससे बड़ा होता है। ऋष्य-यह नीले वर्ण का होता है, इसे लोक में "रोझ" कहते हैं। पृषत-इसके ऊपर चन्द्र के समान बिन्दु होते हैं और यह हरिण से कुछ छोटा होता है। न्यङ्कु-इसके बहुत से झाड़दार सींग होते हैं, इसे "बारहसिंगा" कहते हैं। शम्बर-यह गवय (गौ के समान पशु-विशेष-नीलगाय) की अपेक्षा बड़ा होता है। राजीव-वह मृग कहलाता है जिसके शरीर पर बहुत सी रेखायें हों। मुण्डी-यह मृग (हरिण) सींग से रहित होता है।

जङ्घाल जीवों के मांस-प्रायः करके पित्त तथा कफ नाशक, किंचित् वातकारक, लघु तथा बलवर्धक होते हैं ॥ ९-१४ ॥

अथ बिलेशयः (बिलनिवासी प्राणी) तेषां गणनां गुणांश्चाह

गोधाशशभुजङ्गाखुशल्लक्याद्या बिलेशयाः। बिलेशया वातहरा मधुरा रसपाकयोः ॥
बृंहणा बद्धविण्मूत्रा वीर्योष्णाश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ १५ ॥

बिलेशय (बिल के रहने वाले) प्राणियों की गणना—गोह, खरगोश, सांप, मूसा, साही आदि जीव बिलेशय कहलाते हैं।

बिलेशय जीवों का मांस—वात नाशक, रस तथा विपाक में मधुर, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), उष्णवीर्य, मल तथा मूत्र का विबन्ध करने वाला होता है ॥ १५ ॥

अथ गुहाशयाः (गुफानिवासी प्राणी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

सिंहव्याघ्रवृका ऋक्षतरक्षुद्वीपिनस्तथा। बभ्रुजम्बूकमार्जारा इत्याद्याः स्युर्गुहाशयाः ॥१६॥

गुहाशय (गुफा में रहने वाले) जीवों की गणना—सिंह, बाघ, भेड़िया, भालु, तरस (लकड़-बग्घा), चित्रव्याघ्र (चीता), बभ्रु (नेवला), गीदड़, बिलार इत्यादि गुहाशय जीव हैं ॥ १६ ॥

*तरक्षुः—'तेंदुआबाघ" इति लोके। द्वीपी = "चित्रव्याघ्र" इति लोके।
स्थूलपुच्छो रक्तनेत्रो बभ्रुर्देहः स नाकुलः ॥ १६ ॥

यहाँ पर मूल में "तरक्षु" से "तेंदुआबाघ" और "द्वीपी" से "चित्रव्याघ्र" (चीता) समझना चाहिये और "बभ्रु" से स्थूल पूंछ तथा लाल नेत्रों वाला, पीले रंग का जो जीव (नेवला) होता है उसका ग्रहण करना चाहिये ॥ १६ ॥

गुहाशया वातहरा गुरूष्णा मधुराश्च ते। स्निग्धा बल्या हिता नित्यं नेत्रगुदविकारिणाम् ॥

गुहाशय जीवों का मांस—वातनाशक, गुरु, उष्ण, मधुर, स्निग्ध, बलकारक तथा नेत्र और गुदा रोग (अर्श) वालों के लिये नित्य हितकर होता है ॥ १७ ॥

अथ पर्णमृगाः (वृक्षों पर चढ़ने वाले प्राणी)। तेषां गणनां गुणाँश्चाह

वनौका वृक्षमार्जारो वृक्षमर्कटिकाऽऽदयः। एते पर्णमृगाः प्रोक्ताः सुश्रुताद्यैर्महर्षिभिः ॥१८॥

पर्णमृग (वृक्ष पर चढ़ने वाले) जीवों की गणना—वानर, वृक्षबिडाल (वन बिलाव), रूपी वानर आदि को सुश्रुतादि महर्षियों ने "पर्णमृग" संज्ञक बतलाया है ॥ १८ ॥

*वनौका = वानरः। वृक्षमार्जारो = वृक्षबिडालः। वृक्षमर्कटिका = 'रूपी वानर' इति लोके ॥ १८ ॥

यहाँ पर मूल में—"वनौका" से "वानर" तथा "वृक्षमार्जार" से वृक्षबिडाल अर्थात् पेड़ पर रहने वाले वन बिलाव और "वृक्षमर्कटिका" से "रूपी वानर" नाम से लोक में प्रसिद्ध जीव का ग्रहण करना चाहिये ॥ १८ ॥

स्मृताः पर्णमृगा वृष्याश्चक्षुष्याः शोषिणे हिताः। श्वासार्शःकासशमनाः सृष्टमूत्रपुरीषकाः ॥

पर्णमृग संज्ञक जीवों का मांस—वीर्यवर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, शोष (क्षय) रोगियों के लिये हितकारी, मूत्र तथा मल को निकालने वाला एवम्—श्वास, अर्श (बवासीर) और खांसी को दूर करने वाला होता है ॥ १९ ॥

अथ विष्किराः (विष्किरपक्षी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

वर्त्तका लाववर्त्तीरकपिञ्जलकतित्तिराः। कुलिङ्गकुक्कुटाद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः ॥ २० ॥
विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्धि विष्किराः। कपिञ्जल इति प्राज्ञैः कथितो गौरतित्तिरिः ॥
विष्किरा मधुराः शीताः कषायाः कटुपाकिनः।
बल्या वृष्यास्त्रिदोषघ्नाः पथ्यास्ते लघवः स्मृताः ॥ २२ ॥

विष्किर (कुरेद २ कर खाने वाले) पक्षियों की गणना—वर्त्तका, (बटेर-जङ्गली गौरैया), लाव (लवा), वर्त्तीर (कपिञ्जल के सदृश पक्षिविशेष), कपिञ्जल (गौर तीतर), तीतर, कुलिङ्ग (गौरैया) और मुर्गा इत्यादि पक्षी विष्किर कहलाते हैं। विष्किर शब्द की निरुक्ति—जो पक्षी पहले चोंच आदि से बिखेर कर पीछे खाते हैं इसीसे वे "विष्किर" कहलाते हैं और कपिञ्जल को विद्वान् लोग "गौरतित्तिरि" कहते हैं।

विष्किर पक्षियों का मांस—मधुर, शीतल, कषाय (कसैला), विपाक में कटु रस युक्त, बलकारक, वीर्यवर्धक, त्रिदोषनाशक, पथ्य तथा लघु होता है ॥ २०-२२ ॥

अथ प्रतुदाः (चोंच से खानेवाले पक्षी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

कालकण्ठकहारीतकपोतशतपत्रकाः।
पारावतः खञ्जरीटः पिकाद्याः प्रतुदाः स्मृताः।
प्रतुद्य भक्षयन्त्येते तुण्डेन प्रतुदास्ततः॥ २३॥

प्रतुद पक्षियों की गणना—कालकण्ठक (धूयें के रंग का जलकौवा), हरियल, पडुखी (कपोत भेद), शतपत्रक (कठफोरा), पारावत (कबूतर), खिड़रिच, कोयल आदि पक्षी "प्रतुद" कहलाते हैं।

प्रतुद शब्द की निरुक्ति—जो पक्षी चोंच से निखोर कर खाते हैं इसीसे वे "प्रतुद" कहे जाते हैं॥ २३॥

हारीतः="हरियल" इति लोके। कपोतो धवलः पाण्डुः। शतपत्रो बृहच्छुकः। "दार्वाघाटः" इत्यमरः। 'कठफोरा' इति लोके॥ २३॥

यहां पर "हारीत" से लोक प्रसिद्ध "हरियल" तथा कपोत पद से उसीका भेद शुक्लपीत वर्ण की पडुखी एवम् "शतपत्रक" से अमरकोश के प्रमाण से दार्वाघाट अर्थात् लोकप्रसिद्ध "कठफोरा" का बोध करना चाहिये॥ २३॥

प्रतुदा मधुराः पित्तकफघ्नास्तुवरा हिमाः। लघवो बद्धवर्चस्काः किञ्चिद्वातकराः स्मृताः॥

प्रतुद संज्ञक पक्षियों के मांस—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, पित्त, तथा कफनाशक, शीतल, लघु, मल को गाढ़ा करने वाले तथा किञ्चित् वातकारक होते हैं॥ २४॥

अथ प्रसहाः (दूसरे से छीनकर खानेवाले पक्षी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

काको गृध्र उलूकश्च चिल्लश्च शशघातकः। चाषो भासश्च कुरर इत्याद्याः प्रसहाः स्मृताः॥

प्रसह संज्ञक (दूसरे से जबरदस्ती छीन कर खानेवाले) पक्षियों की गणना—कौवा, गीध, उल्लू, चील्ह, बाज, नीलकण्ठ, भास (गीध का भेद) और कुरांकुर या कर्राकुल इत्यादि पक्षी प्रसह संज्ञक हैं॥ २५॥

शशघातकः="बाज" इति लोके। चाषः="नीलकण्ठ" इति लोके। भासः= गृध्रविशेषः स्यात्। कुररः="कुरांकुर" इति लोके॥ २५॥

यहां पर "शशघातक" का लोकप्रसिद्ध "बाज" पक्षी, "चाष" का "नीलकण्ठ" इस नाम से लोकप्रसिद्ध पक्षी, "भास" का गीध के भेद का पक्षी, "कुरर" का "कुरांकुर" इस नाम से लोकप्रसिद्ध पक्षी का ग्रहण करना चाहिये॥ २५॥

प्रसहाः कीर्तिता एते प्रसह्याच्छिद्य भक्षणात्॥ २६॥

"प्रसह" शब्द की निरुक्ति—जो पक्षी दूसरे से जबरदस्ती छीनकर खाते हैं इससे वे "प्रसह" कहलाते हैं॥ २६॥

प्रसहाः खलु वीर्योष्णास्तन्मांसं भक्षयन्ति ये। ते शोषभस्मकोन्मादशुक्रक्षीणा भवन्ति हि॥

प्रसह संज्ञक के मांस—ये सब उष्णवीर्य होते हैं, अतः जो उनके मांस को खाते हैं उनको शोष (क्षय), भस्मक रोग, पागलपन तथा शुक्रक्षीणता हो जाती है॥ २७॥

अथ ग्राम्याः (ग्राम्यपशु)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

छागमेषवृषाश्वाद्या ग्राम्याः प्रोक्ता महर्षिभिः। ग्राम्या वातहराः सर्वे दीपनाः कफपित्तलाः।
मधुरा रसपाकाभ्यां बृंहणा बलवर्द्धनाः॥ २८॥

ग्राम्य (गांव के अन्दर रहने वाले) पशुओं की गणना—बकरा, भेड़ा (मेढ़ा), बैल (गोजाति), घोड़ा आदि पशुओं को महर्षियों ने "ग्राम्य" संज्ञक कहा है।

ग्राम्य पशुओं का मांस—वातनाशक, अग्निदीपक, कफ तथा पित्तकारक, रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, बृंहण (रस-रक्तादि वर्द्धक) एवम् बल को बढ़ाने वाला होता है॥ २८॥

अथानूपाः। तत्र कूलेचराणां गणनां गुणांश्चाह

लुलायगण्डवाराहचमरीवारणादयः। एते कूलेचराः प्रोक्ता यतः कूले चरन्त्यपाम्॥ २९॥

आनूप जाति के जीवों में कूलेचर संज्ञक जीवों की गणना—भैंसा, गैंडा, सूअर, चमरी (Yak-याक्) जाति की गाय और हाथी ये "कूलेचर" संज्ञक जीव कहलाते हैं।

"कूलेचर" शब्द की निरुक्ति-जो जीव नदी आदि जलाशयों के तट पर चरने वाले होते हैं उन्हें "कूलेचर" कहा जाता है॥ २९॥

लुलायो=महिषः। गण्डः=खड्गः। चमरी=चमरपुच्छी गौः॥ २९॥

यहां पर मूल में "लुलाय" से भैंसा, "गण्ड" से गैंडा, चमरी से जिस गोजाति के पशु की छ से चमर बनाया जाता है उस चमरी जाति का ग्रहण करना चाहिये॥ २९॥

कूलेचरा मरुत्पित्तहरा वृष्या बलावहाः। मधुराः शीतलाः स्निग्धा मूत्रलाः श्लेष्मवर्धनाः॥

कूलेचर संज्ञक जीवों का मांस—वात तथा पित्त को दूर करने वाला, वीर्यवर्धक, बलकारक, मधुर रसयुक्त, शीतल, स्निग्ध, मूत्रकारक तथा कफ को बढ़ाने वाला होता है॥ ३०॥

अथ प्लवाः (जलपर तैरने वाले पक्षी)। तेषां गणनां गुणांश्चाह

हंससारसकारण्डवकक्रौञ्चशरारिकाः॥ ३१॥
नन्दीमुखी सकादम्बा बलाकाद्याः प्लवाः स्मृताः।
प्लवन्ति सलिले यस्मादेते तस्मात्प्लवाः स्मृताः॥ ३२॥

प्लवसंज्ञक पक्षियों की गणना—हंस, सारस, कारण्ड (करंड), बगला, क्रौञ्च, शरारिका, नन्दीमुखी, कादम्ब, बगुली आदि ये सब "प्लव" संज्ञक हैं।

प्लव शब्द की निरुक्ति-जो पक्षी जल पर तैरने वाले होते हैं वे "प्लव" कहे जाते हैं॥ ३१-३२॥

कारण्डः=कपर्दिकाक्षो बृहद्धंसभेदः। क्रौञ्चः=शरद्विहङ्गः स्यात्-"टेंक" इति लोके। शरारिका="सिन्धु" इति लोके॥

स्थूला कठोरा वृत्ता च यस्याश्चञ्चूपरि स्थिता। गुटिका जम्बुसदृशी प्रोक्ता नन्दीमुखीति सा॥

कादम्बः="करवा" इति लोके। बलाका="बगुली" इति लोके॥ ३१-३२॥

यहां पर मूल में—"कारण्ड" पद से 'कपर्दिकाक्ष', बड़े हंस का भेद, काले रंग के बड़े २ पैर वाले पक्षी; "क्रौञ्च" से शरद् ऋतु का पक्षी, "टेंक" नाम से प्रसिद्ध; "शरारिका" से "सिन्धू" नाम से लोक प्रसिद्ध पक्षी का ग्रहण करना चाहिये। "नन्दीमुखी" से उस पक्षीका ग्रहण करना चाहिये कि जिसके चोंच के ऊपर मोटी, कठोर, गोल, जामुन के फल के समान गुटिका हो और "कादम्ब" से लोक प्रसिद्ध करवा अर्थात् बत्तख का तथा "बलाका" से "बगुली" का बोध करना चाहिये॥ ३१-३२॥

प्लवाः पित्तहराः स्निग्धा मधुरा गुरवो हिमाः। वातश्लेष्मप्रदाश्चापि बलशुक्रकराः सराः ॥३३॥

प्लव संज्ञक पक्षियों का मांस—पित्तनाशक, स्निग्ध, मधुररसयुक्त, गुरु, शीतल, वात तथा कफ को उत्पन्न करने वाला, बल तथा शुक्रवर्धक एवम् सारक होता है ॥ ३३ ॥

अथ कोशस्थाः (ढकनेके मध्यमें रहनेवाले प्राणी)।
तेषां गणनां गुणांश्चाह

शङ्खः शङ्खनखश्चापि शुक्तिशम्बूककर्कटाः। जीवा एवंविधाश्चान्येकोशस्थाः परिकीर्त्तिताः॥३४॥

कोशस्थ (ढकने के मध्य में रहने वाले) प्राणियों की गणना—शंख, क्षुद्रशंख (छोटे शंख), सितुही, घोंघा, केकड़ा, (यहां पर सु० सू० ४६ अ० में कोशस्थ जीवों में "मल्लुक" का पाठ है अतः "कर्कट" पाठ ठीक नहीं मालूम पड़ता है अत एव "मल्लुक" से बड़ी "कौड़ी" का ग्रहण करना चाहिये) ये सब तथा इसी प्रकार के अन्य भी जो जीव हैं वे सब "कोशस्थ" कहलाते हैं ॥ ३४ ॥

*शङ्खनखः = क्षुद्रशङ्खः ॥ ३४ ॥

यहां पर "शङ्खनख" से क्षुद्रशङ्ख अर्थात् "छोटे शङ्ख" का ग्रहण करना चाहिये ॥ ३४ ॥

कोशस्था मधुराः स्निग्धा वातपित्तहरा हिमाः। बृंहणा बहुवर्चस्का वृष्याश्च बलवर्द्धनाः ॥३५॥

कोशस्थ जीवों का मांस—मधुर रस युक्त, स्निग्ध, वात तथा पित्त नाशक, शीतल, बृंहण (रस रक्त-मांसादि वर्धक), अधिक मात्रा में मल निकालने वाला, वीर्यवर्धक तथा बलवर्धक होता है ॥३५॥

अथ पादिनः (पांवोंके प्राणी)। तेषां गणनां गुणाँश्चाह

कुम्भीरकूर्मनक्राश्च गोधामकरशङ्कवः। घण्टिकः शिशुमारश्चेत्याद्याः पादिनः स्मृताः ॥३६॥

पादी अर्थात् पांव वाले प्राणियों की गणना—कुम्भीर, कछुआ, नाक, गोह, मगर, शाकुचा, घड़ियाल, सूस इत्यादि जीव पादी (पांव वाले) कहलाते हैं ॥ ३६ ॥

*कुम्भीरो = मारको जलजन्तुः। कूर्मः = कच्छपः। नक्रः = "नाकः" इति लोके (सरय्वादिनदीषु बहुलः)। गोधा = "गोहि" जलजन्तुः। मकरः = "मगर" इति लोके। शङ्कुः = "शाकुचा" इति लोके। घण्टिकः = "घड़ियाल" इति लोके। शिशुमारः = "सूस" इति लोके ॥ ३६ ॥

यहां पर मूल में—"कुम्भीर" से मारने वाला नाक के भेद का जीव विशेष; "कूर्म" से कछवा; "नक्र" के लोक प्रसिद्ध-नाक (सरयू आदि नदियों में अधिक रूप से रहने वाला); "गोधा" से गोह नामक जल का जीव; "मकर" से मगर नाम से प्रसिद्ध जीव; "शंकु" से शाकुचा नामक जीव; "घण्टिक" से घड़ियाल; "शिशुमार" से सूस नाम से प्रसिद्ध जीव समझना चाहिये ॥३६॥

पादिनोऽपि च ये ते तु कोशस्थानां गुणैः समाः ॥ ३६ ॥

पादी अर्थात् पांव वाले जीवों का मांस—गुणों में उपर्युक्त कोशस्थ जीवों के मांस के समान होता है ॥ ३७ ॥

अथ मत्स्याः (मछली)। तेषां नामानि गुणांश्चाह

मत्स्यो मीनो विसारश्च झषो वैसारिणोऽण्डजः। शकुली पृथुरोमा च स सुदर्शन इत्यपि ॥
रोहिताद्यास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परिकीर्त्तिताः। मत्स्याः स्निग्धोष्णमधुरा गुरवः कफपित्तलाः॥
वातघ्नाबृंहणा वृष्या रोचका बलवर्द्धनाः। मद्यव्यवायसक्तानां दीप्ताग्नीनाञ्च पूजिताः ॥४०॥

मछलियों के संस्कृत नाम—मत्स्य, मीन, विसार, झष, वैसारिण, अण्डज, शकुली, पृथुरोमा और सुदर्शन ये सब हैं।

मछलियों की गणना—रोहू आदि जो जीव हैं (जिनका आगे वर्णन आने वाला है) उनकी गणना मत्स्यों (मछलियों) के अन्तर्गत समझनी चाहिये।

मछली का मांस—स्निग्ध, उष्ण, मधुर रस युक्त, गुरु, कफ तथा पित्तजनक, वातनाशक, बृंहण, वृष्य, रोचक, बलवर्द्धक तथा मद्य (शराब) पीने तथा मैथुन करने में आसक्त चित्त वालों एवम् प्रदीप्त जठराग्नि वालों के लिये हितकर होता है ॥ ३८-४० ॥

अथ जङ्घालाः (जांघ के बल से चलने वाले प्राणी)।
तत्र हरिणस्य मांसगुणानाह

हरिणः शीतलो बद्धविण्मूत्रो दीपनो लघुः। रसे पाके च मधुरः सुगन्धिः सन्निपातहा ॥

हरिन का मांस—शीतल, मल तथा मूत्र का विबन्ध करने वाला, अग्निदीपक, लघु, रस तथा विपाक में मधुर रस युक्त, अच्छे गन्ध वाला तथा सन्निपातनाशक होता है ॥ ४१ ॥

अथैणहरिणः (कालाहरिण)। तस्य मांसगुणानाह

एणः कषायो मधुरः पित्तास्रकफवातहृत्। संग्राही रोचनो बल्यो ज्वरप्रशमनः स्मृतः ॥४२॥

काले हरिण का मांस—कषाय तथा मधुर रस युक्त, संग्राही, रोचक, बलकारक एवम्—पित्त, रक्तविकार, कफ, वात तथा ज्वर का नाशक होता है ॥ ४२ ॥

अथ कुरङ्गः। तस्य मांसगुणानाह

कुरङ्गो बृंहणो बल्यः शीतलः पित्तहृद् गुरुः। मधुरो वातहृद् ग्राही किञ्चित्कफकरः स्मृतः ॥

कुरङ्गनामक मृग का मांस—बृंहण (रस—रक्तादिवर्धक), बलकारक, शीतल, पित्तनाशक, गुरु, मधुररसयुक्त, वातनाशक, ग्राही तथा किंचित् कफ करने वाला होता है ॥ ४३ ॥

अथ ऋष्यः (रोझ)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

ऋष्यो नीलाण्डकश्चापि गवयो रोझ इत्यपि। गवयो मधुरो बल्यः स्निग्धोष्णः कफपित्तलः ॥

ऋष्य (रोझ) नामक मृग के संस्कृत नाम—ऋष्य, नीलाण्डक, गवय, रोझ ये सब हैं। (यहां पर "रोझ" संस्कृत का नाम नहीं मालूम पड़ता है, ग्रन्थानुरोध से लिख दिया गया है)।

रोझ का मांस—मधुर रस युक्त, बलकारक, स्निग्ध, उष्ण, एवम् कफ तथा पित्त जनक होता है ॥ ४४ ॥

अथ पृषतः (चित्तलमृग)। तस्य मांसगुणानाह

पृषतस्तु भवेत्स्वादुर्ग्राहकः शीतलो लघुः। दीपनो रोचनः श्वासज्वरदोषत्रयास्रजित् ॥ ४५ ॥

चित्तल मृग का मांस—स्वादिष्ट, ग्राही, शीतल, लघु, अग्निदीपक, रोचक एवम्—श्वास (दमा), ज्वर, त्रिदोष तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ४५ ॥

अथ न्यङ्कुः (बारहसिंगा)। तस्य मांसगुणानाह

न्यङ्कुः स्वादुर्लघुर्बल्यो वृष्यो दोषत्रयापहः ॥ ४६ ॥

न्यङ्कुसंज्ञक मृग का मांस—स्वादिष्ट, लघु, बलकारक, वीर्यवर्धक तथा त्रिदोषनाशक होता है ॥ ४६ ॥

अथ साबरम् । तस्य मांसगुणानाह

साबरं पललं स्निग्धं शीतलं गुरु च स्मृतम् । रसे पाके च मधुरं कफदं रक्तपित्तहृत् ॥ ४७ ॥

सांबर मृग का मांस—स्निग्ध, शीतल, गुरु, रस तथा विपाक में मधुर रस युक्त, कफजनक एवम्—रक्तपित्त को दूर करने वाला होता है ॥ ४७ ॥

अथ राजीवः । तस्य मांसगुणानाह

राजीवस्तु गुणैर्ज्ञेयः पृषतेन समो जनैः ॥ ४८ ॥

राजीव मृग का मांस—गुणों में चित्तलमृग के मांस के समान ही होता है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ४८ ॥

अथ मुण्डी । तस्य मांसगुणानाह

मुण्डी तु ज्वरकासास्रक्षयश्वासापहो हिमः ॥ ४९ ॥

मुण्डी मृग का मांस—शीतल तथा ज्वर, खांसी, रक्तविकार, क्षय और श्वास को दूर करने वाला होता है ॥ ४९ ॥

अथ बिलेशयाः । तत्र शशः (खरगोश) । तस्य नामानि मांसगुणांश्चाह

लम्बकर्णः शशः शूली लोमकर्णो बिलेशयः । शशः शीतो लघुर्ग्राही रूक्षः स्वादुः सदा हितः । वह्निकृत्कफपित्तघ्नो वातसाधारणः स्मृतः । ज्वरातीसारशोषास्रश्वासामयहरश्च सः ॥ ५० ॥

बिलेशय संज्ञक जीवों में खरगोश के संस्कृत नाम—लम्बकर्ण, शश, शूली, लोमकर्ण तथा बिलेशय ये सब हैं।

खरगोश का मांस—शीतल, लघु, ग्राही, रूक्ष, स्वादिष्ट, सभी ऋतुओं में हितकर, जठराग्नि को प्रज्वलित करने वाला, कफ तथा पित्त नाशक, साधारण वात कारक एवम्—ज्वर, अतीसार, शोष, रक्तविकार तथा दमा को दूर करने वाला होता है ॥ ५० ॥

अथ सेधा (सेह, साही)। तस्या नामानि मांसगुणांश्चाह

सेधा तु शल्यकः श्वाविरुच्यन्ते तद्गुणा अथ । शल्यकः श्वासकासास्रशोषदोषत्रयापहः ॥

साही के संस्कृत नाम—सेधा, शल्यक और श्वावित् ये सब हैं।

साही का मांस—श्वास, खांसी, रक्तविकार, शोष तथा त्रिदोष को दूर करनेवाला होता है ॥ ५१ ॥

अथ पक्षिणः (पक्षी) । तेषां नामानि मांसगुणांश्चाह

पक्षी खगो विहङ्गश्च विहगश्च विहङ्गमः । शकुनिर्विः पतत्री च विष्किरो विकिरोऽण्डजः । धान्याङ्कुरचरा येऽत्र तेषां मांसं लघूत्तमम् । आनूपं बलकृन्मांसं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ॥५२॥

पक्षी के संस्कृत नाम—पक्षी, खग, विहङ्ग, विहग, विहङ्गम, शकुनि, वि, पतत्री, विष्किर, विकिर तथा अण्डज ये सब है।

पक्षियों में जो धान के अङ्कुर चरने वाले हैं, उनका मांस—हल्का तथा उत्तम होता है। **आनूप अर्थात् जल के किनारे रहने वाले पक्षियों का मांस**—बलकारक, स्निग्ध तथा अत्यन्त गुरु होता है ॥ ५२ ॥

अथ तेषु विष्किरेषु वर्त्तकः (बटेर) । तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

वर्तीको वर्त्तकश्चित्रस्ततोऽन्या वर्त्तका स्मृता । वर्त्तकोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः । सुरुच्यः शुक्रदो बल्यो वर्त्तकाऽल्पगुणा ततः॥५३॥

पूर्वोक्त विष्किर संज्ञक पक्षियों में वर्त्तक अर्थात् बटेर के संस्कृत नाम— वर्तीक, वर्त्तक तथा चित्र ये सब हैं। इससे अन्य प्रकार का एक बटेर होता है जिसे संस्कृत में "वर्त्तका" कहते हैं।

बटेर का मांस—जठराग्निकारक, शीतल, सुरुचिकारक, शुक्र उत्पन्न करने वाला, बलकारक एवम्—ज्वर तथा त्रिदोष को नष्ट करने वाला होता है। और दूसरे प्रकार का जो बटेर है उसका मांस—पूर्वोक्त बटेर के मांस की अपेक्षा स्वल्प गुण वाला होता है ॥ ५३ ॥

अथ लावः (लवा)। तस्य मांसगुणसहितान् भेदान् मांसगुणाँश्चाह

लावा विष्करवर्गेषु ते चतुर्धा मता बुधैः ॥ ५४ ॥
पांशुलो गौरकोऽन्यस्तु पौण्ड्रको दर्भरस्तथा ।
लावा वह्निकराः स्निग्धा गरघ्ना ग्राहका हिताः ॥ ५५ ॥
पांशुलःश्लेष्मलस्तेषु वीर्योऽष्णोऽनिलनाशनः । गौरो लघुतरो रूक्षो वह्निकारी त्रिदोषजित् ॥५६॥ पौण्ड्रकः पित्तकृत्किञ्चिल्लघुर्वातकफापहः । दर्भरो रक्तपित्तघ्नो हृदामयहरो हिमः ॥५७॥

विष्किर वर्ग के पक्षियों में जो लवा है, उसके ४ भेद पण्डितोंने कहे हैं। उसमें प्रथम—पांशुल, दूसरा—गौरक, तीसरा—पौण्ड्रक एवं चौथा—दर्भर भेद है।

लवा पक्षियों का मांस—अग्निकारक, स्निग्ध, विषनाशक, ग्राही तथा हितकर(पथ्य) होता है। **पांशुल संज्ञक लवा का मांस**—कफकारक, उष्णवीर्य तथा वातनाशक होता है। **गौरक संज्ञक लवा का मांस**—अत्यन्त लघु, रूक्ष, अग्नि वृद्धिकारक एवम् त्रिदोषनाशक होता है। **पौण्ड्रक संज्ञक लवा का मांस**—पित्तकारक, किञ्चित् लघु, वात तथा कफनाशक होता है। **दर्भर संज्ञक लवा का मांस**—रक्तपित्तनाशक, हृद्रोगको दूर करनेवाला तथा शीतल होता है ॥ ५४-५७ ॥

अथ वार्त्तीकः (बगेरा, बटेरा) । तस्य नामानि मांसगुणानाह

वर्त्तीको वर्तिचटको वार्त्तीकश्चैव स स्मृतः । वर्त्तीको मधुरः शीतो रूक्षश्च कफपित्तनुत्॥५८॥

बगेरा के संस्कृत नाम—वर्त्तीक, वर्तिचटक तथा वार्त्तीक ये सब हैं।

बगेरा का मांस—मधुर रस युक्त, शीतल, रूक्ष एवम् कफ तथा पित्तनाशक होता है ॥ ५८ ॥

अथ कृष्णतित्तिरिर्गौरतित्तिरिश्च (तीतर) । तयोर्नामानि मांसगुणाँश्चाह

तित्तिरिः कृष्णवर्णः स्यात्स तु गौरः कपिञ्जलः । तित्तिरिर्बलदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः ॥
श्वासकासज्वरहरस्तस्माद्गौरोऽधिको गुणैः ॥ ५९ ॥

तीतर के भेद और लक्षण—तीतर २ प्रकार का होता है। १ तीतर, २ गौर तीतर। काले रङ्ग का जो तीतर होता है उसे कृष्णतित्तिरि, या तित्तिरि, संस्कृत में कहते हैं। यदि वही तीतर **गौर वर्ण** का हो तो उसे संस्कृत में गौरतित्तिरि या कपिञ्जल कहते हैं। **तीतर का मांस**—बलदायक, ग्राही एवम्—हिचकी, त्रिदोष, श्वास, खांसी तथा ज्वर को दूर करने वाला होता है। **गौर तीतर का मांस**—तीतर के मांस की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है ॥ ५९ ॥

अथ चटकः (गौरैया, चिडा)। तस्य नामानि मांसगुणानाह

चटकः कलविङ्कः स्यात्कुलिङ्कः कालकण्ठकः ॥ ६० ॥
कुलिङ्गः शीतलः स्निग्धः स्वादुः शुक्रकफप्रदः । सन्निपातहरो वेश्मचटकश्चातिशुक्रलः ॥६१॥

गौरैया के संस्कृत नाम—चटक, कलविङ्क, कुलिङ्ग और कालकण्ठक ये सब हैं।

गौरैया का मांस—शीतल, स्निग्ध, स्वादिष्ट, शुक्र तथा कफ को उत्पन्न करने वाला एवम् सन्निपात को दूर करने वाला होता है। घर में रहने वाले गौरैया का मांस—अत्यन्त शुक्र को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ६०–६१ ॥

अथ कुक्कुटो वनकुक्कुटश्च (मुरगा–वनमुरगा)। तयोर्नामानि मांसगुणाँश्चाह

कुक्कुटः कृकवाकुः स्यात्कालज्ञश्चरणायुधः। ताम्रचूडस्तथा दक्षो यामनादी शिखण्डिकः ॥६२॥
कुक्कुटो बृंहणः स्निग्धो वीर्योष्णोऽनिलहृद् गुरुः । चक्षुष्यः शुक्रकफकृद् बल्यो वृष्यः कषायकः॥
आरण्यकुक्कुटः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलो गुरुः । वातपित्तक्षयवमिविषमज्वरनाशनः ॥ ६४ ॥

मुरगा का संस्कृत नाम - कुक्कुट, कृकवाकु, कालज्ञ, चरणायुध, ताम्रचूड, दक्ष, यामनादी तथा शिखण्डिक ये सब हैं। वनमुरगा का संस्कृत नाम—वनकुक्कुट तथा आरण्यकुक्कुट आदि है।

मुरगा का मांस—बृंहण (रस—रक्तादि वर्धक), स्निग्ध, उष्णवीर्य, वायु को नष्ट करने वाला, गुरु, नेत्रों के लिये हितकर, शुक्र तथा कफकारक, बलदायक, वृष्य (वीर्यवर्धक) तथा कषाय रसयुक्त होता है। **वनमुरगा का मांस**—स्निग्ध, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), कफजनक, गुरु, एवम् वात, पित्त, क्षय, वमन तथा विषमज्वर को दूर करने वाला होता है ॥ ६२–६४ ॥

अथ प्रतुदाः तत्र हारीतः (हरियल)। तस्य नामानि मांसगुणांश्चाह

हारीतो रक्तपीतः स्याद्धरितोऽपि स कथ्यते ।
हारीतो रूक्ष उष्णश्च रक्तपित्तकफापहः। स्वेदस्वरकरः प्रोक्तः ईषद्वातकरश्च सः ॥ ६५ ॥

प्रतुद जाति के पक्षियों में हरियल के संस्कृत नाम—हारीत, रक्तपीत और हरित ये सब हैं।

हरियल का मांस—रूक्ष, उष्ण, रक्तपित्त तथा कफनाशक, स्वेद (पसीना) लाने वाला, स्वर को उत्तम करने वाला एवम् किञ्चित् वातकारक होता है ॥ ६५ ॥

अथ पाण्डुर्धवलपाण्डुश्च (पण्डुक)। तयोर्नामानि मांसगुणांश्चाह

पाण्डुस्तु द्विविधो ज्ञेयश्चित्रपक्षः कलध्वनिः ॥ ६६ ॥
द्वितीयो धवलः प्रोक्तः स कपोतः स्फुटध्वनिः। चित्रपक्षः कफहरो वातघ्नो ग्रहणीप्रणुत्॥६७॥
धवलः पाण्डुरुद्दिष्टो रक्तपित्तहरो हिमः। रसे पाके च मधुरः संग्राही वातशान्तिकृत् ॥६८॥

पंडुक का भेद एवं नाम—पंडुक दो प्रकार का होता है, उसमें जो अनेक प्रकार के रङ्गों से युक्त पङ्खवाला तथा अस्फुट एवम् मधुर ध्वनि करने वाला पंडु होता है उसे संस्कृत में चित्रपक्ष, पाण्डु तथा कलध्वनि कहते हैं। दूसरा पंडु जो (सफेद) है उसे धवल पाण्डु संस्कृत में कहते हैं। यह स्फुट शब्द करने वाला कबूतर है।

चित्रपक्ष का मांस—कफ को दूर करने वाला, वातनाशक एवम् ग्रहणी रोग को नष्ट करने वाला होता है। धवलपाण्डु—रक्तपित्त को दूर करने वाला, शीतल, रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, संग्राही एवम् वायु को शमन करने वाला होता है ॥ ६६–६८ ॥

अथ मयूरः (मोर)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

मयूरश्चन्द्रकी केकी मेघरावो भुजङ्गभुक् । शिखी शिखावलो बर्हो शिखण्डी नीलकण्ठकः ॥
शुक्लापाङ्गः कलापी च मेघनादानुलास्यपि। रसे पाके च मधुरः संग्राही वातशान्तिकृत्॥७०॥

मोर के संस्कृत नाम—मयूर, चन्द्रकी, केकी, मेघराव, भुजङ्गभुक्, शिखी, शिखावल, बर्ही, शिखण्डी, नीलकण्ठक, शुक्लापाङ्ग, कलापी तथा मेघनादानुलासी ये सब हैं।

मोर का मांस—रस तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, संग्राही तथा वायु को शमन करने वाला होता है ॥ ६९–७० ॥

अथ पारावतः (कबूतर, परेवा)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

पारावतः कलरवः कपोतो रक्तलोचनः ।
पारावतो गुरुः स्निग्धो रक्तपित्तानिलापहः । संग्राही शीतलस्तज्ज्ञैः कथितो वीर्यवर्द्धनः ॥७१॥

परेवा के संस्कृत नाम—पारावत, कलरव, कपोत तथा रक्तलोचन ये सब हैं।

परेवा का मांस—गुरु, स्निग्ध, रक्तपित्त तथा वायुनाशक, संग्राही, शीतल तथा वीर्य को बढ़ाने वाला होता है, ऐसा द्रव्य गुण के विद्वानों ने कहा है ॥ ७१ ॥

अथ पक्ष्यण्डानि (पक्षियोंके अण्डे)। तेषां गुणानाह

नातिस्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाकरसानि च ।
वातघ्नान्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम् ॥

पक्षियों के अण्डे—अत्यन्त स्निग्ध नहीं (किञ्चित् स्निग्ध) होते हैं और वृष्य (वीर्यवर्धक), विपाक तथा रस में मधुर रस युक्त, वातनाशक तथा अत्यन्त शुक्र को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥ ७२ ॥

अथ ग्राम्याः। तत्र छागः (बकरा)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

छागलो बर्करश्छागो बस्तोऽजश्छेलकः स्तुभः ॥ ७३ ॥
अजा छागी स्तुभा चापि छेलिका च गलस्तनी ।
छागमांसं लघु स्निग्धं स्वादुपाकं त्रिदोषनुत् ॥ ७४ ॥
नातिशीतमदाहि स्यात्स्वादु पीनसनाशनम् । परं बलकरं रुच्यं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥ ७५ ॥

ग्राम्य पशुओं में बकरा के संस्कृत नाम—छागल, बर्कर, छाग, बस्त, अज, छेलक तथा स्तुभ ये सब हैं। बकरी के संस्कृत नाम—अजा, छागी तथा स्तुभा ये सब हैं। जिस के गले मे स्तन के समान मांस लटकता हो उस बकरी को संस्कृत में—गलस्तनी तथा छेलिका कहते हैं।

बकरे का मांस—लघु, स्निग्ध, विपाक मे मधुर रस युक्त, त्रिदोषनाशक, अत्यन्त शीतल नहीं (किञ्चित् शीतल), दाह न पैदा करने वाला, स्वादिष्ट, पीनस रोग को दूर करने वाला, अत्यन्त बलकारक, रोचक, बृंहण तथा वीर्यवर्धक होता है ॥ ७३–७५ ॥

अथाप्रसूताजाया बालकाजासुतस्य च मांसगुणानाह

अजायास्त्वप्रसूताया मांसं पीनसनाशनम्। शुष्ककासेऽरुचौ शोषे हितमग्नेश्च दीपनम् ॥७६॥
अजासुतस्य बालस्य मांसं लघुतरं स्मृतम् । हृद्यं ज्वरहरं श्रेष्ठं सुखदं बलदं भृशम् ॥ ७७ ॥

बिना ब्याई हुई बकरी का मांस—पीनस रोगनाशक, सूखी खांसी, अरुचि तथा शोष रोग में हितकारक एवम् अग्निदीपक होता है।

बकरी के छोटे बच्चों का **मांस**—अत्यन्त लघु, हृदय को हितकर, ज्वरनाशक, अत्यन्त सुख तथा बल को देने वाला अतएव श्रेष्ठ होता है ॥ ७६-७७ ॥

अथ निष्कासिताण्ड-वृद्ध-व्याधिमृतानां छागानां मांसस्य छागमुण्डस्य च गुणानाह

मांसं निष्कासिताण्डस्य छागस्य कफकृद् गुरु। स्रोतःशुद्धिकरं बल्यं मांसदं वातपित्तनुत्॥७८॥
वृद्धस्य वातलं रूक्षं तथा व्याधिमृतस्य च। ऊर्ध्वजत्रुविकारघ्नं छागमुण्डं रुचिप्रदम्॥७९॥

जिस बकरे के अण्ड-कोश निकाल लिये गये हैं उसके अर्थात् बधिया किये हुए बकरे का **मांस**—कफकारक, गुरु, स्रोतों की शुद्धि करने वाला, बलकारक, मांसवर्धक, वात तथा पित्त नाशक होता है। बुड्ढे बकरे का **मांस**—वायु को उत्पन्न करने वाला तथा रूक्ष होता है। **रोग से पीड़ित हो कर मरे हुए बकरे का मांस**—भी वात कारक तथा रूक्ष होता है। **बकरे का मुण्ड (शिर)**—जत्रु [कांख तथा कन्धे के सन्धि स्थान] के ऊपर भाग में होने वाले रोगों को दूर करने वाला तथा रुचिजनक होता है ॥ ७८-७९ ॥

अथ मेषः (मेढा)। तस्य नामान्यण्डविहीनस्य तस्य च मांसगुणाँश्चाह

मेढ्रो मेढो हुडो मेष उरणोऽप्येडकोऽपि च। अविर्वृष्णिस्तथोर्णायुः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ॥८०॥
मेषस्य मांसं पुष्टौ स्यात्पित्तश्लेष्मकरं गुरु। तस्यैवाण्डविहीनस्य मांसं किञ्चिल्लघु स्मृतम्॥

मेढा के संस्कृत नाम—मेढ्र, मेढ, हुड, मेष, उरण, एडक, अवि, वृष्णि और ऊर्णायु ये सब हैं।

मेढ़े का **मांस**—पुष्टि के लिये उत्तम, पित्त तथा कफ को उत्पन्न करने वाला एवम् गुरु होता है। अण्डकोश निकाले हुये (बधिया किये हुये) मेढ़े का **मांस**—किञ्चित् लघु होता है और शेष गुण पूर्वोक्त होते हैं ॥ ८०-८१ ॥

अथैडकः। (दुम्बा मेढा)। तस्य नामानि तद्भेदस्य च मांसगुणाँश्चाह

एडकः पृथुशृङ्गः स्यान्मेदःपुच्छस्तु दुम्बकः। एडकस्य पलं ज्ञेयं मेषामिषसमं गुणैः॥ ८२॥
मेदःपुच्छोद्भवं मांसं हृद्यं वृष्यं श्रमापहम्। पित्तश्लेष्मकरं किञ्चिद्वातव्याधिविनाशनम्॥८३॥

एडक अर्थात् मोटी सींग वाले मेढा का सं० नाम—एडक और पृथुशृङ्ग है। इसकी सींग बड़ी मोटी होती है। दुम्बा मेढ़ा का संस्कृत नाम—मेदःपुच्छ तथा दुम्बक है। इसकी पूँछ मेद बढ़ जाने से बड़ी चौड़ी हो जाती है। **एडक संज्ञक मेढ़े का मांस**—गुणों में पूर्वोक्त मेढ़े के मांस के समान ही समझना चाहिये। **दुम्बा मेढ़े का मांस**—हृदय को हितकर, वीर्यवर्धक, श्रम को दूर करने वाला, पित्त तथा कफ कारक एवम् किञ्चित् वातरोग को नष्ट करने वाला होता है ॥ ८२-८३ ॥

अथ वृषभः (बैल)। तस्य नामानि मांसगुणानाह

बलीवर्दस्तु वृषभः ऋषभश्च तथा वृषः। अनड्वान्सौरभेयोऽपि गौरुक्षा भद्र इत्यपि॥ ८४॥
सुरभिः सौरभेयी च माहेयी गौरुदाहृता। गोमांसं सुगुरु स्निग्धं पित्तश्लेष्मविवर्द्धनम्।
बृंहणं वातहृत् बल्यमपथ्यं पीनसप्रणुत्॥ ८५॥

बैल के संस्कृत नाम—बलीवर्द, वृषभ, ऋषभ, वृष, अनड्वान् (अनडुह), सौरभेय, गौः (गो), उक्षा (उक्षन्) तथा भद्र ये सब हैं। गौ के संस्कृत नाम—सुरभि, सौरभेयी, माहेयी तथा गौः (गो) ये सब कहे हुये हैं।

गोमांस—अत्यन्त गुरु, स्निग्ध, पित्त तथा कफ को बढ़ानेवाला, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), वात को दूर करने वाला, बलकारक, अस्वस्थों के लिये अपथ्य तथा पीनस रोग नाशक होता है ॥ ८४-८५ ॥

अथाश्वः (घोड़ा)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

घोटकेऽप्यश्वतुरगास्तुरङ्गमाश्च तुरङ्गाः। वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः॥ ८६॥
अश्वमांसन्तु तुवरं वह्निकृत्कफपित्तलम्। वातहृद् बृंहणं बल्यं चक्षुष्यं मधुरं लघु॥ ८७॥

घोड़े के संस्कृत नाम—घोटक, अश्व, तुरग, तुरङ्ग, तुरङ्गम, वाजि, वाह, अर्व (अर्वन्), गन्धर्व, हय, सैन्धव तथा सप्ति ये सब हैं।

घोड़े का मांस—कषाय तथा मधुर रस युक्त, अग्निकारक, कफ तथा पित्त को उत्पन्न करने वाला, वातनाशक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), बलकारक, नेत्रों के लिये हितकर तथा लघु होता है ॥ ८६-८७ ॥

अथ कूलेचराः। तत्रः महिषः (भैंसा)। तस्य नामानि मांसगुणांश्चाह

महिषो घोटकारिः स्यात्कासरश्च रजस्वलः॥ ८८॥
पीनस्कन्धः कृष्णकायो लुलायो यमवाहनः। महिषस्यामिषं स्वादु स्निग्धोष्णं वातनाशनम्॥
निद्राशुक्रप्रदं बल्यं तनुदार्ढ्यकरं गुरु। वृष्यञ्च सृष्टविण्मूत्रं वातपित्तास्रनाशनम्॥ ९०॥

कूलेचर संज्ञक पशुओं में भैंसा के संस्कृत नाम—महिष, घोटकारि, कासर, रजस्वल, पीनस्कन्ध, कृष्णकाय, लुलाय और यमवाहन ये सब हैं॥

भैंसे का मांस—स्वादिष्ट, स्निग्ध, उष्ण, वातनाशक, निद्रा तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला, बलकारक, शरीर को पुष्ट करने वाला, गुरु, वीर्यवर्धक, मूत्र तथा मल को निकालने वाला एवम् वातपित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ ८८-९० ॥

अथ मण्डूकः (मेंढक)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

मण्डूकः प्लवगो भेको वर्षाभूर्दर्दुरो हरिः। मण्डूकः श्लेष्मलो नातिपित्तलो बलकारकः॥९१॥

मेढक के संस्कृत नाम—मण्डूक, प्लवग, भेक, वर्षाभू, दर्दुर तथा हरि ये सब हैं।

मेढक का मांस—कफ पैदा करने वाला, अत्यन्त पित्तकारक नहीं (थोड़ा पित्तकारक), तथा बलकारक होता है ॥ ९१ ॥

अथ पादिनः। तत्र कच्छपः (कछुआ)। तस्य नामानि मांसगुणाँश्चाह

कच्छपो गूढपात्कूर्मः कमठो दृढपृष्ठकः। कच्छपो बलदो वातपित्तनुत्पुंस्त्वकारकः॥ ९२॥

कूलेचरों के अन्तर्गत पादी अर्थात् पांववाले जीवों में कछुये का संस्कृत नाम—कच्छप, गूढपाद, कूर्म, कमठ, तथा दृढपृष्ठक ये सब हैं।

कछुये का मांस—बलदायक, वात-पित्त को दूर करने वाला एवम् पुंस्त्व (मैथुनशक्ति) बढ़ाने वाला है ॥ ९२ ॥

अथ विशेषाः । तत्र सद्योहतस्य मांसगुणानाह

सद्योहतस्य मांसं स्याद्व्याधिघाति यथाऽमृतम् । वयस्यं बृंहणं सात्म्यमन्यथा तद् विवर्जयेत्॥

मांस विषयक विशेष बातों में तत्काल मारे गये जीवों के **मांस का गुण**—अमृत के समान व्याधि को दूर करने वाला, आयु को स्थिर करने वाला, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक) तथा हितकर होता है। यदि तत्काल का मारा हुआ जीव न हो तो उसका मांस नहीं खाना चाहिये ॥ ९३ ॥

अथ स्वयं मृतस्य मांसगुणानाह

स्वयं मृतस्य चाबल्यमतीसारकरं गुरु ॥ ९४ ॥

स्वयं मरे हुये जीवों का मांस—बलकारक नहीं होता है अर्थात् निर्बलता-कारक, अतीसार को उत्पन्न करने वाला तथा गुरु होता है ॥ ९४ ॥

अथ वृद्धबालयोर्मांसगुणानाह

वृद्धानां दोषलं मांसं बालानां बलदं लघु ॥ ९५ ॥

बुड्ढे जीवों का मांस—दोषों को बढ़ाने वाला होता है। **बच्चे जीवों का मांस**—बलकारक तथा लघु होता है ॥ ९५ ॥

अथ सर्पव्यालदष्टयोर्मांसयोः शुष्कमांसस्य च गुणानाह

सर्पदष्टस्य मांसञ्च शुष्कमांस त्रिदोषकृत् । त्रिदोषकृद् व्यालदष्टं शुष्कं शूलकरं परम् ॥ ९६ ॥

सर्प के काटने से मरे हुए जीवों का मांस—त्रिदोषकारक तथा उसी का सूखा मांस भी त्रिदोषकारक होता है। और हिंस्र जीव व्याघ्रादिकों से काटे हुये जीवों का मांस भी त्रिदोषकारक ही होता है किन्तु-सूखा मांस अत्यन्त शूलकारक होता है ॥ ९६ ॥

अथ विषादिमृतस्य मांसगुणानाह

विषाम्बुरुङ्मृतस्यैतन्मृत्युदोषरुजाकरम् ।
क्लिन्नमुत्क्लेशजनकं कृशं वातप्रकोपणम् । तोयपूर्णं शिराराजं मृतमप्सु त्रिदोषकृत् ॥ ९७ ॥

विष से, जल में डूब कर अथवा रोग से पीड़ित होकर मरे **जीवों का मांस**—मृत्युदायक, दोषकारक तथा रोगों को उत्पन्न करने वाला होता है। क्लिन्न (सड़ा गला) **मांस**—उत्क्लेश (वमन की इच्छा) को उत्पन्न करने वाला होता है। **कृश (दुर्बल) जीवों का मांस**—वायु को प्रकुपित करने वाला होता है। जल में मरे हुये **जीवों का मांस**—त्रिदोषकारक होता है क्योंकि उसकी जितनी शिरायें (नाड़ियां) होती हैं वे सब जल से पूर्ण रहती हैं ॥ ९७ ॥

अथ जात्यादिपरत्वेन मांसस्य गुणानाह

विहङ्गेषु पुमाञ्छ्रेष्ठः स्त्री चतुष्पदजातिषु ।
परार्द्धं लघु पुंसां स्यात्स्त्रीणां पूर्वार्द्धमादिशेत् । देहमध्यं गुरुप्रायं सर्वेषां प्राणिनां स्मृतम् ॥
पक्षोत्क्षेपाद्विहङ्गानां तदेव लघु कथ्यते । गुरूण्यण्डानि सर्वेषां गुर्वी ग्रीवा च पक्षिणाम् ॥९९॥

उरःस्कन्धोदरं कुक्षी पादौ पाणी कटी तथा । पृष्ठत्वग्यकृदन्त्राणि गुरूणीह यथोत्तरम् ॥१००॥
लघुवातकरं मांसं खगानां धान्यचारिणाम् । मत्स्याशिनां पित्तकरं वातघ्नं गुरु कीर्त्तितम्॥१०१॥
फलाशिनां श्लेष्मकरं लघु रूक्षमुदीरितम् । बृंहणं गुरु वातघ्नं तेषामेव पलाशिनाम् ॥१०२॥
तुल्यजातिष्वल्पदेहा महादेहेषु पूजिताः । अल्पदेहेषु शस्यन्ते तथैव स्थूलदेहिनाः ॥१०३ ॥

जीवों के जाति आदि की प्रधानता से मांस का गुण—जाति की प्रधानता—पक्षियों में पुरुष जाति के जीवों का मांस-श्रेष्ठ होता है तथा चौपायों (बकरा आदि) में स्त्री जाति के जीवों का मांस-श्रेष्ठ होता है। अङ्ग की प्रधानता—पुरुष संज्ञक जीवों के शरीर में नीचे भाग का मांस-लघु होता है। तथा स्त्रीसंज्ञक जीवों के ऊपरी भाग का मांस लघु होता है। सम्पूर्ण जीवों के शरीर में मध्य भाग का मांस—प्रायः करके गुरु होता है किन्तु पक्षियों का वही (मध्यभाग का मांस) पंखों के बराबर इधर उधर हिलाने से लघु होता है। सम्पूर्ण पक्षियों के अण्डे तथा गर्दन गुरु होते हैं। छाती, कन्धा, उदर, दोनों कोख, दोनों पैर, दोनों हाथ, कमर, पीठ, त्वचा, यकृत (जिगर) और आंत ये सब एक दूसरे की अपेक्षा उत्तरोत्तर गुरु होते हैं। भोजन की प्रधानता—धान्य भोजन करने वाले पक्षियों का मांस—लघु तथा वातकारक होता है। मछली भोजन करने वाले पक्षियों का मांस—पित्तकारक, वातनाशक तथा गुरु होता है। फलभोजी पक्षियों का मांस—कफकारक, लघु तथा रूक्ष होता है। मांसभोजी पक्षियों का मांस—बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), गुरु तथा वातनाशक होता है।

सजातीयों में शरीर की छुटाई बड़ाई की प्रधानता—समान जाति वाले जीवों में यदि में वे बड़े शरीर वाले हैं तो उनमें जो अपेक्षाकृत छोटे शरीरवाले हैं उनका मांस श्रेष्ठ होता है। एवम्—समान जाति के छोटे शरीरवाले जीवों में जो अपेक्षाकृत स्थूल शरीर वाले हैं उनका मांस—श्रेष्ठ होता है ॥ ९८-१०३ ॥

अथ मत्स्याः । तत्र रोहितः (रोहू) । तस्य लक्षणं मांसमुण्डयोर्गुणांश्चाह

रक्तोदरो रक्तमुखो रक्ताक्षो रक्तपक्षतिः । कृष्णपुच्छो झषः श्रेष्ठो रोहितः कथितो बुधैः ॥१०४॥
रोहितः सर्वमत्स्यानां वरो वृष्योऽर्दितार्त्तिजित् ।
कषायानुरसः स्वादुर्वातघ्नो नातिपित्तकृत् । ऊर्ध्वंजत्रुगतान् रोगान् हन्याद्रोहितमुण्डकम् ॥

मछलियों में रोहू मछली के लक्षण—जिस मछली का उदर, मुख, नेत्र तथा अगल बगल के छोटे छोटे पंख ये सब रक्तवर्ण के हों एवम्—पूंछ काली हो तो पण्डित लोग उसे "रोहू मछली" कहते हैं।

सम्पूर्ण मछलियों में रोहू नामक मछली ही श्रेष्ठ होती है। **रोहू का मांस**-वीर्यवर्धक अर्दित-वात (मुंह का लकवा) को दूर करने वाला, आरम्भ में स्वादिष्ट, अन्त में कषायरसयुक्त, वात-नाशक और अत्यन्त पित्तकारक नहीं (किञ्चित् पित्तकारक) होता है। **रोहू का मुण्ड**—जत्रु (कन्धा तथा कोंख की सन्धि) से ऊपर के भागों में होने वाले रोगों को दूर करने वाला होता है ॥ १०४-१०५ ॥

अथ शिलीन्ध्रः । तस्य मांसगुणानाह

शिलीन्ध्रः श्लेष्मलो बल्यो विपाके मधुरो गुरुः । वातपित्तहरो हृद्यः आमवातकरश्च सः ॥

शिलीन्ध्र मछली का मांस—कफकारक, बलदायक, विपाक में मधुर रसयुक्त, गुरु, वात-पित्तनाशक, हृदय के लिये हितकर तथा आमवात कारक होता है ॥ १०६ ॥

अथ भाकुरः । तस्य मांसगुणानाह

भाकुरो मधुरः शीतो वृष्यः श्लेष्मकरो गुरुः । विष्टम्भजनकश्चापि रक्तपित्तहरः स्मृतः ॥१०७॥

भाकुर मछली का मांस—मधुररसयुक्त, शीतल, वीर्यवर्धक, कफकारक, गुरु, विष्टम्भ उत्पन्न करने वाला तथा रक्तपित्त नाशक होता है ॥ १०७ ॥

अथ मोचिका । तस्यां मांसगुणानाह

मोचिका वातहृद् बल्या बृंहणी मधुरा गुरुः । पित्तहरकफकृद्रुच्या वृष्या दीप्ताग्नये हिता ॥

मोचिका मछली का मांस—वात को दूर करनेवाला, बलकारक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), मधुर रसयुक्त, गुरु, पित्तनाशक, कफकारक, रोचक, वीर्यवर्धक एवम् दीप्त अग्निवाले पुरुषों के लिये हितकर होता है ॥ १०८ ॥

अथ पाठीनः । तस्य मांसगुणानाह

पाठीनः श्लेष्मलो बल्यो निद्रालुः पिशिताशनः । दूषयेद्रुधिरं पित्तं कुष्ठरोगं करोति च ॥

पाठीन मछली का मांस—कफकारक, बलदायक, निद्रा को लाने वाला होता है। यह मछली मांस खाने वाली होती है अतः इसका मांस रुधिर को दूषित करने वाला एवम् पित्त तथा कुष्ठ रोग को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १०९ ॥

अथ शृङ्गी (सींगी)। तस्या मांसगुणानाह

शृङ्गी तु वातशमनी स्निग्धा श्लेष्मप्रकोपणी । रसे तिक्ता कषाया च लघ्वी रुच्या स्मृताबुधैः॥

शृङ्गी मछली का मांस—वायु को शमन करने वाला, स्निग्ध, कफ को प्रकुपित करने वाला, तिक्त तथा कषाय रस युक्त, लघु तथा रुचिकारक होता है ॥ ११० ॥

अथेल्लीसः (हिल्सा) । तस्य मांसगुणानाह

इल्लीसो मधुरः स्निग्धो रोचनो वह्निवर्द्धनः । पित्तहरकफकृत्किञ्चिल्लघुर्वृष्योऽनिलापहः ॥

हिल्सा मछली का मांस—मधुर रस युक्त, स्निग्ध, रोचक, अग्निवर्धक, पित्त को दूर करने वाला, कफकारक, किंचित लघु, वीर्यवर्धक तथा वायुनाशक होता है ॥ १११ ॥

अथ शष्कुली (सौरी) । तस्या मांसगुणानाह

शष्कुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा तुवरा स्मृता ॥ ११२ ॥

सौरी मछली का मांस—ग्राही, हृदय के लिये हितकर और मधुर तथा कषाय रस युक्त होता है ॥ ११२ ॥

अथ गर्गरः (गर्गरा) । तस्य मांसगुणानाह

गर्गरः पित्तलः किञ्चिद्वातजित्कफकोपनः ॥ ११३ ॥

गर्गरा मछली का मांस—पित्तजनक, किञ्चित् वातनाशक, एवम् कफ को कुपित करने वाला होता है ॥ ११३ ॥

अथ कविका । तस्या मांसगुणानाह

कविका मधुरा स्निग्धा कफघ्नी रुचिकारिणी ।
किञ्चित्पित्तकरी वातनाशिनी वह्निवर्द्धिनी ॥ ११४ ॥

कविका मछली का मांस—मधुर रस युक्त, स्निग्ध, कफनाशक, रुचिकारक, किञ्चित् पित्तकारक, वातनाशक एवम् जठराग्नि को बढ़ाने वाला होता है ॥ ११४ ॥

अथ वर्मिमत्स्यः (वर्मी) । तस्य मांसगुणानाह

वर्मिमत्स्यो हरेद्वातं पित्तं रुचिकरो लघुः ॥ ११५ ॥

वर्मी मछली का मांस—वात तथा पित्त को दूर करने वाला, रुचिकारक एवम् लघु होता है ॥ ११५ ॥

अथ दण्डमत्स्यः । तस्य मांसगुणानाह

दण्डमत्स्यो रसे तिक्तः पित्तरक्तं कफं हरेत् । वातसाधारणः प्रोक्तः शुक्रलो बलवर्द्धनः ॥११६॥

दण्ड मछली का मांस—तिक्त रस युक्त, पित्तरक्त तथा कफ को दूर करने वाला, वायु के लिये साधारण, शुक्रजनक तथा बलवर्द्धक होता है ॥ ११६ ॥

अथैरङ्गः । तस्य मांसगुणानाह

एरङ्गो मधुरः स्निग्धो विष्टम्भी शीतलो लघुः ॥ ११७ ॥

एरङ्ग मछली का मांस—मधुर रस युक्त, स्निग्ध, विष्टम्भ करने वाला, शीतल तथा लघु होता है ॥ ११७ ॥

अथ महाशफरः (पपता) । तस्य मांसगुणानाह

महाशफरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकफापहः । शिशिरो मधुरो रुच्यो वातसाधारणः स्मृतः ॥११८॥

महाशफरी मछली का मांस—तिक्त तथा मधुर रसयुक्त, पित्त तथा कफनाशक, शीतल, रुचिकारक एवम् वात के लिये साधारण होता है ॥ ११८ ॥

अथ गरघ्नी । तस्या मांसगुणानाह

गरघ्नी मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृत् । कफघ्नी रुचिकृल्लघ्वी दीपनी बलवीर्यकृत् ॥११९॥

गरघ्नी मछली का मांस—मधुर-तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, वात पित्त तथा कफ नाशक, रुचिकारक, लघु, अग्निदीपक एवम् बल तथा वीर्य को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ११९ ॥

अथ मद्गुरः । तस्य मांसगुणानाह

मद्गुरो वातहृद् बल्यो वृष्यः कफकरो लघुः ॥ १२० ॥

मद्गुर मछली का मांस—वातनाशक, बलकारक, वीर्यवर्धक, कफकारक एवम् लघु होता है ॥ १२० ॥

अथ सपादमत्स्यः (टेंगरा) । तस्य मांसगुणानाह

सपादमत्स्यो मेधाकृन्मेदःक्षयकरश्च सः । वातपित्तकरश्चापि रुचिकृत्परमो मतः ॥१२१॥

सपाद मछली का मांस—मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला, मेदोवृद्धि को दूर करनेवाला, वात तथा पित्तकारक एवं रुचि को अत्यन्त उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ १२१ ॥

अथ प्रोष्ठी । तस्या मांसगुणानाह

प्रोष्ठी तिक्ता कटुः स्वादुः शुक्रदा कफवातजित् ।
स्निग्धाऽऽस्यकण्ठरोगघ्नी रोचनी च लघुः स्मृता ॥ १२२ ॥

प्रोष्ठी मछली का मांस—तिक्त तथा कटुरस युक्त, स्वादिष्ट, शुक्रजनक, कफ तथा वात नाशक, स्निग्ध, मुख और कण्ठ सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला, रोचक एवम् लघु होता है ॥

अथ क्षुद्रमत्स्याः । तेषां मांसगुणानाह

क्षुद्रमत्स्याः स्वादुरसा दोषत्रयविनाशनाः । लघुपाका रुचिकरा बलदास्ते हिता मताः ॥

छोटी मछलियों का मांस—स्वादिष्ट, त्रिदोष नाशक, विपाक में लघु, रुचिकारक तथा बलदायक होता है ॥ १२३ ॥

अथातिक्षुद्रमत्स्याः । तेषां मांसगुणानाह

अतिसूक्ष्माः पुंस्त्वहरा रुच्याः कासानिलापहाः ॥ १२४ ॥

अत्यन्त छोटी मछलियों का मांस—पुंस्त्व (रमण करने की शक्ति) को दूर करनेवाला, रुचिकारक एवम् खांसी तथा वायु को दूर करने वाला होता है ॥ १२४ ॥

अथ मत्स्यगर्भः (मत्स्याण्डः) । तस्य गुणानाह

मत्स्यगर्भो भृशं वृष्यः स्निग्धः पुष्टिकरो लघुः । कफमेदःप्रदो बल्यो ग्लानिकृन्मेहनाशनः ॥

मछली के अण्डे—अत्यन्त वीर्यवर्धक, स्निग्ध, पुष्टिकारक, लघु, कफ तथा मेदा को बढ़ानेवाले, बलकारक, ग्लानि उत्पन्न करनेवाले एवम् प्रमेह को नष्ट करने वाले होते हैं ॥ १२५ ॥

अथ शुष्कमत्स्याः (सूखी मछली) । तेषां मांसगुणानाह

शुष्कमत्स्या नवा बल्या दुर्जरा विड्विबन्धिनः ॥ १२६ ॥

सूखी मछलियां—ये यदि नई हों तो बलकारक, देर में हजम होनेवाली, एवम् मल का विबन्ध करने वाली होती है ॥ १२६ ॥

अथ दग्धमत्स्यः (भूंजी मछली) । तस्य मांसगुणानाह

दग्धमत्स्यो गुणैः श्रेष्ठः पुष्टिकृद् बलवर्द्धनः ॥ १२७ ॥

भूंजी मछली—गुणों में श्रेष्ठ, पुष्टिकारक तथा बलको बढ़ाने वाली होती है ॥ १२७ ॥

अथ कूपजादिमत्स्याः । तेषां मांसगुणानाह

कौपमत्स्याः शुक्रमूत्रकुष्ठश्लेष्मविवर्द्धनाः । सरोजा मधुराः स्निग्धा बल्या वातविनाशनाः ॥
नादेया बृंहणा मत्स्या गुरवोऽनिलनाशनाः । रक्तपित्तकरा वृष्याः स्निग्धोष्णाः स्वल्पवर्चसः ॥
चौण्ड्याः पित्तकराः स्निग्धा मधुरा लघवो हिमाः । तडागा गुरवो वृष्याः शीतला मलमूत्रलाः ॥
ताडागवन्निर्झरजा बलायुर्मतिदृष्टिदाः ॥ १२८ ॥

कुयें में रहने वाली मछलियों का मांस—शुक्र, मूत्र, कुष्ठ तथा कफ को बढ़ानेवाला होता है ।

सरोवर में रहनेवाली मछलियों का मांस—मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, बलकारक तथा वायु को नष्ट करने वाला होता है ।

नदियों में रहने वाली मछलियों का मांस—बृंहण (रस—रक्तादिवर्धक), गुरु, वातनाशक, रक्तपित्तकारक, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, उष्ण एवं स्वल्प मात्रा में मल को निकालने वाला होता है ।

चौंढा या हौज में रहने वाली मछलियों का मांस—पित्तकारक, स्निग्ध, मधुर रसयुक्त, लघु तथा शीतल होता है ।

तालाब की मछलियों का मांस—गुरु, वीर्यवर्धक, शीतल, मल तथा मूत्र को निकालने वाला होता है ।

झरनों में रहनेवाली मछलियों का मांस—गुणों में तालाबों में रहनेवाली मछलियों के समान ही होता है किन्तु विशेष करके बल, आयु, बुद्धि तथा दृष्टि शक्ति को बढ़ानेवाला होता है ॥ १२४ ॥

अथर्त्तुविशेषे मत्स्यविशेषाणां मांसगुणानाह

हेमन्ते कूपजा मत्स्याः शिशिरे सारसा हिताः । वसन्ते ते तु नादेया ग्रीष्मे चौण्ड्यसमुद्भवाः ॥
तडागजाता वर्षासु सारसपथ्या नदीभवाः । नैर्झरा शरदि श्रेष्ठा विशेषोऽयमुदाहृतः ॥१२९॥

विशेष २ ऋतुओं में विशेष २ मछलियों के मांस का गुण—हेमन्त ऋतु (अगहन-पूसमास) में-कूप में रहने वाली मछलियों का मांस; शिशिर ऋतु (माघ-फागुनमास) में—सरोवर में रहनेवाली मछलियों का मांस; वसन्त ऋतु (चैत-वैशाख मास) में—नदीमें रहने वाली मछलियों का मांस और ग्रीष्म ऋतु (जेठ-आषाढ़ मास) में-चौंढ़ा या हौज की मछलियों का मांस हितकर होता है । वर्षा ऋतु (सावन-भादो मास) में-तालाब की मछलियों का मांस-हितकर और नदी की मछलियों का मांस अपथ्य (अहितकर) होता है । शरद् ऋतु (क्वार-कातिक मास) में—झरनों की मछलियों का मांस—उत्तम होता है । इस प्रकार से मछलियों के मांस के सम्बन्ध में जो विशेषतायें थीं उनका वर्णन कर दिया गया है ॥ १२९ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे
मिश्रप्रकरणे एकादशो मांसवर्गः समाप्तः ॥

अथ द्वादशः कृतान्नवर्गः

तत्रान्नानां साधनप्रकारान् सिद्धानां गुणाँश्चाह । तत्र परिभाषामाह

समवायिनि हेतौ ये मुनिभिर्गणिता गुणाः । कार्येऽपि तेऽखिलाज्ञेयाः परिभाषेति भाषिताः ॥
क्वचित्संस्कारभेदेन गुणभेदो भवेद्यतः । भक्तं लघु पुराणस्य शालेस्तच्चिपिटो गुरुः ॥ २ ॥
क्वचिद्योगप्रभावेण गुणान्तरमपेक्षते । कदन्नं गुरु सर्पिश्च तद्युक्तं सुपचं भवेत् ॥ ३ ॥

अब इस कृतान्न वर्ग में अन्नों को सिद्ध करने का प्रकार तथा सिद्ध हुये अन्नों का गुण कहते हैं। उसमें प्रथम परिभाषायें कहते हैं—

परिभाषा—समवायिकरण (अन्नादि द्रव्यों) में जो गुण मुनियों ने गिनाये हैं वे सभी गुण, कार्य अन्नादि द्रव्यों से बने हुये पदार्थ भात आदि में भी होते हैं ऐसा समझना चाहिये। यह परिभाषा सामान्यरूप से मुनियों ने कही है। किन्तु कहीं कहीं संस्कार भेद से गुण में भी भेद हो जाता है अर्थात् समवायिकारण का गुण कार्य में पूर्ण रूप से नहीं आता है। जैसे कि—पुराने शालि (जड़हन) चावल का भात हलका होता है किन्तु उसी (जड़हन) का चिउड़ा गुरु होता है। यहाँ पर संस्कार भेद से गुण में भेद हुआ है। और कहीं-कहीं संयोग के प्रभाव से भी गुणों में अन्तर पड़ जाता है। जैसे-पृथक् २ स्वयं कदन्न (खराब अन्न) तथा घी दोनों ही गुरु होते हैं किन्तु यदि इन दोनों का संयोग हो जाय तो जल्दी हजम होने वाले हो जाते हैं। यहाँ पर परस्पर संयोग के प्रभाव से गुण में अन्तर हुआ है ॥ १–३ ॥

अथ भक्तम् (भात) । तस्य नामानि साधनं गुणाँश्चाह

भक्तमन्नं तथाऽन्धश्च क्वचित्कूरं च कीर्त्तितम् । ओदनोऽस्त्री स्त्रियां भिस्सा दीदिविः पुंसि भाषितः ॥
सुधौतांस्तण्डुलान् स्फीतांस्तोये पञ्चगुणे पचेत् । तदुक्तं प्रस्रुतं चोष्णं विशदं गुणवन्मतम् ॥
भक्तं वह्निकरं पथ्यं तर्पणं रोचनं लघु । अधौतमस्रुतं शीतं गुर्वरुच्यं कफप्रदम् ॥ ६ ॥

भात के संस्कृत नाम–भक्त, अन्न, अन्ध (अन्धस्), कूर (कहीं २ यह भात का नाम कहा है), ओदन (यह स्त्रीलिङ्ग को छोड़ कर शेष लिंगों में होता है), भिस्सा (यह केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है) और दीदिवि (यह केवल पुँलिङ्ग में होता है) ये सब हैं।

निर्माणविधि—प्रथम चावलों को उत्तम रीति से धो डाले, पश्चात् कुछ क्षण के बाद जब वह कुछ फूल जाय तब उसे ५ गुने जल में पकावे। सिद्ध होने पर उतार कर उसीमें से मांड़ निकाल लेवे, यह मांड़ निकाला हुआ गरम भात विशद गुणयुक्त अत्यन्त गुणकारी होता है।

भात—अग्निकारक, पथ्य, संतर्पण करने वाला, रोचक तथा लघु होता है। यदि यही भात बिना धोये तथा मांड़ निकाले ही सिद्ध किया हुआ हो एवं शीतल हो तो गुरु, अरुचि उत्पन्न करने वाला तथा कफकारक होता है ॥ ४–६ ॥

अथ दाली (दाल) । तस्या नामानि साधनगुणांश्चाह

दलितन्तु शमीधान्यं दालिर्दाली स्त्रियामुभे । दाली तु सलिले सिद्धा लवणार्द्रकहिङ्गुभिः ॥
संयुक्ता सूपनाम्नी स्यात्कथ्यन्ते तद्गुणा अथ । सूपो विष्टम्भको रूक्षः शीतस्तु स विशेषतः ।
निस्तुषो भृष्टसंसिद्धो लाघवं सुतरां व्रजेत् ॥ ८ ॥

दाल के लक्षण—शमीधान्य (मूंग, उरद, अरहर आदि) को दल देने से दाल बनती है। संस्कृत नाम—दालि और दाली ये दो हैं। ये दोनों शब्द स्त्रीलिङ्गी हैं।

निर्माण विधि—दाल को जल में पकावे और उसमें सेंधानमक, अदरक तथा हींग आवश्यकतानुसार डाल दे तो उस सिद्ध हुई दाल को संस्कृत में "सूप" कहते हैं।

सूप (दाल)—विष्टम्भकारक, रूक्ष तथा विशेषतः शीतल होती है और यही दाल यदि प्रथम भून कर छिल्का निकाल कर पश्चात् बनाई जाय तो अत्यन्त लघु होती है ॥ ७–८ ॥

अथ कृशरा (खिचड़ी) । तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

तण्डुला दालिसंमिश्रा लवणार्द्रकहिङ्गुभिः । संयुक्ताः सलिले सिद्धाः कृशरा कथिता बुधैः ॥
कृशरा शुक्रला बल्या गुरुः पित्तकफप्रदा । दुर्जरा बुद्धिविष्टम्भमलमूत्रकरी स्मृता ॥ १० ॥

खिचड़ी बनाने की विधि—चावलों में बराबर की दाल मिलाकर यदि जल में पकाई जाय और उसमें आवश्यकतानुसार सेंधा निमक, अदरख तथा हींग डाल दिया जाय तो सिद्ध होने पर उसे पण्डित लोग संस्कृत में 'कृशरा' कहते हैं।

खिचड़ी—शुक्रजनक, बलकारक, गुरु, पित्त तथा कफकारक, देर में हजम होने वाली एवम् बुद्धि बढ़ाने वाली, विष्टम्भ करने वाली तथा मल एवं मूत्र को कराने वाली होती है ॥९–१०॥

अथ तापहरी । तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

घृते हरिद्रासंयुक्ते माषजा भर्जयेद्वटीम् ॥ ११ ॥
तण्डुलांश्चापि निर्धौतान्सहैव परिभर्जयेत् । सिद्धयोग्यं जलं तत्र प्रक्षिप्य कुशलः पचेत् ॥
लवणार्द्रकहिङ्गूनि मात्रया तत्र निक्षिपेत् । एषा सिद्धिं समायाता प्रोक्ता तापहरी बुधैः ॥
भवेत्तापहरी बल्या वृष्या श्लेष्माणमाचरेत् । बृंहणी तर्पणी रुच्या गुर्वी पित्तहरी स्मृता ॥

तापहरी बनाने की विधि—प्रथम उरद को पीस कर उसकी बरी बनाले, पश्चात् उसे हल्दी पड़े हुये घी में खूब भूने और उसी के साथ ही साथ धुले हुये चावलों को भी भूने। पश्चात् उसमें पक जाने योग्य जल डाल कर चतुरता के साथ पकावे और उसमें आवश्यकतानुसार सेंधा निमक, अदरख तथा हींग डाल दे। जब सिद्ध हो जाय तो उतार ले, इसी को पण्डित लोग "तापहरी" कहते हैं। तापहरी—बलकारक, वीर्यवर्धक, कफकारक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), संतर्पण कारक, रोचक, गुरु तथा पित्तनाशक होती है ॥ ११—१४ ॥

अथ क्षीरिका (खीर) । तस्या नामानि साधनं गुणाँश्चाह

पायसं परमान्नं स्यात्क्षीरिकाऽपि तदुच्यते । शुद्धेऽर्द्धपक्वे दुग्धे तु घृताक्तांस्तण्डुलान्पचेत् ॥
ते सिद्धाः क्षीरिका ख्याता ससिताऽऽज्ययुतोत्तमा ।
क्षीरिका दुर्जरा प्रोक्ता बृंहणी बलवर्द्धिनी ॥
विष्टम्भिनी हरेत् पित्तं रक्तपित्ताग्निमारुतान् ॥ १६ ॥

खीर के संस्कृत नाम—पायस, परमान्न तथा क्षीरिका ये सब हैं।

निर्माणविधि—शुद्ध आधे औटाये हुये दूध में प्रथम घी में भुजे हुये चावलों को डालकर पकावे और उसमें चीनी (शक्कर) तथा घी भी उचित मात्रा में डाल दे, पश्चात् सिद्ध होने पर उतार ले इसी को क्षीरिका (खीर) कहते हैं।

खीर—देर में हजम होने वाली, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), बल बढ़ाने वाली, विष्टम्भ करने वाली एवम्—पित्त, रक्तपित्त तथा वायु को दूर करने वाली और अग्नि को मन्द करने वाली होती है ॥ १५-१६ ॥

अथ नारिकेरक्षीरी (नारियल की खीर)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

नारिकेरं तनूकृत्य छिन्नं पयसि गोः क्षिपेत्। सिताज्याज्यसंयुक्ते तत्पचेन्मृदुनाऽग्निना ॥
नारिकेरोद्भवा क्षीरी स्निग्धा शीताऽतिपुष्टिदा। गुर्वी सुमधुरा वृष्या रक्तपित्तानिलापहा ॥

नारिकेरक्षीरी (नारियल की खीर) बनाने की विधि—नारियल को छीलकर उसकी गिरी के छोटे २ टुकड़ों को साफ चीनी (शक्कर) तथा गाय के घी के साथ उचित मात्रा में दूध में डाल कर मन्द अग्नि से धीरे २ पकावे। जब सिद्ध हो जाय तब उतार ले। इसी को नारियल की खीर कहते हैं। **नारियल की खीर**—स्निग्ध, शीतल, अत्यन्त पुष्टिकारक, गुरु, मधुर, वीर्यवर्धक एवम्—रक्तपित्त तथा वायु को नष्ट करने वाली होती है ॥१६—१८॥

अथ सेविका (सेमई)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

समितावर्त्तिकाः कृत्वा सुसूक्ष्मा यवसन्निभाः। शुष्काः क्षीरेण संसाध्या भोज्या घृतसिताऽन्विताः॥
सेविका तर्पणी बल्या गुर्वी पित्तानिलापहा। ग्राहिणी सन्धिकृद्रुच्या तां खादेन्नातिमात्रया ॥

सेमई बनाने की विधि—मैदा की अत्यन्त पतली २ यव के समान बत्ती बना करके सुखावे। पश्चात् इसे दूध में पकावे और घी तथा चीनी मिलाकर भोजन करे।

सेमई—तृप्तिकारक, बलदायक, गुरु, ग्राही, भग्न सन्धानकारक (टूटी हुई हड्डियों को अथवा उखड़ी हुई सन्धियों को जोड़ने वाली), रुचिकारक, एवम् पित्त तथा वायु को नष्ट करने वाली होती है। किन्तु इसे अधिक मात्रा में नहीं खाना चाहिये ॥ १९—२० ॥

अथ समिता (मैदा)। तस्याः साधनमाह

गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोषितास्ततः। प्रोक्षिता यन्त्रनिष्पिष्टाश्चालिताः समिताः स्मृताः॥

मैदा बनाने की विधि—प्रथम सफेद गेहूं लेकर उसे धो डाले और ओखली में कूट कर सुखा डाले। पश्चात् फटक कर खूब महीन जाता में पिसवाकर बारीक चलनी या पतले कपड़े में रखकर चलवा डाले। इसी आटा को मैदा कहते हैं ॥ २१ ॥

अथ मण्डकः (मण्डा)। तस्य साधनमाह

वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत्। हस्तचालनया तस्याः लोप्त्रीं सम्यक्प्रसारयेत् ॥
अधोमुखघटस्यैतद्विस्तृतं प्रक्षिपेद् बहिः। मृदुना वह्निना साध्याः सिद्धो मण्डक उच्यते ॥

मण्डा बनाने की विधि—मैदा को जल से अच्छी तरह माड़ कर मुलायम कर ले, पश्चात् उसकी लोई बनाकर उसे हाथ से बढ़ा २ कर रोटी के समान करले, पुनः उसे औंधे मुख वाले घड़ा के पेंदी पर रखकर मन्द आंच से पकावे, जब सिद्ध हो जाय तब उतार ले, इसी को मण्डक (मण्डा) करते हैं ॥ २२-२३ ॥

लोप्त्री (लोई) इति लोके ॥ २२-२३ ॥
यहां पर मूल में "लोप्त्री" पद से लोक में प्रसिद्ध "लोई" का ग्रहण करना चाहिये ॥२२-२३॥

अथ सानुपानं मण्डकगुणानाह

दुग्धेन साज्यखण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः। अथवा सिद्धमांसेन सतक्रवटकेन वा ॥ २४ ॥
मण्डको बृंहणो वृष्यो बल्यो रुचिकरो भृशम्। पाकेऽपि मधुरो ग्राही लघुर्दोषत्रयापहः ॥

अनुपान के सहित मण्डा के गुण—अनुपान—मनुष्य को चाहिये कि मण्डा को घी और खांड़-मिले हुये दूध के साथ अथवा पकाये हुए मांस के साथ या दही बड़े के साथ खावे ॥

मण्डा—बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), वीर्यवर्धक, बलकारक, अत्यन्त रोचक, विपाक में मधुर रस युक्त, ग्राही, लघु एवम् त्रिदोषनाशक होता है ॥ २४-२५ ॥

अथ पोलिका (मैदे की रोटी)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

कुर्यात्समितयाऽतीव तन्वीं पर्पटिकां ततः ॥ २६ ॥
स्वेदयेत्तप्तके तां तु पोलिकां जगदुर्बुधाः। तां खादेल्लप्सिकायुक्तां तस्या मण्डकवद् गुणाः ॥

पोलिका (रोटी) के बनाने की विधि—मैदा को गूंद कर उसकी अत्यन्त पतली पापड़ के समान रोटी बना ले, पश्चात् उसे तवे पर रख कर सेंक डाले, सिद्ध हो जाने पर इसे पण्डित लोग पोलिका कहते हैं।

अनुपान—इसे लप्सी के साथ खाना चाहिये।

पोलिका—इसके गुण पूर्वोक्त मण्डा के समान होते हैं ॥ २६—२७ ॥

अथ लप्सिका (लप्सी)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

समितां सर्पिषा भृष्टां शर्करां पयसि क्षिपेत्। तस्मिन्घनीकृते न्यस्येल्लवङ्गं मरिचादिकम्।
सिद्धैषा लप्सिका ख्याता गुणानस्या वदाम्यहम् ॥ २८ ॥
लप्सिका बृंहणी वृष्या बल्या पित्तानिलापहा। स्निग्धा श्लेष्मकरी गुर्वी रोचनी तर्पणी परम्॥

लप्सी बनाने की विधि—प्रथम मैदा को लेकर घी में भून डाले पश्चात् मात्राऽनुसार शक्कर के साथ पानी में डालकर पकावे, जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें लौंग, मरिच आदि डाल कर उतार ले। इसी को "लप्सी" कहते हैं।

लप्सी—बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वीर्यवर्धक, बलदायक, स्निग्ध, कफकारक, गुरु, रोचक, अत्यन्त तृप्तिकारक एवम् पित्त तथा वायुनाशक होती है ॥ २८-२९ ॥

अथ रोटिका (रोटी)। तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

शुष्कगोधूमचूर्णेन किञ्चित्पुष्टाश्च पोलिकाः ॥ ३० ॥
तप्तके स्वेदयेत्कृत्वा भूयोऽङ्गारेऽपि तां पचेत्। सिद्धैषा रोटिका प्रोक्ता गुणानस्याः प्रचक्ष्महे॥३१॥
रोटिका बलकृद्रुच्या बृंहणी धातुवर्द्धनी। वातघ्नी कफकृद् गुर्वी दीप्ताग्नीनां प्रपूजिता॥३२॥

रोटी बनाने की विधि—सूखे गेहूं के आटे को जल से खूब गूंधकर उस सूखे आटा का पलोथन लगा २ कर पूर्वोक्त पूरी से कुछ मोटी रोटी बेलकर बनाले पश्चात् उसे तवा पर रख कर मामूली तरह से सेक कर पुनः बहुत से अँगारों पर रखकर पका ले, जब वह सिद्ध हो जाय तब उसे रोटी कहते हैं। रोटी—बलकारक, रुचिजनक, बृंहण, धातुवर्धक वातनाशक, कफकारक तथा गुरु होती है। यह प्रदीप्त अग्निवालों के लिये उत्तम होती है ॥ ३०-३२ ॥

तप्तकं="तावा" इति लोके ॥ ३०-३२ ॥
यहां पर मूल में "तप्तक" से "तावा" का बोध करना चाहिये ॥ ३०-३२ ॥

अथाङ्गारकर्कटी (बाटी) । तस्याः साधनं गुणांश्चाह

शुष्कगोधूमचूर्णन्तु साम्बु गाढं विमर्दयेत् । विधाय वटकाकारं निर्धूमेऽग्नौ शनैः पचेत ॥३३॥
अङ्गारकर्कटी ज्ञेया बृंहणी शुक्रला लघुः । दीपनी कफकृद्बल्या पीनसश्वासकासजित् ॥ ३४ ॥

बाटी बनाने की विधि—सूखे गेहूं के आटे में जल डाल कर खूब कड़ा मांड कर उसकी गोलाकार कुछ चिपटी लोई बना के पश्चात् उसे निर्धूम आग पर धीरे २ खूब सेंक ले, यही तैयार हो जाने पर बाटी कहलाती है । बाटी—बृंहण (रस—रक्तादिवर्धक), शुक्रजनन, लघु, अग्निदीपक, कफकारक, बलदायक एवम्—पीनस, श्वास तथा खांसी को दूर करने वाली होती है ॥ ३३–३४ ॥

अथ यवरोटिका । तस्या गुणानाह

यवजा रोटिका रुच्या मधुरा विशदा लघुः । मलशुक्रानिलकरी बल्या हन्ति कफामयान् ॥३५॥

जौ की रोटी—रुचिकारक, मधुररसयुक्त, विशद गुण वाली, लघु, मल, शुक्र, वायु तथा बल को करने वाली एवम् कफ सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाली होती है ॥ ३५ ॥

अथ बलभद्रिका(चमसीरोटिका) (छिल्केदार उरद की रोटी) । तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

चूर्णं यच्छुष्कमाषाणां चमसी साऽभिधीयते ।
चमसीरचिता रोटी कथ्यते बलभद्रिका । रूक्षोष्णा वातला बल्या दीप्ताग्नीनां सुपूजिता ॥

चमसी बनाने की विधि—सूखे उरद को पीस कर जो चूर्ण (आटा) तैयार होता है उसे चमसी कहते हैं ।

चमसी की बनी हुई रोटी का संस्कृत नाम—बलभद्रिका है । चमसी की रोटी–रूक्ष, उष्ण, वायु को उत्पन्न करने वाली, बलकारक, एवम् प्रदीप्त अग्नि वालों के लिये अत्यन्त उत्तम होती है ॥ ३६ ॥

अथ धूमसी (धुआँस) । तस्याः साधनविधिमाह

माषाणां दालयस्तोये स्थापितास्त्यक्तकञ्चुकाः । आतपे शोषिता यन्त्रे पिष्टास्ता धूमसी स्मृता ॥

धुआंस बनाने की विधि—उरद की दाल को प्रथम जल में भिगो दे, पश्चात् उसके छिलके को निकाल कर उसे धूप में डाल दे, जब सूख जाय तब चक्की में पीस कर आँटा तैयार कर ले, इसी को धुआंस कहते हैं ॥ ३७ ॥

अथ झर्झरी । तस्याः साधनं गुणाँश्चाह

धूमसीरचिता चैव प्रोक्ता झर्झरिका बुधैः । झर्झरी कफपित्तघ्नी किञ्चिद्वातकरी स्मृता ॥३८॥

झर्झरी (धुआंस की रोटी) बनाने की विधि—धुआंस को गूंथ कर जो रोटी बनायी जाती है उसे संस्कृत में "झर्झरी" कहते हैं । झर्झरी—कफ तथा पित्त नाशक एवम् किंचित् वातकारक होती है ॥ ३८ ॥

अथ चणकरोटिका (चने की रोटी) । तस्या गुणानाह

चणकजा रोटिका रूक्षा श्लेष्मपित्तास्रनुद्गुरुः । विष्टम्भिनी न चक्षुष्या तद्गुणा चापि शष्कुली॥

चने की रोटी—चने के आटे की जो रोटी बनाई जाती हैं, वह—रूक्ष, गुरु, विष्टम्भ करने

वाली, नेत्रों के लिये हित न करने वाली, एवम्—कफ पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है ।

चने की पूड़ी—यह भी गुणों में चने की रोटी के समान ही होती है ॥ ३९ ॥

अथ पिष्टिका (पीठी) । तस्या निर्माणप्रकारमाह

दालिः संस्थापिता तोये ततोऽपहृतकञ्चुका । शिलायां साधु सम्पिष्टा पिष्टिका कथिता बुधैः ॥

पीठी बनाने की विधि—हर एक प्रकार के दाल को जल के भिगोने के बाद उसके छिलके को अलग कर के सिल पर अच्छी तरह से पीस देने से पीठी तैयार होती है । इसी को संस्कृत में पण्डित लोग "पिष्टिका" कहते हैं ॥ ४० ॥

अथ बेढमिका (बेढई) । तस्याः साधनं गुणांश्चाह

माषपिष्टिकया पूर्णगर्भा गोधूमचूर्णतः । रचिता रोटिका सैव प्रोक्ता बेढमिका बुधैः ॥ ४१ ॥
भवेद्बेढमिका बल्या वृष्या रुच्याऽनिलापहा । उष्णा सन्तर्पणी गुर्वी बृंहणी शुक्रला परम् ॥
भिन्नमूत्रमला स्तन्यमेदःपित्तकफप्रदा । गुदकीलार्दितश्वासपक्तिशूलानि नाशयेत् ॥ ४२ ॥

बेढ़ई बनाने की विधि—गेहूं के आटे को गूंथकर उसके लोई के अन्दर उरद की पीठी भर कर जो रोटी बनाई जाती है उसी को पण्डित लोग संस्कृत में 'बेढमिका' कहते हैं ।

बेढ़ई—बलदायक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक, वातनाशक, उष्ण, सन्तर्पण कारक, गुरु, बृंहण (रस–रक्तादिवर्धक), अत्यन्त शुक्रजनक, मूत्र तथा मल का भेदन करने वाली, दुग्धवर्धक, मेद, पित्त तथा कफ कारक एवम् गुदकील, अर्दित वात (मुंह का लकवा), श्वास तथा परिणामशूल को नष्ट करने वाली है ॥ ४१–४२ ॥

अथ पर्पटः (पापड़) । तत्र माषोद्भवस्य तस्य साधनं गुणांश्चाह

धूमसीरचिता हिङ्गुहरिद्रालवणैर्युताः । जीरकस्वर्जिकाभ्याञ्च तनूकृत्य च वेल्लिताः ॥ ४४ ॥
पर्पटास्ते सदाऽङ्गारभृष्टाः परमरोचकाः । दीपनाः पाचनाः रूक्षा गुरवः किञ्चिदीरिताः ॥४५॥

पापड़ बनाने की विधि—धुआंस को जल के साथ भली-भांति गूंथकर उसमें मात्राऽनुसार हींग, हरदी, सेंधा नमक, जीरा और सज्जीखार डाल कर लोई बनावे और उसे बेलन से पतला बेल कर रोटी के समान बना ले, इसी को पर्पट (पापड़) कहते हैं । उक्त पापड़—सदा आग पर भूंज कर खाने से अत्यन्त रोचक, अग्निदीपक, पाचक, रूक्ष, तथा किंचित् गुरु होते हैं ॥४४-४५॥

अथ मुद्ग–चणकोद्भव–स्नेहभृष्टानां पर्पटानां गुणानाह

मौद्गाश्च तद्गुणाः प्रोक्ता विशेषाल्लघवो हिताः ॥ ४६ ॥
चणकस्य गुणैर्युक्ताः पर्पटाश्चणकोद्भवाः । स्नेहभृष्टास्तु ते सर्वे भवेयुर्मध्यमा गुणैः ॥ ४७ ॥

मूंग के पापड़—यद्यपि गुणों से उड़द के पापड़ के समान होते हैं तथापि विशेष कर यह लघु तथा हितकर होते हैं ।

चने के बने हुए पापड़—गुणों में चने के समान ही होते हैं ।

स्नेह (तैल आदि) में भुने हुए सभी पापड़—पूर्वोक्त अपने २ गुणों की अपेक्षा मध्यम गुण वाले होते हैं । अर्थात् जो उरद–मूंग आदि के पापड़ों के गुण कहे हुये हैं उनकी अपेक्षा इस में न्यून गुण होते है ॥ ४६–४७ ॥

अथ पूरिका तैलपक्वा घृतपक्वा च (तेल व घी में पकी हुई कचौरी)। तयोः साधनं गुणांश्चाह

**माषाणां पिष्टिकां पूर्वाद्लवणार्द्रकहिङ्गुभिः । तया पिष्टिकया पूर्णा समिता कृतपोलिका ॥४८॥
ततस्तैलेन पक्वा सा पूरिका कथिता बुधैः । रुच्या स्वादी गुरुः स्निग्धा बल्या पित्तास्रदूषिका ॥
चक्षुस्तेजोहरी चोष्णा पाके वातविनाशिनी । तथैव घृतपक्वाऽपि चक्षुष्या रक्तपित्तहृत् ॥५०॥**

तेल की पूरी बनाने की विधि—उरद की पीठी में मात्रानुसार सेंधानिमक, अदरक तथा हींग डालकर उसे मैदा की लोई के अन्दर रख कर उस को बेलकर बारीक रोटी बना ले, उसके बाद उसे तेल में पका डाले, सिद्ध होने पर उसी को पण्डित लोग संस्कृत में पूरिका कहते हैं। **तेल की कचौरी**—रुचिकारक, स्वादिष्ट, गुरु, स्निग्ध, बलकारक, पित्त तथा रक्त को दूषित करने वाली, नेत्रों के तेज को हरण करने वाली, पाक में उष्ण एवम् वातनाशक होती है।

घी की **कचौरी**—यह भी गुणों में उक्त कचौरी के समान ही होती है किन्तु विशेषकर नेत्रों के लिये हितकर तथा रक्तपित्त-नाशक होती है ॥ ४८–५० ॥

अथ वटकः शुष्कः सरसश्च (सूखा व रसदार बरा)। तयोः साधनं गुणांश्चाह

**माषाणां पिष्टिकां युक्तां लवणार्द्रकहिङ्गुभिः । कृत्वा विदध्याद्वटकांस्तांस्तैलेषु पचेच्छनैः ॥५१॥
विशुष्का वटका बल्या बृंहणा वीर्य्यवर्द्धनाः । वातामयहरा रुच्या विशेषादर्दितापहाः ॥५२॥
विबन्धभेदिनः श्लेष्मकारिणोऽत्यग्निपूजिताः । संचूर्ण्य निक्षिपेत्तक्रे भृष्टं जीरकहिङ्गु च ॥५३॥
लवणं तत्र वटकान्सकलानपि मज्जयेत् । शुक्रलस्तत्र वटको बलकृद्रोचनो गुरुः ॥ ५४ ॥
विबन्धहृद्विदाही च श्लेष्मलः पवनापहः । राज्यक्तयाऽतिरोचन्या पाचन्या तांस्तु भक्षयेत् ॥**

उरद का सूखा बरा बनाने की विधि—उरद की पीठी में मात्रानुसार सेंधानिमक, अदरक, तथा हींग डालकर खूब फेंटकर उसकी बड़ी २ गोली बनाले, पश्चात तेल में डालकर धीरे २ मन्द आंच से पकावे. जब सिद्ध हो जाय तब उतार ले, यही सूखा बरा कहलाता है।

उरद का सूखा बरा—बलकारक, बृंहण, वीर्यवर्धक, वात सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला, रुचिकारक, विशेष करके अर्दितवात (मुंहके लकवे) को दूर करने वाला, विबन्धनाशक, कफकारक एवम् अत्यन्त दीप्त अग्नि वालों के लिये उत्तम होता है।

रसदार बरा बनाने की विधि-भूना हुआ जीरा तथा हींग का चूर्ण और सेंधानिमक तक्र (मट्ठा) में डालकर उसी में सूखे बरे को डुबो देने से वे ही रसदार बरे कहलाते हैं।

रसदार बरा—शुक्रजनक, बलकारक, रोचक, गुरु, विबन्ध को दूर करने वाला, विदाही, कफकारक तथा वातनाशक होता है।

यदि इसे रायता में डालकर भक्षण करे तो अत्यन्त रोचक और पाचक होता है ॥ ५१–५५ ॥

***राज्यक्ता (राइता) इति लोके ॥ ५१–५५ ॥**

यहां पर मूल में "राज्यक्ता" से राइता का ग्रहण करना चाहिये ॥ ५१–५५ ॥

अथ काञ्जिकावटकः (काञ्जी बरा)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

**मन्थनी नूतना धार्या कटुतैलेन लेपिता । निर्मलेनाम्बुनाऽऽपूर्य तस्यां चूर्णं विनिक्षिपेत् ॥
राजिकाजीरकलवणहिङ्गुशुण्ठीनिशाकृतम् ॥ ५६ ॥**

**निक्षिपेद्वटकांस्तत्र भाण्डस्यास्यञ्च मुद्रयेत् । ततो दिनत्रयादूर्ध्वमम्लाः स्युर्वटका ध्रुवम् ॥५७॥
काञ्जिकावटको रुच्यो वातघ्नः श्लेष्मकारकः । शूलघ्नोऽजीर्णदाहनुद् नेत्ररोगे तु नो हितः ॥५८॥**

काञ्जी बरा बनाने की विधि—एक नवीन मिट्टी का मजबूत पात्र (हांडी) लेकर उसके अन्दर कड़ुवा तैल चुपड़ कर उस में स्वच्छ जल भर दे, तत् पश्चात् मात्रानुसार राई, जीरा, सेंधानिमक, हींग, सोंठ और हल्दी का चूर्ण उसमें डालकर बाद में उरद के बरों को उसी में डुबो दे और पात्र का मुख बन्दकर दे, पुनः जब तीन दिन बीत जाय तब चौथे दिन बरे सब खट्टे हो जायेंगे तब पात्र का मुख खोल दे। यही बरे काञ्जी के बरे कहलाते हैं। **काञ्जी के बरे**—रुचिकारक, वातनाशक, कफकारक, शूलनाशक, एवम्—अजीर्ण तथा दाह को दूर करनेवाले और नेत्ररोग में अहितकर होते हैं ॥ ५६–५८ ॥

अथाम्लिकावटकाः (इमलीके बरे)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

**अम्लिकां स्वेदयित्वा तु जलेन सह मर्दयेत् । तन्नीरे कृतसंस्कारे वटकान्मज्जयेज्जनः ॥५९॥
अम्लिकावटकास्ते तु रुच्या वह्निप्रदीपनाः । वटकस्य गुणैः पूर्वैरेतेऽपि च समन्विताः ॥६०॥**

इमली के बरे बनाने की विधि—इमली को उबालकर जल के साथ मलकर के उसका रस तैयार करले, पुनः उसका संस्कार करके अर्थात् सरसों, हींग, जीरा, सेंधानिमक, सोंठ, हरदी आदि मसाला डाल करके पीछे से उरद के सूखे बरों को उसीमें भिगो दे, जब भीग जायं तब उन्हें कार्य में ले, ये ही इमली के बरे कहलाते हैं। **इमली के बरे**—रुचिकारक, अग्नि को प्रदीप्त करने वाले एवम् पूर्वोक्त उरद के सूखे बरों के गुणों से युक्त होते हैं ॥ ५९–६० ॥

अथ मुद्गवटकाः (मूंग के बरे)। तक्रमज्जितानां च तेषां गुणानाह

मुद्गानां वटकास्तक्रे मज्जिता लघवो हिमाः । संस्कारजप्रभावेण त्रिदोषशमना हिताः ॥६१॥

मूंग के बरे बनाने की विधि—उरद के बरों की भांति मूंग के भी बरे बनाकर तक्र (मट्ठे) में भिगो दे और पूर्वोक्त भुना जीरा तथा हींग और सेंधानिमक का चूर्ण उसमें डाल दे, भीगने पर ये ही मूंग के बरे कहलाते हैं। **मूंगके बरे**—लघु, शीतल एवम् संस्कार के प्रभाव से अर्थात् मसाला आदि डालने से त्रिदोष को शमन करने वाले तथा हितकर होते हैं ॥ ६१ ॥

अथ माषवटिकाः (उरदकी बरी)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

**माषाणां पिष्टिका हिङ्गुलवणार्द्रकसंस्कृता । तया विरचिता वस्त्रे वटिकाः साधु शोषिताः ॥
भर्जितास्तप्ततैलैस्ता अथवाऽम्बुप्रयोगतः । वटकस्य गुणैर्युक्ता ज्ञातव्या रोचना भृशम् ॥**

उरद की बरी बनाने की विधि—उरद की पीठी को पीस कर उसमें मात्राऽनुसार हींग, सेंधा निमक तथा अदरक आदि डालकर खूब फेंटे पश्चात् उसकी छोटी २ बरी बना कर कपड़े पर रखकर धूप में खूब सुखा डाले और सूख जाने पर उसे तेल में भून कर अथवा पानी में उबालकर सिद्ध करके, इसी को उरद की बरी कहते हैं। **उरद की बरी**—गुणों में पूर्वोक्त उरद के बरों के समान होती है और अत्यन्त रुचिकर होती है ॥ ६२–६३ ॥

अथ कूष्माण्डकवटी (पेठे की बरी)। तस्या गुणानाह

कूष्माण्डकवटी ज्ञेया पूर्वोक्तवटिकागुणा । विशेषात्पित्तरक्तघ्नी लघ्वी च कथिता बुधैः ॥६४॥

पेठे की बरी (कोहड़ौरी) बनाने की विधि—पूर्वोक्त उरद की बरी बनाने के समय पीठी में पेठे के छोटे २ बारीक टुकड़े कद्दूकश से तैयार करके डाले और पूर्वोक्त मसाला डालकर कपड़े पर

सुखाले। यही पेठे की [illegible] है। पेठे की बरी—गुणों में उरद की बरी के समान होती है किन्तु विशेष करके यह [illegible] रक्तविकार को दूर करने वाली एवम् लघु होती है ऐसा विद्वानों का मत है ॥ ६४ ॥

अथ मुद्गवटी (मूंगकी बरी)। तस्या गुणानाह

मुद्गानां वटिका तद्वद्रचिता साधिता तथा। पथ्या रुच्या तथा लघ्वी मुद्गसूपगुणा स्मृता ॥

मूंग की बरी बनाने की विधि—मूंग की बरी, उरद की बरी के समान ही बनाई तथा पकाई जाती है। मूंग की बरी–पथ्य, रुचिकारक तथा लघु होती है एवम् मूंग के दाल के जो गुण पूर्व में कह आये हैं वे सभी इसमें रहते हैं ॥ ६५ ॥

अथालीकमत्स्यः। तस्य साधनप्रकारमाह

माषपिष्टिकया लिप्तं नागवल्लीदलं महत् ॥ ६६ ॥
तत्तु संस्वेदयेद्युक्त्या स्थाल्यामास्तारकोपरि। ततो निष्कास्य तं खण्ड्यं ततस्तैलेन भर्जयेत् ॥

अलीकमत्स्य (यह खाने में मछली के समान होता है) बनाने की विधि—बड़े २ पान के पत्तों को लेकर उनके ऊपर उरद की पीठी लपेट दे और एक बटुलोई में जल भरकर उनके मुख पर वस्त्र बांधकर उसी के ऊपर उन सबों को रख कर आंच पर रख दे और युक्ति से इस तरह भाफ से उबाले कि वे सब सिद्ध हो जायं, पुनः उतारकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, तत्पश्चात् तेल में पका डाले ॥ ६६–६७ ॥

*खण्ड्यं = खण्डन योग्यमिति यावत् ॥ ६६–६७ ॥

यहाँ पर "खण्ड्य" पद का—"टुकड़े टुकड़े कर डाले" यह अर्थ समझना चाहिये ॥६६–६७॥

अलीकमत्स्य उक्तोऽयं प्रकारः पाकपण्डितैः। तं वृन्ताकभटित्रेण वास्तूकेन च भक्षयेत् ॥६८॥

अलीक मत्स्य बनाने का यही पूर्वोक्त प्रकार पाकविद्या के विद्वानों ने बतलाया है। इसे बैगन के कबाब (लोहे के सीक में खोंस कर आग पर भुने हुये बैगन) के साथ या बैगन के भर्ते के साथ अथवा बथुआ के साथ खावे ॥ ६८ ॥

अथ क्वथिता (कढी)। तस्याः साधनं गुणाश्चाह

स्थाल्यां घृते वा तैले वा हरिद्रां हिङ्गु भर्जयेत्।
अवलेहनसंयुक्तं तक्रं तत्रैव निक्षिपेत्। एषा सिद्धा समरिचा क्वथिता कथिता बुधैः ॥ ६९ ॥

कढ़ी बनाने की विधि—कढ़ाई या बटुलोई में घी अथवा तेल डालकर उसमें हींग तथा हरदी डाल कर प्रथम भून डाले तत्पश्चात् उसमें अरिहन अर्थात् जल में घोला हुआ बेसन और उसी के साथ तक्र (मट्ठा) भी मिलाकर डालकर पकावे और काली मिर्च तथा मात्राऽनुसार सेंधानिमक भी डाल दे, जब यह सिद्ध होजाय तो उतार ले, इसी को विद्वान् लोग कढ़ी कहते हैं ॥ ६९ ॥

*अवलेहनम् "अरिहन" इति लोके ॥ ६९ ॥

यहां पर 'अवलेहनम्" पद से लोक प्रसिद्ध "अरिहन" लेना चाहिये ॥ ६९ ॥

क्वथिता पाचनी रुच्या लघ्वी वह्निप्रदीपनी। कफानिलाविबन्धघ्नी किञ्चित्पित्तप्रकोपणी॥७०॥

कढ़ी—पाचक, रुचिकारक, लघु, अग्निदीपक, किञ्चित् पित्त को प्रकुपित करने वाली एवम्—कफ, वायु तथा विबन्ध को दूर करने वाली होती है ॥ ७० ॥

अलीकमत्स्यस्य गुणानाह

अलीकमत्स्याः शुष्का वा किं वा क्वथितया पुनः। बृंहणा रोचना वृष्या बल्या वातगदापहाः॥७१॥
कोष्ठशुद्धिकराः शुष्काः किञ्चित्पित्तप्रकोपणाः। अर्दिते सहनुस्तम्भे विशेषेण हिताः स्मृताः ॥

अलीक मत्स्य—अलीक मत्स्य चाहे सूखे हों या कढ़ी में भिगोये हुये हों दोनों ही बृंहण (रस–रक्तादिवर्धक), रोचक, वीर्यवर्धक, बलकारक, वातरोग–नाशक तथा कोष्ठ की शुद्धि करने वाले होते हैं। सूखे अलीक मत्स्य—विशेष करके किञ्चित् पित्त को प्रकुपित करने वाले और अर्दितवात (मुंह का लकवा) तथा हनुस्तम्भ रोग में विशेष हितकर होते हैं ॥ ७१–७२ ॥

अथ मुद्गार्द्रवटकाः (अदरक बड़ा)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

मुद्गपिष्टीविरचितान् वटकांस्तैलपाचितान्। हस्तेन चूर्णयेत्सम्यक् तस्मिंश्चूर्णं विनिक्षिपेत् ॥
भृष्टं हिङ्ग्वार्द्रकं सूक्ष्मं मरिचं जीरकं तथा। निम्बूरसं यवानीं च युक्त्या सर्वं विमिश्रयेत्॥
मुद्गपिष्टं पचेत्सम्यक् स्थाल्यामास्तारकोपरि। तस्यास्तु गोलकं कुर्यात्तन्मध्ये पूरणं क्षिपेत् ॥
तैले तान्गोलकान्पक्त्वा क्वथितायां निमज्जयेत्। गोलकाःपाचकैःप्रोक्तास्ते त्वार्द्रकवटा अपि ॥
मुद्गार्द्रकवटा रुच्या लघ्वो बलकारकाः। दीपनास्तर्पणाः पथ्यास्त्रिषु दोषेषु पूजिताः ॥ ७७ ॥

अदरक का बड़ा बनाने की विधि—प्रथम मूंग की पीठी के बरे बनाकर तेल में पका डाले, पश्चात् उसे हाथ से मसल कर चूर्ण कर डाले। पुनः उसमें—भुना हुआ हींग, अदरख के पतले २ छोटे २ टुकड़े, मरिच, जीरा, नीबू के रस, अजवाइन इन सबों को युक्तिपूर्वक यथायोग्य चूर्ण करके मिला दे। और मूंग की पीठी को बटुलोई में जल भर कर उसके ऊपर कपड़ा रख कर उसी के ऊपर रख कर भाप से सिद्ध कर ले। जब तैयार हो जाय तब उसके बड़े-बड़े गोले कर, बरे बनाकर उसी के अन्दर पूर्वोक्त चूर्ण किये हुये पदार्थों को भर तेल में पका डाले, जब तैयार हो जाय तब कढ़ी में भिगो दे। भीग जाने पर इसी को पाकविद्या में कुशल लोग अदरक बड़ा कहते हैं।

अदरक बड़ा—रुचिकारक, लघु, बलकारक, अग्निदीपक, तृप्तिकारक, पथ्य तथा तीनों दोषों में ही उत्तम होता है अर्थात् हानिकारक नहीं होता है ॥ ७३–७७ ॥

अथ वेसनम् (वेसन)। तस्य साधनमाह

दालयश्चणकानां तु निस्तुषा यन्त्रपेषिताः। तच्चूर्णं वेसनं प्रोक्तं पाकशास्त्रविशारदैः ॥ ७८ ॥

वेसन बनाने की विधि—बिना छिलके की चने की दाल को चक्की में पीसकर आटा तैयार करले। इसी को पाकशास्त्र (रसोई बनाने की विद्या) में निपुण लोग बेसन कहते हैं ॥ ७८ ॥

अथ वेसनवटिका (फुलौरी)। तस्या साधनं गुणांश्चाह

वटिकावेसनस्यापि क्वथितायां निमज्जिता। रुच्या विष्टम्भजननी बल्या पुष्टिकरी स्मृता ॥७९॥

फुलौरी बनाने की विधि—बेसन की बरी बनाकर यदि कढ़ी में भिगो दी जाय तो उसे फुलौरी कहते हैं।

फुलौरी—रुचिकारक, विष्टम्भजनक, बल तथा पुष्टि करने वाली होती है ॥ ७९ ॥

*एवमन्येऽपि वेसनभवाः प्रकाराः खण्डनखण्डप्रभृतयो बोद्धव्याः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार से अन्य भी बेसन से बनाये जाने वाले खण्डन आदि पदार्थों के बनाने की विधियां होती हैं। उन्हें स्वयं समझ लेना चाहिये। ग्रन्थ बढ जाने के भय से नहीं लिखी जा रही है ॥७९॥

अथ मांसस्य प्रकाराः । तत्र शुद्धमांसम् । तस्य प्रकारमाह

पाकपात्रे घृतं दद्यात्तैलञ्च तदभावतः । तत्र हिङ्गु हरिद्रां च भर्जयेत्तदनन्तरम् ॥ ८० ॥
छागादेरस्थिरहितं मांसं तत्खण्डितं ध्रुवम् । धौतं निर्गालितं तस्मिन्घृते तद्भर्जयेच्छनैः ॥
सिद्धयोग्यं जलं दत्त्वा लवणन्तु पचेत्ततः । सिद्धे जलेन सम्पिष्य वेशवारं परिक्षिपेत् ॥ ८२ ॥

मांस बनाने के प्रकारों में प्रथम शुद्ध मांस बनाने की विधि—मांस बनाने के पात्र में प्रथम घी अथवा अभाव में तेल ही डाल कर उस में हींग और हरदी डाल कर भूने, तत्पश्चात् बकरे आदि का मांस लेकर उस के टुकड़े कर डाले, यदि हड्डियां हों तो उन्हें फेंक दे, पुनः उन टुकड़ों को धोकर तथा जल खूब निताकर उपर्युक्त घी अथवा तेल में धीरे २ भूने, और सिद्ध होने योग्य जल छोड़ कर तथा सेंधा निमक मात्राऽनुसार डालकर पकावे, जब पक जाय तब जल के साथ वेशवार पीस कर उसी में छोड़ दे ॥ ८०–८२ ॥

अथ वेशवारः (पिसा हुआ मसाला) । तद्द्रव्याण्याह

द्रव्याणि वेशवारस्य नागवल्लीदलानि च । तण्डुलाश्च लवङ्गानि मरिचानि समासतः ॥८३॥

वेशवार के द्रव्य—पान के पत्ते, चावल, लौंग, मरिच ये सब संक्षेप में वेशवार में पड़ने वाले द्रव्य हैं ॥ ८३ ॥

*वेशवारः "वेसर" इति लोके ॥ ८३ ॥

यहां पर "वेशवार" से लोक प्रसिद्ध "वेसर" समझना चाहिये ॥ ८३ ॥

अथ शुद्धमांसस्य गुणानाह

अनेन विधिना सिद्धं शुद्धमांसमिति स्मृतम् ॥ ८४ ॥
शुद्धमांसं परं वृष्यं बल्यं रुच्यञ्च बृंहणम् । त्रिदोषशमनं श्रेष्ठं दीपनं धातुवर्द्धनम् ॥ ८५ ॥

शुद्ध मांस—इस पूर्वोक्त विधि से सिद्ध किया हुआ मांस "शुद्ध—मांस" कहलाता है । यह अत्यन्त वीर्यवर्धक, बलकारक, रोचक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), त्रिदोष को शमन करने वाला, अत्यन्त अग्निदीपक तथा धातुवर्धक होता है ॥ ८४–८५ ॥

अथ सहद्रकम् ("सेहण्डुक, सहवांसु" इति लोके) । तस्य साधनं गुणांश्चाह

छागादेर्मांसमूर्वादेः कुट्टितं खण्डितं पुनः । शुद्धमांसविधानेन पचेदेतत्सहद्रकम् ।
सहद्रकं गुणैर्ग्रन्थे शुद्धमांसगुणं स्मृतम् ॥ ८६ ॥

सहद्रक (इसे लोक में-सेहुण्डक या सहवांसु-कहते हैं) बनाने की विधि-बकरे आदि के ऊरु आदि स्थानों के मांस को कूट २ कर खूब टुकड़े करके पूर्वोक्त शुद्ध मांस बनाने की विधि के अनुसार पका डाले, इसको सहद्रक कहते हैं । सहद्रक—द्रव्य-गुण-ग्रन्थों में इसके गुण शुद्ध मांस के समान ही कहे हुए हैं ॥ ८६ ॥

अथ तक्रमांसम् (अखनी) । तस्य साधनं गुणांश्चाह

पाकपात्रे घृतं दत्त्वा हरिद्रां हिङ्गु भर्जयेत् । छागादेः सकलस्यापि खण्डान्यपि च भर्जयेत् ॥
सिद्धयोग्यं जलं दत्त्वा पचेन्मृदुतरं तथा । जीरकादियुते तक्रे मांसखण्डानि भावयेत् ॥८८॥
तक्रमांसन्तु वातघ्नं लघु बल्यं बलप्रदम् । कफघ्नं पित्तलं किञ्चित्सर्वाहारस्य पाचनम् ॥८९॥

अखनी बनाने की विधि—पाक बनाने के बर्त्तन में घी डाल कर उसमें हल्दी तथा हींग को प्रथम भून डाले, तत्पश्चात् उसी में बकरे आदि के सम्पूर्ण अङ्गों के मांस के टुकड़ों को भून डाले, तत्पश्चात् उसमें सिद्ध होने योग्य जल डाल कर पुनः मन्द २ अग्नि से पकावे । पश्चात् जीरा आदि पड़े हुये तक्र (मट्ठा) में उन मांस के टुकड़े को डाले । यही 'अखनी' कहलाती है ।

अखनी—वातनाशक, लघु, रुचिकारक, बलकारक, कफनाशक, किञ्चित् पित्तजनक तथा सम्पूर्ण खाये हुए पदार्थों को पचाने वाली होती है ॥ ८७–८९ ॥

अथ हरीसा (आसा) । तस्य साधनं गुणांश्चाह

पाकपात्रे तु बृहति मांसखण्डानि निक्षिपेत् । पानीयं प्रचुरं सर्पिः प्रभूतं हिङ्गु जीरकम् ॥
हरिद्रामार्द्रकं शुण्ठीं लवणं मरिचानि च । तण्डुलांश्चापि गोधूमाञ्जम्बीराणां रसान् बहून् ॥
यथा सर्वाणि वस्तूनि सुपक्वानि भवन्ति हि । तथा पचेत्तु निपुणो बहुमण्डस्थितिर्यथा ॥
एषा हरीसा बलकृद्वातपित्तापहा गुरुः । शीतोष्णा शुक्रदा स्निग्धा सरा सन्धानकारिणी ॥

हरीसा (आस) बनाने की विधि—एक बहुत बड़े पात्र में मांस के टुकड़ों को डाल कर उसी में अधिक मात्रा में जल तथा घी और हींग, जीरा, हल्दी अदरख, सोंठ, सेंधा निमक, मरिच, चावल, गेहूँ और जमीरी नीबू का रस इन सबों को डाले, तथा इस भांति चतुरता से पकावे कि उपर्युक्त सब वस्तुयें भली भांति पक भी जायें और अधिक मात्रा में मांड (रस) भी रह जाय । इसी को-हरीसा-कहते हैं । हरीसा—बलकारक, वात तथा पित्तनाशक गुरु, शीतोष्ण, शुक्रजनक, स्निग्ध, सारक (मल को निकालने वाला) तथा सन्धान-कारक (टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने वाला) होता है ॥ ९०–९३ ॥

अथ तलितमांसम् (तला हुआ मांस) । तस्य साधनं गुणांश्चाह

शुद्धमांसविधानेन मांसं सम्यक्प्रसाधितम् । पुनस्तदाज्ये सम्भृष्टं तलितं प्रोच्यते बुधैः ॥
तलितं बलमेधाऽग्निमांसौजःशुक्रवृद्धिकृत् । तर्पणं लघु सुस्निग्धं रोचनं दृढताकरम् ॥ ९५ ॥

तलित मांस (तला हुआ मांस) बनाने की विधि—पूर्वोक्त शुद्ध मांस बनाने की विधि के अनुसार भली भांति सिद्ध किये हुए मांस को पुनः घी में डाल कर जो अच्छी तरह से भूना जाता है, उसे पण्डित लोग तलित मांस अर्थात् तला हुआ मांस कहते हैं । तलित मांस (तला हुआ मांस)—बल, मेधाशक्ति, अग्नि, मांस, ओज तथा शुक्र की वृद्धि करने वाला, तृप्तिकारक, लघु, अत्यन्त स्निग्ध, रोचक, तथा शरीर को दृढ़ करने वाला होता है ॥ ९४–९५ ॥

अथ शूल्यपलम् (कबाब) । तस्य साधनं गुणांश्चाह

कालखण्डादिमांसानि ग्रथितानि शलाकया । घृतं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् ॥ ९६ ॥
तत्तु शूल्यमिति प्रोक्तं पाककर्मविचक्षणैः ॥ ९७ ॥
शूल्यं पलं सुधातुल्यं रुच्यं वह्निकरं लघु । कफवातहरं बल्यं किञ्चित्पित्तकरं हि तत् ॥ ९८ ॥

शूल्य पल (कबाब) बनाने की विधि—कलेजे आदि अङ्गों के मांस को कूट कर उस में घी तथा निमक मिला कर लोहे की सलाई पर लपेट कर या उसी में गूँथ कर निर्धूम (बिना धूयें की) अग्नि पर कुछ ऊँचाई से रख कर धीरे २ पकावे, इसी को पाक करने में निपुण लोग शूल्य पल (कबाब) कहते हैं ।

कबाब—अमृत के तुल्य स्वादिष्ट, रुचिकारक, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, लघु, कफ तथा वातनाशक, बलकारक, एवम्—किञ्चित पित्तकारक होता है ॥ ९६–९८ ॥

अथ मांसशृङ्गाटकम् (मांस का सिंगाड़ा) । तस्य साधनं गुणांश्चाह

शुद्धमांसं तनूकृत्य कर्त्तितं स्वेदितं जले । लवङ्गहिङ्गुलवणमरिचार्द्रकसंयुतम् ॥ ९९ ॥
एलाजीरकधान्याकनिम्बूरससमन्वितम् । घृते सुगन्धे तद् भृष्टं पूरणं प्रोच्यते बुधैः ॥१००॥
शृङ्गाटकं समितया कृतं पूरणपूरितम् । पुनः सर्पिषि सम्भृष्टं मांसशृङ्गाटकं वदेत् ॥ १०१ ॥
मांसशृङ्गाटकं रुच्यं बृंहणं बलकृद् गुरु । वातपित्तहरं वृष्यं कफघ्नं वीर्यवर्धनम् ॥ १०२ ॥

मांस का सिंगाड़ा बनाने की विधि—शुद्ध मांस के पतले २ तथा छोटे २ टुकड़े करके उसे जल में उबाले । पश्चात् उसमें—लौंग, हींग, सेन्धानिमक, मरिच, अदरख, छोटी इलायची, जीरा, धनिया इन सबों का यथायोग्य चूर्ण और नीबू का रस डाल करके सुगन्धित घी में भून डाले, इसी को पण्डित लोग पूरण (मैदा के सिंगाड़ा के अन्दर भरे जाने वाला द्रव्य) कहते हैं । इसके उपरान्त मैदा को जल में सान कर उसकी लोई के अन्दर उक्त पूरण संज्ञक द्रव्यों को भर कर सिंगाड़ा के आकार का बना ले और उसे घी में भून ले, इसी को मांस का सिंगाड़ा कहते हैं ।

मांस का सिंगाड़ा—रुचिकारक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), बलकारक, गुरु, वात तथा पित्तनाशक, वृष्य, कफनाशक तथा अत्यन्त वीर्यवर्धक होता है ॥ ९९-१०२ ॥

अथ सिद्धमांसरसः (सुरुवा) । तस्य गुणानाह

सिद्धमांसरसो रुच्यः श्रमश्वासक्षयापहः । प्रीणनो वातपित्तघ्नः क्षीणानामल्परेतसाम् ॥
विश्लिष्टभग्नसन्धीनां शुद्धानां शुद्धिकाङ्क्षिणाम् ॥ १०३ ॥
स्मृत्योजोबलहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम् । शस्यते स्वरहीनानां दृष्ट्यायुःश्रवणार्थिनाम् ॥
प्रकाराः कथिताः सन्ति बहवो मांससम्भवाः । ग्रन्थविस्तरभीतेस्ते मया नात्र प्रकीर्त्तिताः ॥

सिद्धमांसरस (सुरुवा) रुचिकारक, श्रम, श्वास तथा क्षय को दूर करने वाला, तृप्तिदायक, वात तथा पित्तनाशक होता है; एवम् क्षीण, अल्पवीर्य या जिनकी सन्धियां उखड़ गई हैं या टूट गई हैं, या जो वमन विरेचनादि से शुद्ध हुये हैं अथवा वमन विरेचनादि से शोधन करना चाहते हैं, किंवा स्मरणशक्ति ओज तथा बल से हीन हैं, या ज्वर से क्षीण अथवा उरःक्षत रोग से पीड़ित हैं, या जिनका स्वर हीन हो गया है अथवा दृष्टिशक्ति आयु तथा श्रवणशक्ति की वृद्धि चाहने वाले जो लोग हैं उनके लिये उत्तम होता है । इस प्रकार से बहुत से मांस बनाने के प्रकार अन्यत्र कहे हुये हैं किन्तु ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहां पर उन सबका वर्णन नहीं किया जा रहा है ॥ १०३-१०५ ॥

अथ शाकपाकविधिः । तामाह

हिङ्गुजीरयुते तैले क्षिपेच्छाकं सुखण्डितम् ॥ १०६ ॥
लवणं चात्र चूर्णादि सिद्धं हिङ्ग्वुदकं क्षिपेत् । इत्येवं सर्वशाकानां साधनेऽभिहितो विधिः ॥

शाक बनाने की विधि—शाक को पहले टुकड़े २ करके और धो करके पीछे तेल में हींग तथा जीरा का तड़का दे करके उसी में डाल दे, जब गल जाय तब उसमें सेंधा निमक, खटाई का चूर्ण तथा हींग घोला हुआ जल छोड़ कर पक जाने पर उतार ले । हर एक शाकों को बनाने के लिये प्रायः करके यही विधि काम में की जाती है ॥ १०६-१०७ ॥

अथ पच्यान्नसाधनविधिमाह । तत्र मण्ठकः ("मठरी" इति लोके) । तस्य साधनविधिमाह

समितां मर्दयेदाज्यैर्जलेनापि च सन्नयेत् । तस्यास्तु वटिकां कृत्वा पचेत्सर्पिषि नीरसम् ॥
एलालवङ्गकर्पूरमरिचाद्यैरलङ्कृते ॥ १०८ ॥
मज्जयित्वा सितापाके ततस्तञ्च समुद्धरेत् । अयं प्रकारः संसिद्धौ मण्ठ इत्यभिधीयते ॥

पकवान बनाने की विधियों में प्रथम मण्ठक (लोकप्रसिद्ध मठरी) बनाने की विधि कहते हैं—प्रथम मैदा को घी तथा जल से खूब मर्दन करे, पश्चात् उसको टिकिया बनाकर घी में खूब तल ले, फिर चीनी की चाशनी बना कर उसमें छोटी इलायची, लौंग, कपूर, मरिच आदि डालकर उसीमें उक्त टिकियों को डुबो दे, जब खूब भीग जाय तब निकाल कर काम में ले, इस प्रकार से तैयार हुये पकवान को मण्ठ अर्थात् मठरी कहते हैं ॥ १०८-१०९ ॥

***सन्नयेत् = मर्दयेत् ॥ १०८-१०९ ॥**
यहाँ पर मूल में "सन्नयेत्" पद का "खूब मर्दन करे" यह अर्थ समझना चाहिए ॥

अथ मण्ठस्य गुणानाह

मण्ठस्तु बृंहणो वृष्यो बल्यः सुमधुरो गुरुः । पित्तानिलहरो रुच्यो दीप्ताग्नीनां सुपूजितः ॥
समिताशर्करासर्पिर्निर्मिता अपरेऽपि ये । प्रकारा अमुना तुल्यास्तेऽपि चैतद्गुणाः स्मृताः ॥

मठरी—बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वृष्य, बलकारक, अत्यन्त मधुर, गुरु, पित्त तथा वायु को दूर करने वाली, रुचिकारक तथा प्रदीप्त अग्नि वालों के लिये अत्युत्तम होती है ।

इसी के समान मैदा, शक्कर तथा घी के योग से बने हुये अन्य प्रकार के भी जो पकवान बालू-साही आदि हैं, उसके भी ये ही सब गुण होते हैं ॥ ११०-१११ ॥

अथ सम्पावः (गुजिया) । तस्य साधनं गुणांश्चाह

पर्पटयः साज्यसमितानिर्मिता घृतभर्जिताः । कुट्टिताश्चालिताः शुद्धशर्कराभिर्विमर्दिताः ॥
तत्र चूर्णं क्षिपेदेलालवङ्गमरिचानि च । नारिकेरं सकर्पूरं चारबीजान्यनेकधा ॥ ११२ ॥
घृताक्तसमिता पुष्टरोटिका रचिता ततः । तस्यान्तःपूरणं तस्य कुर्यान्मुद्रां दृढां सुधीः ॥
सर्पिषि प्रचुरे तान्तु सुपचेन्निपुणो जनः । प्रकारज्ञैः प्रकारोऽयं सम्पाव इति कीर्त्तितः ॥
मण्ठकेन समो ज्ञेयः सम्पावोऽपि गुणैर्जनैः ॥ ११६ ॥

गुजिया बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मैदा की पतली २ रोटी बेल कर उसे घी में खरी तक करके पश्चात् कूट कर चलनी से चाल ले और उसमें अन्दाज से बूरा मिला कर खूब मर्दन करे । पुनः इलायची, लौंग, मरिच, नारियल की गींगी का बुरादा (बारीक २ टुकड़े), कपूर, चिरौंजी आदि द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर घी का मोयन देकर मांड़े हुये मैदे की मोटी रोटी बेल कर उसके अन्दर (पूर्वोक्त चूर्ण किये हुये द्रव्यों को) भरकर उसका मुख दृढ़ता से युक्तिपूर्वक बन्द कर दे, तत्पश्चात्, अधिक घी कढ़ाई में डाल कर उसमें अच्छी तरह से पकावे । पकवान बनाने की विधियों के जानने वाले लोगों ने इस प्रकार से बने हुये पदार्थ को "सम्पाव" अर्थात् गुजिया कहा है ।

गुजिया—गुणों में मठरी के समान ही होती है ऐसा पाकशास्त्रज्ञों का मत है ।

अथ कर्पूरनालिका । तस्याः साधनं गुणांश्चाह

घृताढ्यया समितया लम्बं कृत्वा पुटं ततः । लवङ्गोषणकर्पूरयुतया सितयाऽन्वितम् ॥
पचेदाज्येन सिद्धैषा ज्ञेया कर्पूरनालिका । सम्पावसदृशा ज्ञेया गुणैः कर्पूरनालिका ॥ ११८ ॥

कर्पूरनालिका बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मड़े हुये मैदा की लोई बेलकर लम्बा सम्पुट बनाकर उसके अन्दर लौंग, मरिच तथा कपूर का चूर्ण और बूरा (दानेदार चीनी) भरकर उस का मुख दृढ़ता से बन्द करके घी में पकावे, सिद्ध होने पर इसी को "कर्पूरनालिका कहते हैं।

कर्पूरनालिका—गुणों में गुजिया के समान ही होती है ॥ ११७-११८ ॥

अथ फेनिका (फेनी)। तस्याः साधनं गुणांश्चाह

समिताया घृताढ्याया वर्त्तीर्दीर्घाः समाचरेत्। तास्तु सन्निहिता दीर्घाः पीठस्योपरि धारयेत्॥
वेल्लयेद्वेल्लनेनैता यथैका पर्पटी भवेत् । ततश्छुरिकया तान्तु संलग्नामेव कर्त्तयेत् ॥ १२० ॥
ततस्तु वेल्लयेद्भूयः सट्टकेन च लेपयेत् । शालिचूर्णं घृतं तोयं मिश्रितं सट्टकं वदेत् ॥
ततः संवृत्य तल्लोप्त्रीं विदधीत पृथक्पृथक् । पुनस्तां वेल्लयेल्लोप्त्रीं यथा स्यान्मण्डलाकृतिः ॥
ततस्तां सुपचेदाज्ये भवेयुश्च स्फुटाः स्फुटाः । सुगन्धया शर्करया तद्धूलनमाचरेत् ॥
सिद्धैषा फेनिकानाम्नी मण्ठकेन समा गुणैः । ततः किञ्चिल्लघुरियं विशेषोऽयमुदाहृतः ॥

फेनी बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मड़े हुये मैदा की लम्बी २ बत्ती बना कर उसे चकला पर पास २ सटाकर रखकर लम्बाई की तरफ से बेलन से ऐसा बेले कि जिसमें एक रोटी की तरह हो जाय, इसके बाद छुरी से एक दूसरे से लगी हुई को काट २ कर, उसको पुनः अलग २ बेल और उन पर चावल का चूर्ण, घी और जल को खूब मिलाने से जो सट्टक तैयार होता है, उसका लेप करे। फिर उन सबों को अलग २ समेट कर लोई बनाकर ऐसा बेले कि जिसमें चक्राकार रोटी बन जाय। तत्पश्चात् घी में उन सबको अच्छी तरह से पकावे, तैयार होने पर उसमें फुटका-फुटका सा पड़ जायगा।

पुनः सुगन्धित शक्कर में उन सबों को सान दे अथवा चाशनी से डुबोकर निकाल ले। इस प्रकार से तैयार हुई पकवान को फेनी कहते हैं।

फेनी—गुणों में मठरी के समान होती है, किन्तु विशेषकर उसकी अपेक्षा किञ्चित् लघु होती है ॥ ११९-१२४ ॥

*वेल्लयेत्=प्रसारयेत् । वेल्लनः='बेलन' इति लोके । पर्पटी=रोटी । लोप्त्री 'लोई' इति लोके ॥ ११९-१२४ ॥

यहां पर मूल में "वेल्लयेत" का "वेले", "वेल्लन" पद का लोक प्रसिद्ध "वेलन", "पर्पटी" का "रोटी" और "लोप्त्री" का "लोई" अर्थ समझना चाहिये ॥ ११९-१२४ ॥

अथ शष्कुली (खस्तापूरी)। तस्याः साधनं गुणांश्चाह

समिताया घृताक्ताया लोप्त्रीं कृत्वा च वेल्लयेत् । आज्ये तां भर्जयेत्सिद्धा शष्कुली फेनिकागुणा ॥

खस्ता पूरी बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मैदा माड़ कर उसकी लोई बना डाले, पश्चात् इन सबों को बेल कर घी में पका डाले, सिद्ध होने पर इसी को संस्कृत में—"शष्कुली" कहते हैं।

खस्ता पूरी-गुणों में फेनी के समान होती है ॥ १२५ ॥

अथ सेविकामोदकाः (सेव के लड्डू)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

घृताढ्यया समितया कृत्वा सूत्राणि तानि तु । निपुणो भर्जयेदाज्ये खण्डपाकेन योजयेत् ॥
युक्तेन मोदकान् कुर्यात्ते गुणैर्मण्ठका यथा ॥ १२६ ॥

सेव के लड्डू बनाने की विधि—घी का मोयन देकर मैदा माड़ कर उसके सूत्र अर्थात् सेव बना ले और उसे घी में भून ले, जब सिक जाय तब उतार कर शक्कर की चाशनी में डुबो कर उस का लड्डू बांध ले, उसी को सेव का लड्डू कहते हैं।

यह—गुण में मठरी के समान ही होता है ॥ १२६ ॥

अथ मुक्तामोदका मुद्गमोदका वा (बूँदी के लड्डू)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

मुद्गानां धूमसीं सम्यग्घोलयेन्निर्मलाऽम्बुना ॥ १२७ ॥
कटाहस्थ घृतस्योर्ध्वं झर्झरं स्थापयेत्ततः । धूमसीन्तु द्रवीभूतां प्रक्षिपेज्झर्झरोपरि ॥ १२८ ॥
पतन्ति बिन्दवस्तस्मात्तान्सुपक्वान्समुद्धरेत् । सितापाकेन संयोज्य कुर्याद्धस्तेन मोदकान् ॥
लघुर्ग्राही त्रिदोषघ्नः स्वादुः शीतो रुचिप्रदः । चक्षुष्यो ज्वरहृद्बल्यस्तर्पणो मुद्गमोदकः ॥१३०॥

बूंदी के लड्डू बनाने की विधि—मूंग की धुंवास को साफ जल में गाढ़ा २ घोल कर खूब फेंट डाले, फिर कढ़ाई में ज्यादा घी रखकर उसे आग पर चढ़ा दे और कढ़ाई के ऊपर झरनी रखकर उस पर पूर्वोक्त घोले हुये धुआंस को धीरे २ डाले तो जो बूंद के समान कढ़ाई में गिरे उन सबों को सिक जाने पर निकाल २ कर चीनी की चासनी में भिगोता जाय, बाद को सबों को चासनी में से निकाल कर हाथ से लड्डू बना ले। इसी को बूंदी के लड्डू कहते हैं।

बून्दी के लड्डू—लघु, ग्राही, त्रिदोषनाशक, स्वादिष्ट, शीतल, रुचिकारक, नेत्रों के लिये हितकर, ज्वरनाशक, बलकारक तथा तृप्तिदायक होते हैं ॥ १२७-१३० ॥

*"झर्झरं झर्झरा"वेति लोके ॥ १२७-१३० ॥

यहां पर मूल में झर्झर या झर्झरा से लोकप्रसिद्ध झरनी का बोध करना चाहिये ॥१२७-१३०॥

अथ वेसनमोदकाः (मोतीचूर के लड्डू)। तेषां साधनं गुणांश्चाह

एवमेव प्रकारेण कार्या वेसनमोदकाः ॥ १३१ ॥
ते बल्या लघवः शीताः किञ्चिद्वातकरास्तथा । विष्टम्भिनो ज्वरघ्नाश्च पित्तरक्तकफापहाः ॥

मोतीचूर के लड्डू बनाने की विधि—इसी प्रकार से अर्थात् उपर्युक्त बूंदी के समान बेसन के भी लड्डू बनाने चाहिये। बेसन के लड्डू—बलकारक, लघु, शीतल, किञ्चिद् वायु उत्पन्न करने वाले, विष्टम्भकारक, ज्वरनाशक तथा पित्त, रक्तविकार और कफ को दूर करने वाले होते हैं ॥

अथ दुग्धकूपिका । तस्याः साधनं गुणांश्चाह

तण्डुलचूर्णविमिश्रितनष्टक्षीरेण सान्द्रपिष्टेन । दृढकूपिकां विदध्यात्ताञ्च पचेत्सर्पिषा सम्यक् ॥
अथ तां कोरितमध्यां घनपयसा पूर्णगर्भाञ्च । सट्टकमुद्रितवदनां तप्तघृते सुपक्ववदनाञ्च ॥
अथ पाण्डुखण्डपाके स्नपयेत्कर्पूरवासिते कुशलः ।
अथ दुग्धकूपिका सा बल्या पित्तानिलापहा चैव ॥ १३४ ॥
वृष्या शीता गुर्वी शुक्रकरी च तर्पणी रुच्या । विदधाति कायपुष्टिं दृष्टिं दूरप्रसारिणीं सुचिरम् ॥

दुग्धकूपिका बनाने की विधि—चावलों के चूर्ण में छेना (दूध को खटाई आदि डाल कर फाड़ देने से जो घन भाग अलग हो जाता है उसे छेना कहते हैं) मिलाकर खूब मर्दन करे, तत्पश्चात् उसकी मजबूत कुप्पी बना ले और उसे घी में पका ले, उसके बाद कुपी के मध्य भाग में छेद करके गाढे दूध से उसे भर दे, पश्चात् पूर्वोक्त सट्टक से उसका मुख दृढ़ता से बन्द कर दे, पश्चात् पुनः घी में पका दे, जब उसका मुख सिक जाय तब कपूर से सुवासित सफेद चीनी की चाशनी में उसे भिगो दे। इसी को पाकशास्त्र में कुशल लोग-दुग्धकूपिका कहते हैं।

दुग्धकूपिका—बलकारक, पित्त तथा वायु को नष्ट करनेवाली, वृष्य, शीतल, गुरु, शुक्रजनक, तृप्तिकारक, रुचिजनक एवम्—शरीर की पुष्टि तथा चिर काल तक दूर तक देखने की शक्ति को करने वाली होती है ॥ १३३–१३६ ॥

अथ कुण्डलिनी ("जलेबी" इति लोके)। तस्याः साधनं गुणांश्चाह

नूतनं घटमानीय तस्यान्तः कुशलो जनः। प्रस्थार्द्धपरिमाणेन दध्नाऽम्लेन प्रलेपयेत् ॥१३७॥
द्विप्रस्थां समितां तत्र दध्यम्लं प्रस्थसम्मितम्। घृतमर्द्धशरावञ्च घोलयित्वा घटे क्षिपेत् ॥
आतपे स्थापयेत्तावद् यावद्याति तदम्लताम्। ततस्तत्प्रक्षिपेत्पात्रे सच्छिद्रे भाजने तु तत् ॥
परिभ्राम्य परिभ्राम्य सुसन्तप्ते घृते क्षिपेत्। पुनःपुनस्तदावृत्त्या विदध्यान्मण्डलाकृतिम् ॥
तां सुपक्वां घृतान्नीत्वा सितापाके तनुद्रवे। कर्पूरादिसुगन्धे च स्नापयित्वोद्धरेत्ततः ॥१४१॥
एषा कुण्डलिनी नाम्ना पुष्टिकान्तिबलप्रदा। धातुवृद्धिकरी वृष्या रुच्या चेन्द्रियतर्पणी ॥

जलेबी बनाने की विधि—पाकविद्या में जो निपुण हो, वह एक नवीन घड़ा लेकर उसके अन्दर आधा प्रस्थ (३२ रुपये भर) खट्टा दही लेकर उससे चारो तरफ लेप कर दे, उसके बाद २ प्रस्थ (१२८ रुपये भर अर्थात् १ सेर ९ छटाक ३) भर) मैदा, १ प्रस्थ (६ छटाक २) भर खट्टा दही, आधा शराव (३ छटाक १) भर) घी, इन सबों को खूब घोल कर उक्त घड़े मे रख कर धूप में जब तक उक्त पदार्थ खट्टे न हो जायं तब तक रहने दे। खट्टे हो जाने के बाद घड़े में से निकाल कर उक्त पदार्थों को जिसमें एक छिद्र कनिष्ठिका अंगुली जाने लायक से कुछ छोटा हो, उस पात्र में रखकर खौलते हुए घी की कढ़ाई में पात्र को घुमा २ कर मण्डलाकार एक मण्डल के भीतर दूसरा मण्डल इस भांति से जैसा छोटा या बड़ा बनाना हो, वैसा मण्डल बना ले, और जब वह पक जाय तब निकाल कर पतली चीनी की चाशनी में डुबो दे और ऊपर से कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों का चूर्ण बुरका दे, तत्पश्चात् धीरे से निकाल कर अलग पात्र में रख दे, इसी को जलेबी कहते हैं ॥

जलेबी—पुष्टि, कान्ति तथा बल को देने वाली, धातुवर्धक, वीर्यवर्धक, रुचिकारक तथा इन्द्रिय अर्थात् रसनेन्द्रिय को तृप्त करने वाली होती है ॥ १३७–१४२ ॥

अथ पश्चात् परिवेष्याणि। तत्र रसाला (श्रीखण्ड)। तस्याः साधनं सेवनार्हजनान् गुणाँश्चाह

आदौ माहिषमम्लमम्बुरहितं दध्याढकं शर्करां
शुभ्रां प्रस्थयुगोन्मितां शुचिपटे किञ्चिच्च किञ्चित्क्षिपेत्।
दुग्धेनार्द्धघटेन मृण्मयनवस्थाल्यां दृढं स्रावये-
देलाबीजलवङ्गचन्द्रमरिचैर्योग्यैश्च तद्योजयेत् ॥
भीमेन प्रियभोजनेन रचिता नाम्ना रसाला स्वयं
श्रीकृष्णेन पुरा पुनः पुनरियं प्रीत्या समास्वादिता।

एषा येन वसन्तवर्जितदिने संसेव्यते नित्यश-
स्तस्य स्यादतिवीर्यवृद्धिरनिशं सर्वेन्द्रियाणां बलम् ॥ १४४ ॥
ग्रीष्मे तथाशरदि ये रविशोषिताङ्गा ये च प्रमत्तवनितासुरतातिखिन्नाः।
ये चापि मार्गपरिसर्पणशीर्णगात्रा-स्तेषामियं वपुषि पोषणमाशु कुर्यात् ॥ १४५ ॥
रसाला शुक्रला बल्या रोचनी वातपित्तजित् ॥ १४६ ॥
दीपनी बृंहणी स्निग्धा मधुरा शिशिरा सरा। रक्तपित्तं तृषां दाहं प्रतिश्यायं विनाशयेत् ॥

भोजन के पश्चात् परोसने योग्य पदार्थों में प्रथम श्रीखण्ड बनाने की विधि कहते हैं—प्रथम भैंस का जल रहित खट्टा दही १ आढक (३ सेर ३ छटाक १) भर), सफेद शक्कर का बूरा २ प्रस्थ (१ सेर ९ छटाक ३) भर), और आधा घट (२ आढक अर्थात् ५ सेर ६ छटाक २) भर) दूध लेकर इन सबको एक साफ कपड़े पर धीरे २ डाल कर खूब मसल कर के नीचे एक मिट्टी के पात्र में छान ले, पश्चात् उसमें छोटी इलायची के बीज, लौंग, कपूर, मरिच इत्यादि द्रव्यों का चूर्ण आवश्यकताऽनुसार डाल दे। इसी को श्रीखण्ड कहते हैं, इसे सर्वप्रथम उत्तम भोजन करने तथा बनाने वाले कुन्तीपुत्र भीम ने बनाया था और इसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अत्यन्त स्वादिष्ट होने से बारम्बार लेकर प्रीतिपूर्वक खाया था, तथा इसे जो कोई वसन्त ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में प्रतिदिन खाता है, उसके वीर्य को अत्यन्त वृद्धि और सम्पूर्ण इन्द्रियों में बल की वृद्धि होती है। एवम् ग्रीष्म तथा शरद् ऋतु में सूर्य की किरणों से जिनके शरीर सूख गये हैं, जो काम मद से मतवाली स्त्रियों के साथ रमण करने से अत्यन्त खिन्न हो गये हैं तथा अत्यन्त मार्ग चलने से जिनके शरीर शिथिल हो गये हैं, उन लोगों के लिये यह श्रीखण्ड तत्काल शरीर की पुष्टि करने वाला होता है।

श्रीखण्ड—शुक्रजनक, बलकारक, रोचक, वात तथा पित्तनाशक, अग्निदीपक, बृंहण, स्निग्ध, मधुर, शीतल, सारक एवम् रक्तपित्त, तृषा, दाह और जुकाम को दूर करने वाला होता है ॥ १४३ १४७ ॥

अथ शर्करोदकम् (सरबत)। तस्य साधनं गुणांश्चाह

जलेन शीतलेनैव घोलिता शुभ्रशर्करा। एलालवङ्गकर्पूरमरिचैश्च समन्विता ॥ १४८ ॥
शर्करोदकनाम्ना तत्प्रसिद्धं विदुषां मुखैः। शर्करोदकमाख्यातं शुक्रलं शिशिरं सरम् ॥१४९॥
बल्यं रुच्यं लघु स्वादु वातपित्तप्रणाशनम्। मूर्च्छाच्छर्दितृषादाहज्वरशान्तिकरं परम् ॥१५०॥

शर्बत बनाने की विधि—सफेद चीनी को शीतल जल में घोलकर उसमें इलायची, लौंग, कपूर, तथा मरिच पीस कर डाल दे. पश्चात् छान कर पीवे, इसी को पण्डित लोग शर्बत कहते हैं।

शर्बत—शुक्रजनक, शीतल, सारक, बलकारक, रोचक, लघु, स्वादिष्ट, वात तथा पित्तनाशक एवम्-मूर्च्छा, वमन, प्यास, दाह तथा ज्वर को अत्यन्त शान्त करने वाला होता है। १४८–१५०॥

अथ प्रपाणकानि (सरबत)। तत्राम्रफलप्रपाणकम्। तस्य साधनं गुणांश्चाह

आम्रमामं जले स्विन्नं मर्दितं दृढपाणिना। सिताशीताम्बुसंयुक्तं कर्पूरमरिचान्वितम् ॥१५१॥
प्रपाणकमिदं श्रेष्ठं भीमसेनेन निर्मितम्। सद्यो रुचिकरं बल्यं शीघ्रमिन्द्रियतर्पणम् ॥१५२॥

प्रपाणक अर्थात् सरबत अथवा पना में प्रथम आमका पना बनाने की विधि—कच्चा आम जल में उबाल कर हाथ से खूब मसलकर उसका रस निकाल ले और उसमें सफेद चीनी, शीतल जल मात्राऽनुसार डाल कर पुनः कपूर तथा मरिच का चूर्ण मिला दे।

इसी को आम का पना कहते हैं, यह उत्तम होता है। इसे भीमसेन ने सर्वप्रथम बनाया था। यह पीने से तत्काल ही रुचि को बढ़ाने वाला, बलकारक तथा शीघ्र इन्द्रियों को तृप्त करने वाला होता है ॥ १५१–१५२ ॥

अथाम्लिकाफलपानकम् । तस्य साधनं गुणांश्चाह

अम्लिकायाः फलं पक्वं मर्दितं वारिणा दृढम् । शर्करामरिचैर्मिश्रं लवङ्गेन्दुसुवासितम् ॥१५३॥
अम्लिकाफलसम्भूतं पानकं वातनाशनम् । पित्तश्लेष्मकरं किञ्चित्सुरुच्यं वह्निबोधनम् ॥

इमली का पना बनाने की विधि—इमली के पके फलों को प्रथम जल में भिगो दे, तत्पश्चात् हाथ से खूब मसल कर छानकर उसमें साफ शक्कर, मरिच, लवङ्ग तथा कपूर का चूर्ण मिला दे।

इमली का पना—वातनाशक, एवम् किञ्चित् पित्त तथा कफकारक, अत्यन्त रोचक और जठराग्नि को उद्दीप्त करने वाला होता है ॥ १५३–१५४ ॥

अथ निम्बुकफलपानकम् । तस्य साधनं गुणांश्चाह

भागैकं निम्बुजं तोयं षड्भागं शर्करोदकम् । लवङ्गमरिचैर्मिश्रं पानं पानकमुत्तमम् ॥१५५॥
निम्बूकफलभवं पानमत्यम्लं वातनाशनम् । वह्निदीप्तिकरं रुच्यं समस्ताहारपाचकम् ॥१५६॥

नीम्बू का पानक बनाने की विधि—निम्बू का रस १ भाग, चीनी का शर्बत ६ भाग, इन दोनों को एकत्र कर उसमें लवङ्ग तथा मरिच मात्राऽनुसार मिला देने से पीने योग्य उत्तम पानक तैयार होता है। निम्बू का पानक—अत्यन्त अम्ल रसयुक्त, वातनाशक, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, रोचक तथा सभी प्रकार के आहार को पचाने वाला होता है १५५–१५६ ॥

अथ धान्याकपानकम् । तस्य साधनं गुणांश्चाह

शिलायां साधु सम्पिष्टं धान्याकं वस्त्रगालितम् ।
शर्करोदकसंयुक्तं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । नूतने मृण्मये पात्रे स्थितं पित्तहरं परम् ॥ १५७ ॥

धनियें का पानक बनाने की विधि तथा गुण—धनियें को प्रथम सिल पर भली भाँति पीस कर वस्त्र से छान ले, पश्चात् उसमें मात्राऽनुसार चीनी का शर्बत मिलाकर तथा कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुगन्धित करके नवीन मिट्टी के पात्र में रख दे, पश्चात् इच्छानुसार पीने से यह पित्त को अत्यन्त नष्ट करता है ॥ १५७ ॥

अथ काञ्जी । तस्यागुणानाह

काञ्जिकं रोचनं रुच्यं पाचनं वह्निदीपनम् ॥ १५८ ॥
शूलाजीर्णविबन्धघ्नं कोष्ठशुद्धिकरं परम् । न भवेत्काञ्जिकं यत्र तत्र जालिः प्रदीयते ॥१५९॥

काञ्जी—रोचक, तथा स्वयं रुचने वाली, पाचक, अग्निदीपक एवम् शूल, अजीर्ण तथा विबन्ध (मलबन्ध) को नष्ट करने वाली एवम् कोष्ठ को अत्यन्त शुद्ध रखने वाली होती है।

यदि काञ्जी न मिले तो उसके अभाव में निम्नलिखित जाली का प्रयोग करना चाहिये ॥

ॐकाञ्जीविधिर्वटकावसरे लिखितः ॥ १५८–१५९ ॥

यहाँ पर यह और भी समझ लेना चाहिये कि—काञ्जी बनाने की विधि पूर्व में वटक बनाने की विधि में कह आये हैं अतः पुनः उल्लेख नहीं किया गया ॥ १५८–१५९ ॥

अथ जालिः । तस्य साधनं गुणांश्चाह

आममाम्रफलं पिष्टं राजिकालवणान्वितम् । भृष्टहिङ्गुयुतं पूतं घोलितं जालिरुच्यते ॥१६०॥
जालिर्हरति जिह्वायाः कुण्ठत्वं कण्ठशोधिनी । मन्दं मन्दन्तु पीता सा रोचनी वह्निबोधिनी ॥

जाली बनाने की विधि—आम के कच्चे फल को पीसकर उसमें मात्राऽनुसार राई तथा सेंधा नमक मिलाकर घोल ले, पश्चात् छान कर उसमें भुने हुए हींग का चूर्ण मिला दे। इसी को जाली कहते हैं।

जाली—जीभ की जड़ता को दूर करने वाली तथा कण्ठ को शुद्ध करने वाली होती है। एवम् यदि इसे धीरे २ पिया जाय तो यह रोचक तथा अग्नि को बढ़ाने वाली होती है ॥१६०–१६१॥

अथ तक्रम् (छाछ) । तस्य साधनं गुणांश्चाह

तुर्यांशेन जलेन संयुतमतिस्थूलं सदम्लं दधि
प्रायोमाहिषमम्बुकेन विमले मृद्भाजने गालयेत् ।
भृष्टं हिंगु च जीरकञ्चलवणं राजीञ्च किञ्चिन्मितां
पिष्टां तत्र विमिश्रयेद्भवति तत्तक्रं न कस्य प्रियम् ॥
तक्रं रुचिकरं वह्निदीपनं पाचनं परम् । उदरे ये गदास्तेषां नाशनं तृप्तिकारकम् ॥ १६३ ॥

छाछ बनाने की विधि—प्रायः करके अत्यन्त गाढ़ा तथा खट्टा भैंस का दही लेकर उसमें चतुर्थांश जल मिला कर मथ डाले, तत्पश्चात् वस्त्र से स्वच्छ मिट्टी के पात्र में छान ले और उसमें मात्राऽनुसार भुनी हुई हींग, भुना हुआ जीरा, सेंधानिमक, इन सब का चूर्ण तथा थोड़ी मात्रा में राई पीसकर मिला देनेसे छाछ तैयार हो जाता है, जो किसको प्रिय नहीं लगता है अर्थात् सभी लोग इसे रुचि से पीते हैं।

छाछ—रुचिकारक, अग्निदीपक, अत्यन्त पाचक एवम् उदरसम्बन्धी जितने रोग हैं सभी को नष्ट करने वाला तथा तृप्ति देने वाला होता है ॥ १६३ ॥

अथ दुग्धम् (दूध) । तस्य भोजनान्ते पानगुणानाह

विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुङ्क्ते हि मानवः । तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं भोजनान्ते पयः पिबेत् ॥

भोजन के अन्त में दूध पीने के गुण—यदि मनुष्य भोजन में विदाही (दाहकारक) अन्न पानादि का प्रयोग करे तो उसे उचित है कि-उससे उत्पन्न होने वाले दाह की शान्ति के लिये भोजन के अन्त में दुग्धपान अवश्य करे ॥ १६४ ॥

दुग्धस्यापरे गुणा उक्ता एव दुग्धवर्गे ॥ १६४ ॥

यहाँ पर यह भी समझना चाहिये कि इसके अतिरिक्त दुग्ध के अन्य जो गुण हैं, वे आगे दुग्ध-वर्ग में कहे जायेंगे। अतः यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया ॥ १६४ ॥

अथ सक्तवः (सत्तू) । तस्य साधनविधिमाह

धान्यानि भ्राष्ट्रभृष्टानि यन्त्रपिष्टानि सक्तवः ॥ १६५ ॥

सत्तू बनाने की विधि—भाड़ में भूजे हुये चावल जौ आदि धान्यों को यदि चक्की में पीस दिया जाय तो वे सत्तू कहलाते हैं ॥ १६५ ॥

तत्र यवसक्तवः । तेषां गुणानाह

यवजाः सक्तवः शीता दीपना लघवः सराः । कफपित्तहरा रूक्षा लेखनाश्च प्रकीर्त्तिताः॥१६६॥
ते पीता बलदा वृष्या बृंहणा भेदनास्तथा । तर्पणा मधुरा रुच्याः परिणामे बलावहाः॥१६७॥
कफपित्तश्रमक्षुत्तृड्व्रणनेत्रामयापहाः । प्रशस्ता घर्मदाहाध्वव्यायामार्त्तशरीरिणाम् ॥१६८॥

जौ का सत्तू—शीतल, अग्निदीपक, लघु, सारक, कफ तथा पित्त नाशक, रूक्ष तथा लेखन गुण युक्त होता है। यदि सत्तू को जल में घोल कर पीया जाय तो वह बलदायक, वीर्यवर्धक, बृंहण, मल का भेदन करने वाला, तृप्तिकारक, मधुर, रुचनेवाला, परिणाम में (पचने पर) बल देने वाला एवम् कफ, पित्त, श्रम, भूख, प्यास, व्रण तथा नेत्ररोग को दूर करने वाला होता है। और धूप, दाह, चलने की थकावट, व्यायाम इनसे पीड़ित लोगों के लिये हितकर है ॥१६६-१६८॥

अथ चणकयवसक्तवः । तेषां साधनं गुणाँश्चाह

निस्तुषैश्चणकैर्भृष्टैस्तुर्यांशैश्च यवैः कृताः । सक्तवः शर्करासर्पिर्युक्ता ग्रीष्मेऽतिपूजिताः ॥१६९॥

जौ मिले हुए चनों का सत्तू बनाने की विधि—चने को भून कर उसके छिलके को अलग कर के उस में भुने जौ को चने की अपेक्षा चतुर्थांश मिला कर पीस कर तैयार करने से जो सत्तू होता है उसे यव मिश्रित चने का सत्तू कहते हैं।

यवमिश्रित चने का सत्तू—यदि शकर तथा घी मिला कर ग्रीष्म ऋतु में खाया जाय तो अत्युत्तम होता है ॥ १६९ ॥

अथ शालिसक्तवः । तेषां गुणानाह

सक्तवः शालिसम्भूता वह्निदा लघवो हिमाः । मधुरा ग्राहिणो रुच्याः पथ्याश्च बलशुक्रदाः ॥

चावल का सत्तू—अग्निकारक, लघु, शीतल, मधुर रसयुक्त, ग्राही, स्वयं रुचिकर, पथ्य, एवम् बल तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १७० ॥

अथ सक्तुविषये सामान्यपरिभाषामाह

न भुक्त्वा न रदैश्छित्वा न निशायां न वा बहून् । नजलान्तरितानद्भिः सक्तूनद्यान्न केवलान् ॥
पृथक्पानं पुनर्दानं सामिषं पयसा निशि । दन्तच्छेदनमुष्णञ्च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ १७०॥

सत्तू के विषय में सामान्य परिभाषायें—भोजन करने के उपरान्त या दाँतों से काट २ कर वा रात्रि में, अथवा अधिकमात्रा में, किंवा सत्तू खाने के बीच में बार २ जल पीपी कर या जल के साथ केवल सत्तू को कभी नहीं खाना चाहिये।

सत्तू के सम्बन्ध में त्याग करने योग्य ७ बातें—१ सत्तू खाने के समय पृथक् जल पान करना, २ एक बार सत्तू जिसने खा लिया पुनः उसी समय दुबारा उसे सत्तू देना, ३ मांस के साथ सत्तू खाना, ४ केवल जल के साथ सत्तू खाना, ५ रात्रि में सत्तू भोजन करना, ६ दाँतों से काट २ कर खाना, ७ गरम करके खाना, ये ७ बातें सत्तू के विषय में त्याग करने योग्य हैं ॥ १७१-१७२ ॥

अथ धानाः (बहुरी) तासां साधनं गुणाँश्चाह

यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः स्मृता धाना इति स्त्रियाम् ।
धानाः स्युर्दुर्जरा रूक्षास्तृट्प्रदा गुरवश्च ताः । तथा मेहकफच्छर्दिनाशिन्यः सम्प्रकीर्तिताः ॥

बहुरी बनाने की विधि—जौ को कूट कर तथा भूसी अलग कर जो भाड़ में भूना जाता है उसे "बहुरी" कहते हैं। इसे संस्कृत में "धाना" कहते हैं। धाना शब्द स्त्रीलिङ्ग में होता है।

बहुरी—देर में हजम होने वाली, रूक्ष, प्यास लगाने वाली, गुरु एवम्-प्रमेह, कफ तथा वमन को नष्ट करने वाली होती है ॥ १७३ ॥

अथ लाजाः (खील) । तेषां साधनं गुणाँश्चाह

येषां स्युस्तण्डुलास्तानि धान्यानि सतुषाणि च । भृष्टानि स्फुटितान्याहुर्लाजा इति मनीषिणः॥
लाजाः स्युर्मधुराः शीता लघवो दीपनाश्च ते । स्वल्पमूत्रमला रूक्षा बल्याः पित्तकफच्छिदः॥
छर्द्यतीसारदाहास्रमेहमेदस्तृषाऽपहाः ॥ १७५ ॥

खील बनाने की **विधि**—जिन धान्यों के चावल होते हैं वे धान्य भूसी (छिल्के) के साथ ही अर्थात् बिना कूटे ही यदि भून दिये जायं तो खिल जाते हैं। उन्हीं को पण्डित लोग संस्कृत में "लाजाः" कहते हैं। (इस का प्रयोग नित्य पुंल्लिङ्ग बहुवचन में ही होता है) और हिन्दी में "खील" कहते हैं।

खील—मधुर रस युक्त, शीतल, लघु, अग्निदीपक, स्वल्प मूत्र तथा मल को लाने वाले, रूक्ष, बलकारक, एवम्—पित्त, कफ, वमन, अतिसार, दाह, रक्तविकार, प्रमेह, मेद तथा तृषा को दूर करने वाले होते हैं ॥ १७४-१७५ ॥

अथ चिपिटाः (चिउडा) । तेषां साधनं नामानि गुणाँश्चाह

शालयः सतुषा आर्द्रा भृष्टा अस्फुटितास्ततः । कुट्टिताश्चिपिटाःप्रोक्तास्ते स्मृताः पृथुका अपि ॥
पृथुका गुरवो वातनाशनाः श्लेष्मला अपि । सक्षीरा बृंहणा वृष्या बल्या भिन्नमलाश्च ते ॥

चिउड़ा बनाने की विधि—शालि (जड़हन) धान्य भूसी के सहित ही भिगो कर गीले ही यदि भून दिये जायं और खिलने न पावे तो उसे उखल में कूट कर पश्चात् भूसी अलग कर देने से वे ही संस्कृत में 'चिपिट' और हिन्दी में 'चिउड़ा" कहे जाते हैं और "पृथुक' भी संस्कृत नाम इन्हीं का है।

चिउड़ा—गुरु, वातनाशक, कफकारक, क्षारयुक्त, बृंहण (रस रक्तादिवर्धक), वीर्यवर्धक, बलकारक, तथा मल भेदन करने वाला होता है ॥ १७६-१७७ ॥

अथ होलकः (होरहा) । तस्य साधनं गुणाँश्चाह

अर्द्धपक्वैः शमीधान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलकः । होलकोऽल्पानिलो मेदःकफदोषत्रयापहः ॥
भवेद् यो होलको यस्य स च तत्तद्गुणो भवेत् ॥ १७८ ॥

होरहा बनाने की विधि—अधपके, शमी धान्य चना आदि को तृण की अग्नि में भून देने से वे होरहा कहलाते हैं। संस्कृत में इसी को "होलक" कहते हैं।

होरहा—किञ्चित् वातकारक तथा मेद, कफ और त्रिदोष को नष्ट करने वाला होता है। और शेष गुण होरहा जिस अन्न का बनाया जाय उसी के समान होते हैं ॥ १७८ ॥

अथ ऊची (ऊंबी) । तस्या साधनं गुणाँश्चाह

मञ्जरी स्वर्द्धपक्वा या यवगोधूमयोर्भवेत् । तृणानलेन संभृष्टा बुधैरूचीति सा स्मृता ॥
ऊची कफप्रदा बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा ॥ १७९ ॥

ऊंबी बनाने की विधि—जव या गेहूं की अधपकी जो मञ्जरी होती है, वह यदि तृण की अग्नि में भून दी जाय तो उसे पंडित लोग संस्कृत में ऊची कहते हैं।

ऊंबी—कफकारक, बलदायक, लघु एवम् पित्त तथा वायु को नष्ट करने वाली होती है ॥ १७९ ॥

❀ ऊंबी = "उम्बी, उमिया" इति लोके ॥ १७९ ॥

ऊंबी को लोक में "उम्बी या उमिया" कहते हैं ॥ १७९ ॥

अथ कुल्माषाः (घुघुरी) । तेषां साधनं गुणाँश्चाह

अर्धस्विन्नास्तु गोधूमा अन्येऽपि चणकादयः ॥ १८९ ॥

कुल्माषा इति कथ्यन्ते शब्दशास्त्रेषु पण्डितैः । कुल्माषागुरवो रूक्षा वातला भिन्नवर्चसः ॥

घुघुरी बनाने की विधि—गेहूं, इसके अतिरिक्त चना आदि जो अन्न हैं वे यदि आधे सीजा कर दिये जायं तो शब्दशास्त्र के विद्वान् लोग उसे संस्कृत में "कुल्माष" कहते हैं ।

घुघुरी—गुरु, रूक्ष, वात-कारक तथा मल का भेदन करने वाली होती है ॥ १८०–१८१ ॥

अथ पललम् (तिलकुट) । तस्य नामानि साधनं गुणाँश्चाह

पललन्तु समाख्यातं सैत्तवं तिलपिष्टकम् । पललं मलकृद् वृष्यं वातघ्नं कफपित्तकृत् ॥

बृंहणं च गुरु स्निग्धं मूत्राधिक्यनिवर्त्तकम् ॥ १८२ ॥

तिलकुट बनाने की विधि—यदि तिलों को कूट कर उसमें गुड या शक्कर मिला दिया जाय तो उसे संस्कृत में "पलल" कहते हैं ।

तिलकुट—मलकारक, वीर्यवर्धक, वातनाशक, कफ तथा पित्त-कारक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), गुरु, स्निग्ध, एवम् मूत्र की यदि अधिक प्रवृत्ति होती हो तो उसे रोकने वाला होता है ॥ १८२ ॥

अथ पिण्याकः (तिलकी खली) । तस्य नामानि गुणाँश्चाह

तिलकिट्टन्तु पिण्याकस्तथा तिलखलिः स्मृता । पिण्याको लेखनो रूक्षो विष्टम्भी दृष्टिदूषणः ॥

तिल की खली के संस्कृत नाम—तिलकिट्ट, पिण्याक तथा तिलखलि ये सब हैं ।

तिल की खली—लेखन गुण युक्त, रूक्ष, विष्टम्भकारक, एवम् दृष्टि को दूषित करने वाली होती है ॥ १८३ ॥

अथ तण्डुलः (चावल) । तस्य गुणानाह

तण्डुलो मेहजन्तुघ्नः स नवस्त्वतिदुर्जरः ॥ १८४ ॥

चावल—प्रमेह तथा जन्तुओं का नाशक होता है । परन्तु यदि वही नवीन हो तो अत्यन्त दुर्जर (देर में हजम होने वाला) होता है ॥ १८४ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे

मिश्रप्रकरणे द्वादशः कृतान्नवर्गः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ वारिवर्गः

तत्र पानीयस्य नामानि गुणाँश्चाह

पानीयं सलिलं नीरं कीलालं जलमम्बु च । आपो वार्वारि कं तोयं पयः पाथस्तथोदकम् ॥

जीवनं वनमम्भोऽर्णोऽमृतं घनरसोऽपि च ॥ १ ॥

पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्च्छापिपासापहं-

तन्द्राच्छर्दिविबन्धहृद्बलकरं निद्राहरं तर्पणम् ।

हृद्यं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलं-

लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम् ॥ २ ॥

जल के संस्कृत नाम—पानीय, सलिल, नीर, कीलाल, जल, अम्बु, आपः (अप् यह नित्य बहुवचनान्त है) वार् , वारि, क, तोय, पयः (पयस्), पाथः (पाथस्), उदक, जीवन, वन, अम्भः (अभस्), अर्णः (अर्णस्), अमृत तथा घनरस ये सब हैं ।

जल—श्रम को दूर करने वाला, क्लान्तिनाशक, मूर्च्छा तथा प्यास को नष्ट करने वाला एवम् तन्द्रा, वमन और विबन्ध को हटाने वाला, बलकारक, निद्रा को दूर करने वाला, तृप्तिदायक, हृदय के लिये हितकर, अव्यक्त रस वाला, अजीर्ण का शमन करने वाला, सदा हितकारक, शीतल, लघु, स्वच्छ, सम्पूर्ण मधुरादि रसों का कारण एवम् अमृत के समान जीवनदाता शास्त्रों में कहा हुआ है ॥ १–२ ॥

अथ पानीयस्य भेदानाह

पानीयं मुनिभिः प्रोक्तं दिव्यं भौममिति द्विधा ।

दिव्यं चतुर्विधं प्रोक्तं धाराजं करकाभवम् । तौषारञ्च तथा हैमं तेषु धारं गुणाधिकम् ॥४॥

जल के भेद—मुनियों ने दिव्य तथा भौम इन भेदों से जल दो प्रकार का कहा है । इस में दिव्य जल—१ धाराज, २ करकाभव, ३ तौषार, ४ हैम इन भेदों से ४ प्रकार का कहा हुआ है । इन में धार अर्थात् धाराज जो जल है वह अन्य की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है ॥ ३–४ ॥

अथ धाराजलस्य लक्षणानि गुणांश्चाह

धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्फीतवाससा । शिलायां वसुधायां वा धौतायां पतितञ्च तत् ॥

सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते । भाजने मृण्मये वाऽपि स्थापितं धारमुच्यते ॥६॥

धारं नीरं त्रिदोषघ्नमनिर्देश्यरसं लघु । सौम्यं रसायनं बल्यं तर्पणं ह्लादि जीवनम् ॥७॥

पाचनं मतिकृन्मूर्च्छातन्द्रादाहश्रमक्लमान् । तृष्णां हरति तत् पथ्यं विशेषात्प्रावृषि स्मृतम् ॥

धार जल के लक्षण—धारा रूप से आकाश से गिरा हुआ जल यदि धुली हुई स्वच्छ शिला या पृथ्वी पर गिरा हो तो उसे लेकर स्वच्छ मोटे वस्त्र से छान कर सोना, चांदी, तांबा, स्फटिक, कांच अथवा मिट्टी इनमें से चाहे जिस किसी के बने हुये बर्त्तन में रख दे, इसीको धारसंज्ञक जल कहते हैं ।

धारजल—त्रिदोषनाशक तथा अनिर्देश्यरस वाला है (इस में कौन सा रस है इसका जिह्वा के द्वारा ठीक २ निर्णय नहीं हो सकता अतः इसे अनिर्देश्यरस वाला कहते हैं), लघु,

सौम्य (सोमगुण युक्त), रसायन, बलकारक, तृप्तिदायक, आह्लाद उत्पन्न करने वाला, जीवन स्वरूप, पाचक, बुद्धिवर्द्धक, एवम्-मूर्च्छा, तन्द्रा, दाह, श्रम, क्लान्ति, प्यास इन सबों को दूर करने वाला तथा वर्षा ऋतु का विशेषतः पथ्य होता है ॥ ५-८ ॥

अथ धाराजलस्य भेदानाह

धाराजलं च द्विविधं गाङ्गसामुद्रभेदतः ॥ ९ ॥

धाराजल के भेद—गाङ्ग तथा सामुद्र इन भेदों से धाराजल दो प्रकार का होता है ॥ ९ ॥

अथ गाङ्गसामुद्रयोर्जलयोर्लक्षणं गुणांश्चाह

आकाशगङ्गासम्बन्धिजलमादाय दिग्गजाः । मेघैरन्तरिता वृष्टिं कुर्वन्तीति वचः सताम् ॥
गाङ्गमाश्वयुजे मासि प्रायो वर्षति वारिदः । सर्वथा तज्जलं ज्ञेयं तथव चरके वचः ॥ ११ ॥
स्थापिते हेमजे पात्रे राजते मृण्मयेऽपि वा । शाल्यन्नं येन संसिक्तं भवेदक्लेदि वर्णवत् ॥
तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं ज्ञेयं सामुद्रमन्यथा । तत्तु सक्षारलवणं शुक्रदृष्टिबलापहम् ॥ १३ ॥
विस्रञ्च दोषलं तीक्ष्णं सर्वकर्मसु नो हितम् । सामुद्रं त्वाश्विने मासि गुणैर्गाङ्गवदादिशेत् ॥

गाङ्गजल के लक्षण—सत्पुरुषों का यह कथन है कि—दिग्गज लोग आकाश गङ्गा का जल लेकर मेघों के द्वारा छिपे हुये होकर बरसाते हैं। प्रायः करके मेघ आश्विन (क्वार) मास में जो जल बरसाता है उसे सर्वथा (निश्चित रूप से) उक्त गङ्गाजल ही समझना चाहिये। चरक में भी इसके विषय में वचन मिलता है कि—सोना-चांदी अथवा मिट्टी के बर्त्तन में रखते हुए जिस धारा जल में भिगोया हुआ शालि धान्य का चावल क्लिन्न तथा विवर्ण न हो जाय अर्थात् जैसा का तैसा बना रह जाय तो उसे सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करने वाला गाङ्गसंज्ञक धाराजल समझना चाहिये।

सामुद्रसंज्ञक धाराजल के लक्षण—यदि उक्त क्रम से भिगोया हुआ चावल अन्यथा अर्थात् क्लिन्न तथा विवर्ण हो जाय (फूल जाने से रङ्ग बदल जाय) तो उसे सामुद्र (धाराजल) समझना चाहिये।

सामुद्र संज्ञक धाराजल—क्षार तथा लवण रस युक्त, शुक्र तथा दृष्टिशक्ति (या दृष्टि शक्ति और बल) नाशक, विस्र (दुर्गन्ध युक्त), दोषकारक तथा तीक्ष्ण होता है। एवम् यह सम्पूर्ण कार्यों में अहितकर होता है अर्थात् किसी भी कार्य में हितकर नहीं होता है। किन्तु यदि यही सामुद्रसंज्ञक धाराजल आश्विन मास का बरसा हुआ संग्रहीत हो तो गुणों में गाङ्गजल के तुल्य ही हितकर होता है ऐसा समझना चाहिये ॥ १०-१४ ॥

अथ शरदि वर्षासु च जलस्य निर्विषत्वे च हेतुमाह

यतोऽगस्त्यस्य दिव्यर्षेरुदयात्सकलं जलम् । निर्मलं निर्विषं स्वादु शुक्रलं स्याददोषलम् ॥

शरत् तथा वर्षा ऋतु में क्रम से जल के निर्विष तथा सविष होने का कारण यह है कि—उस समय (आश्विन मास शरद् ऋतु में) आकाश में अगस्त्य नामक तारा के उदय होने से सम्पूर्ण जल निर्मल, निर्विष, स्वादिष्ट तथा शुक्रजनक होता है, एवम् दोषजनक भी नहीं होता है ॥

अत एवाह

फूत्कारविषवातेन नागानां व्योमचारिणाम् । वर्षासु सविषं तोयं दिव्यमप्याश्विनं विना ॥

अत एव शास्त्र में कहा है कि—वर्षाऋतु में आकाशचारी नागों (दिव्य-सर्पों) के फूत्कार (फुफकार) सम्बन्धी विषयुक्त वायु से दूषित हो जाने से दिव्य (आकाश-सम्बन्धी) जल विषयुक्त

हो जाता है। किन्तु वही (दिव्यजल) आश्विन में विषयुक्त नहीं होता है। अतः आश्विन का जल सर्वोत्तम तथा ग्राह्य होता है ॥ १६ ॥

अथानार्त्तवजलस्य लक्षणं गुणानाह

अनार्त्तवं प्रमुञ्चन्ति वारि वारिधरास्तु यत् । तत्त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनां परिकीर्त्तितम् ॥१७॥

अनार्तवसंज्ञक धाराजल—मेघ जो अनार्तव (बिना ऋतु के) जल बरसाते हैं वह सभी प्राणियों के लिये त्रिदोषकारक होता है।

***अनार्त्तवं पौषादिमासचतुष्टयविषयम् ॥ १७ ॥**

यहां पर मूल में "अनार्त्तव" शब्द से बिना ऋतु के अर्थात् पूस आदि (पूस, माघ, फागुन, चैत) ४ मासों में" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १७ ॥

अथ करकाजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

दिव्यवाय्वग्निसंयोगात् संहताः खात् पतन्ति याः ।
पाषाणखण्डवच्चापस्ताः कारक्योऽमृतोपमाः ॥ १८ ॥
करकाजं जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरम् । दारुणं शीतलं सान्द्रं पित्तहृत्कफवातकृत् ॥ १९ ॥

करकाजल के लक्षण—आकाशस्थ वायु तथा अग्नि के संयोग से घन होकर जो पत्थर के टुकड़े की भांति जल (ओला) गिरता है वह करका या कारकी अर्थात् करका (ओला) सम्बन्धी जल कहलाता है तथा वह अमृत के समान स्वादिष्ट होता है।

करका जल—रूक्ष, विशद, गुरु, स्थिर, शीतल तथा सान्द्र इन गुणों से युक्त, कठिन, पित्त-नाशक तथा कफ और वात को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १८-१९ ॥

अथ तौषारजलस्य लक्षणं गुणांश्चाह

अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निरापस्तदुद्भवाः । धूमावयवनिर्मुक्तास्तुषाराख्यास्तु ताः स्मृताः ॥

तौषार (तुषार सम्बन्धी) जल के लक्षण—नदी से लेकर समुद्र पर्यन्त तक के जल में जो अग्नि रहता है, उससे अर्थात् अग्नि से उत्पन्न होने वाले धूम के अंश से रहित जो जल है वह तुषार संज्ञक कहलाता है ॥ २० ॥

***अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निः = नदीमारभ्य समुद्रपर्यन्ते वह्निरास्ते । तदुद्भवाः-वह्निभवाः, धूमावयवनिर्मुक्ताः = धूमांशरहिताः, आपः = तुषाराख्याः । "तुष" इति लोके "तुषार" इति च ॥ २० ॥**

यहां पर मूल में—"अपि नद्याः समुद्रान्ते वह्निः" इन पदों का "नदी से लेकर समुद्र पर्यन्त तक के जल में जो अग्नि रहती है" "तदुद्भवाः" पद का-"उससे अर्थात् अग्नि से उत्पन्न होने वाले"; "धूमावयवनिर्मुक्ताः" पद का "धूम के अंश से रहित" यह अर्थ समझना चाहिए। तथा लोक में "तुष-" तथा "तुषार" ये दो नाम तुषार के प्रसिद्ध हैं यह भी समझना चाहिये।

अपथ्याः प्राणिनां प्रायो भूरुहाणान्तु ता हिताः ।
तुषाराम्बु हिमं रूक्षं स्याद्वातलमपित्तलम् । कफोरुस्तम्भकण्ठाग्निमेहगण्डादिरोगनुत् ॥

उक्त तुषार सम्बन्धी जल प्राणि मात्र के लिये अपथ्य है किन्तु केवल वृक्षों के लिये हितकर होता है।

तुषार सम्बन्धी जल—शीतल, रूक्ष, वातजनक, किञ्चित् पित्तकारक एवम्–कफ, ऊरुस्तम्भ, कण्ठ तथा अग्नि सम्बन्धी रोग, प्रमेह तथा गलगण्डादि रोग को दूर करने वाला होता है ॥ २१ ॥

अथ हैमजलस्य लक्षणं गुणांश्चाह

हिमवच्छिखरादिभ्यो द्रवीभूयाभिवर्षति ।
यत्तदेव हिमं हैमं जलमाहुर्मनीषिणः । हिमाम्बु शीतं पित्तघ्नं गुरु वातविवर्द्धनम् ॥ २२ ॥

हैम (हिम सम्बन्धी) जल के लक्षण—हिमालय के शिखर आदि स्थानों से द्रवीभूत होकर (पिघल कर) जो हिम (बर्फ) बरसता है अर्थात् आकाश से वायु द्वारा उड़ २ कर इधर उधर गिरता है उसी को हिम कहते हैं और उसके सम्बन्धी जल को पण्डित लोग संस्कृत में "हैमजल" कहते हैं ।

हिम सम्बन्धी जल—शीतल, पित्तनाशक, गुरु एवम् वायु को बढ़ाने वाला होता है ॥२२॥

हैमं जलम् = कुहेसजलम् ॥ २२ ॥

यहां पर "हैम जल" से लोक प्रसिद्ध "कुहेसा का जल" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ २२ ॥

अन्ये तु

और्वानलधूमेरितमम्बु समुद्रस्य यद्घनीभूतम् ।
पवनानीतमुदीच्यां तद्धिममिति कथ्यते सद्भिः ॥ २३ ॥

अन्य आचार्य लोग तो यह कहते हैं कि—वडवानल के धूयें से प्रेरित होकर जो समुद्र का जल वायु द्वारा उत्तर दिशा में पहुंचाये जाने पर घनभाव को प्राप्त हो जाता है उसे पण्डित लोग हिम कहते हैं ॥ २३ ॥

***हिमं = "कुहेसा" इति लोके ॥ २४ ॥**

यहां पर मूलमें "हिम" पदका लोक प्रसिद्ध "कुहेसा" अर्थ समझना चाहिये ॥ २३ ॥

हिमन्तु शीतलं रूक्षं दारुणं सूक्ष्ममित्यपि ।
न तद् दूषयते वातं न च पित्तं न वा कफम् ॥ २४ ॥

हिम—शीतल तथा रूक्ष होता है एवम् दारुण (कठिन), तथा सूक्ष्म भी होता है । और यह न तो पित्त न वात, और न कफ किसी को भी दूषित करता है ॥ २४ ॥

अथ भौमजलस्य भेदानाह

भौममम्भो निगदितं प्रथमं त्रिविधं बुधैः । जाङ्गलं परमानूपं ततः साधारणं क्रमात् ॥ २५ ॥

भौम (भूमि सम्बन्धी) जल के भेद—विद्वानों ने भौम जल को प्रथम–जाङ्गल, आनूप और साधारण इन भेदों से तीन प्रकार का माना है। इनके लक्षण तथा गुण क्रम से आगे कहते हैं ॥२५॥

अथ भौमभेदस्य जाङ्गलादिजलत्रयस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

अल्पोदकोऽल्पवृक्षश्च पित्तरक्तामयान्वितः । ज्ञातव्यो जाङ्गलो देशस्तत्रस्यं जाङ्गलं जलम् ॥
बह्वम्बुर्बहुवृक्षश्च वातश्लेष्मामयान्वितः । देशोऽनूप इति ख्यात आनूपं तद्भवं जलम् ॥२७॥
मिश्रचिह्नस्तु यो देशः सहि साधारणः स्मृतः । तस्मिन्देशे यदुदकं तत्तु साधारणं स्मृतम् ॥
जाङ्गलं सलिलं रूक्षं लवणं लघु पित्तनुत् । वह्निकृत्कफहृत्पथ्यं विकारान्हरते बहून् ॥ २९ ॥

आनूपं वार्यभिष्यन्दि स्वादु स्निग्धं घनं गुरु । वह्निहृत्कफकृद्धृद्यं विकारान्कुरुते बहून् ॥
साधारणं तु मधुरं दीपनं शीतलं लघु । तर्पणं रोचनं तृष्णादाहदोषत्रयप्रणुत् ॥ ३१ ॥

भौम जल के भेदों में जो जाङ्गल आदि जल के ३ भेद हैं उनके क्रम से प्रथम केवल लक्षण तत्पश्चात् क्रम से गुण ये हैं—**जाङ्गल जल के लक्षण**—जहाँ पर थोड़े जल तथा थोड़े वृक्ष होते हों और पित्त तथा रक्त सम्बन्धी विकार अधिक उत्पन्न होते हों उसी जाङ्गल देश तथा वहां के जल को जाङ्गल जल समझना चाहिये ।

आनूप जल के लक्षण—जहाँ पर अधिक रूप से जल तथा वृक्ष होते हों और वात तथा कफ सम्बन्धी रोग भी अधिक रूप से होते हों उसे अनूप देश तथा वहां के जल को आनूप जल समझना चाहिये ।

साधारण जल के लक्षण—जहाँ पर जाङ्गल तथा अनूप दोनों देशों के चिह्न मिले हुये मिलते हों तो उसे साधारण देश तथा वहाँ के जल को साधारण जल समझना चाहिये ।

जाङ्गल जल—रूक्ष, लवणरसयुक्त, लघु, पित्तनाशक, अग्निवर्धक, कफनाशक, पथ्य एवम् अनेक प्रकार के विकारों को नष्ट करने वाला होता है ।

आनूप जल—अभिष्यन्दी, स्वादिष्ट, स्निग्ध, घन, गुरु, अग्नि को नष्ट करने वाला (मन्दाग्नि कारक), कफकारक, हृदय के लिये हितकर एवम् बहुत से रोगों को उत्पन्न करने वाला होता है ।

साधारण जल—मधुररसयुक्त, अग्निदीपक, शीतल, लघु, तृप्तिकारक, रोचक एवम् प्यास, दाह तथा त्रिदोष को दूर करने वाला होता है ॥ २६–३१ ॥

अथ भौमानामेव नादेयादीनां लक्षणानि गुणांश्च ।
तत्र नादेयस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

नद्या नदस्य वा नीरं नादेयमिति कीर्त्तितम् ॥ ३२ ॥
नादेयमुदकं रूक्षं वातलं लघु दीपनम् । अनभिष्यन्दि विशदं कटुकं कफपित्तनुत् ॥ ३३ ॥

भौम जल के अन्य प्रकार से नादेयादि भेदों के लक्षण तथा गुण क्रम से ये हैं । **नादेय के लक्षण**—नदी या नद के जल को "नादेय" कहते हैं । **नादेय जल**—रूक्ष, वातजनक, लघु, अग्निदीपक, ईषत् अभिष्यन्दी, विशद गुण युक्त, कटु रस युक्त एवम्—कफ तथा पित्त को दूर करने वाला होता है ॥ ३२–३३ ॥

अथ शीघ्रवहत्वादिभेदेन च नादेयजलानां गुणभेदानाह

नद्यः शीघ्रवहा लघ्व्यः सर्वा याश्चामलोदकाः । गुर्व्यः शैवलसंछन्ना मन्दगाः कलुषाश्च याः ॥
हिमवत्प्रभवाः पथ्या नद्योऽश्माहतपाथसः । गङ्गाशतद्रुसरयूयमुनाऽऽद्या गुणोत्तमाः ॥३५॥
सह्यशैलभवा नद्यो वेणागोदावरीमुखाः । कुर्वन्ति प्रायशः कुष्ठमीषद्वातकफावहाः ॥३६॥

शीघ्र तथा मन्द गति से बहने के भेद से एवम्-देश भेद से नदियों के जलों में जो गुणभेद होते हैं वे ये हैं—शीघ्रगति से बहने वाली—ऐसी जितनी नदियां होती हैं उन सबों का जल लघु तथा स्वच्छ होता है । मन्द गति से बहने वाली या सेवार से ढके हुये जल वाली किंवा मलिन जल वाली—ऐसी जो नदियां हैं उन सबों का जल गुरु होता है ।

हिमालय से निकल कर बहने वाली या पत्थरों से टक्कर खानेवाली—ऐसी जो गङ्गा, शतद्रू (सतलज), सरयू तथा यमुना आदि नदियां हैं उनका जल पथ्य एवम् गुणों में उत्तम होता है ।

सह्यपर्वत से निकल कर बहने वाली—ऐसी जो वेणा तथा गोदावरी आदि नदियां हैं उन

सर्वों का जल प्रायः करके कुष्ठ रोग उत्पन्न करने वाला एवम् किञ्चित् वात तथा कफ कारक होता है ॥ ३४–३६ ॥

परिभाषा

नदीसरस्तडागस्थे कूपप्रस्रवणादिजे। जलके देशभेदेन गुणान्दोषांश्च लक्षयेत् ॥ ३७ ॥

परिभाषा—नदी, सरोवर, तालाब, कुआं तथा झरना आदि ये सब जैसे जाङ्गल आदि देशों में स्थित हों उनके अनुसार इनके जलों के गुण तथा दोष समझने चाहिये ॥ ३७ ॥

अथौद्भिदजलस्य लक्षणं गुणांश्चाह

विदार्य भूमिं निम्नां यन्महत्या धारया स्रवेत्।
तत्तोयमौद्भिदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥ ३८ ॥

औद्भिदं वारि पित्तघ्नमविदाह्यतिशीतलम्। प्रीणनं मधुरं बल्यमीषद्वातकरं लघु ॥ ३९ ॥

औद्भिद जल के लक्षण—नीची जमीन को फोड़कर जो बड़ी धारा से निकल कर बहे उस जल को महर्षि लोग औद्भिदसंज्ञक कहते हैं।

औद्भिद जल—पित्तनाशक, अविदाही, अतिशीतल, तृप्तिकारक, मधुररसयुक्त, बलकारक, एवम् किञ्चित् वातकारक तथा लघु होता है ॥ ३८–३९ ॥

अथ नैर्झरजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

शैलसानुस्रवद्वारिप्रवाहो निर्झरो झरः। स तु प्रस्रवणश्चापि तत्रत्यं नैर्झरं जलम् ॥ ४० ॥
नैर्झरं रुचिकृद्वारि कफघ्नं दीपनं लघु। मधुरं कटुपाकं च वातलं स्यादपित्तलम् ॥ ४१ ॥

नैर्झर जल के लक्षण—पर्वत के शिखर से गिरते हुये जल के प्रवाह को संस्कृत में निर्झर, झर तथा प्रस्रवण (हिन्दी में झरना) कहते हैं। एवम् उसी के जल को नैर्झर जल (झरने का जल) कहते हैं।

नैर्झर जल—रुचिकारक, कफनाशक, अग्निदीपक, लघु, मधुर रसयुक्त, विपाक में कटु-रसयुक्त, वातकारक तथा ईषत् पित्तकारक (पाठान्तर में पित्तकारक) होता है ॥ ४०–४१ ॥

अथ सारसजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

नद्याः शैलाभिरुद्धाया यत्र संस्रुत्य तिष्ठति। तत्सरो जलजच्छन्नं तदम्भः सारसं स्मृतम् ॥४२॥
सारसं सलिलं बल्यं तृष्णाघ्नं मधुरं लघु। रोचनं तुवरं रूक्षं बद्धमूत्रमलं स्मृतम् ॥ ४३ ॥

सारस जल के लक्षण—नदी का जल जहां पर पर्वत आदि से रोके जाने पर झर २ के संचित होता जाता है और कमल के पत्तों से जहां पर ढका रहता है उस संचित जल युक्त प्रदेश को सर कहते है तथा उसके जल को सारस जल कहते हैं। सारस जल—बलकारक, प्यास को शान्त करने वाला, मधुर तथा कषाय रस युक्त, लघु, रोचक, रूक्ष, मूत्र तथा मल का विबन्ध करने वाला होता है ॥ ४२–४३ ॥

अथ ताडागजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

प्रशस्तभूमिभागस्थो बहुसंवत्सरोषितः। जलाशयस्तडागः स्यात्ताडागं तज्जलं स्मृतम् ॥४४॥
ताडागमुदकं स्वादु कषायं कटुपाकि च। वातलं बद्धविण्मूत्रमसृक्पित्तकफापहम् ॥ ४५ ॥

ताडाग जल के लक्षण—प्रशस्त (उत्तम) भूमि का जो भाग है उस पर स्थित अनेक वर्षों का पुराना जो जलाशय है उसे "तड़ाग" कहते हैं। और तत्सम्बन्धी जल को "ताडाग जल" कहते हैं।

ताडाग जल (तालाब का जल)—स्वादिष्ट, कषाय रसयुक्त, विपाक में कटुरसयुक्त, वात-जनक, मल मूत्र का विबन्ध करने वाला एवम् रक्तपित्त तथा कफ को दूर करने वाला होता है ॥४४-४५॥

अथ वाप्य जलस्य लक्षणं क्षारमिष्टयोस्तयोर्गुणांश्चाह

पाषाणैरिष्टकाभिर्वा बद्धः कूपो बृहत्तरः। ससोपानो भवेद्वापी तज्जलं वाप्यमुच्यते ॥ ४६ ॥
वाप्यं वारि यदि क्षारं पित्तकृत्कफवातहृत्। तदेव मिष्टं कफकृद्वातपित्तहरं भवेत् ॥ ४७ ॥

वाप्य जल के लक्षण—जो कुआं पत्थर तथा ईटों से बँधा हुआ हो तथा बहुत बड़ा हो और जिस में उतरने के लिए सीढ़ियां भी बनी हों तो उसे वापी (बावड़ी) कहते हैं। और उस के जल को "वाप्य जल" कहते हैं।

वाप्य जल (बावड़ी का जल)—यदि खारा हो तो पित्तकारक एवम् कफ तथा वात को दूर करने वाला होता है। और यदि वही (जल) मीठा हो तो कफकारक एवम् वात तथा पित्त नाशक होता है ॥ ४६–४७ ॥

अथ कौपजलस्य लक्षणं स्वादुक्षारयोस्तयोर्गुणाँश्चाह

भूमौ खातोऽल्पविस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः। बद्धोऽबद्धः सकूपः स्यात्तदम्भः कौपमुच्यते॥
कौपं पयो यदि स्वादु त्रिदोषघ्नं हितं लघु। तत्क्षारं कफवातघ्नं दीपनं पित्तकृत्परम् ॥४९॥

कौप जल के लक्षण—जो गड्ढा थोड़े विस्तार का अर्थात् कम चौड़ा मण्डलाकार (गोलाकार मुंह वाला), गहरा होता है एवम् वह चाहे ईंटे आदि से बंधा हो या न बंधा हो तो उसे कूप अर्थात् कुंआ कहते हैं। और उसी के जल को "कौप जल" कहते हैं।

कौपजल (कूयें का जल)—यदि स्वादिष्ट हो तो त्रिदोषनाशक, हितकारी तथा लघु होता है। और यदि खारा हो तो कफ तथा वात नाशक, अग्निदीपक और अत्यन्त पित्तकारक होता है ॥ ४८–४९ ॥

अथ चौञ्ज्यजलस्य लक्षणं गुणांश्चाह

शिलाकीर्णं स्वयं श्वभ्रं नीलाञ्जनसमोदकम्। लतावितानसंच्छन्नं चौञ्ज्यमित्यभिधीयते
अश्मादिभिरबद्धं यत्तच्चौञ्ज्यमिति वा परे। यत्रस्थमुदकं चौञ्ज्यं मुनिभिस्तदुदाहृतम्।।
चौञ्ज्यं वह्निकरं नीरं रूक्षं कफहरं लघु। मधुरं पित्तनुद्रुच्यं पाचनं विशदं स्मृतम् ॥ ५२ ॥

चौञ्ज्य जल के लक्षण—जो गड्ढा अपने आप हो गया हो और जिस में पत्थर के टुकड़े हों, एवं जल नीले अञ्जन के समान हो तथा लताओं के विस्तार से ढका हो तो उसे संस्कृत में चौञ्ज्य (चौंड़ा) कहते हैं। अन्य आचार्यों का मत है कि जो गड्ढा पत्थर आदि से न बांधा हुआ हो उसे चौञ्ज्य कहते हैं। और इस के जल को मुनि लोग "चौञ्ज्य जल" कहते हैं।

चौञ्ज्यजल—अग्निकारक, रूक्ष, कफनाशक, लघु, मधुर रस युक्त, पित्तनाशक, रोचक, पाचक तथा विशद गुण युक्त होता है ॥ ५०–५२ ॥

अथ पाल्वलजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

अल्पं सरः पल्वलं स्याद्यत्र चन्द्रर्क्षगे रवौ ॥ ५३ ॥
न तिष्ठति जलं किञ्चित्तत्रस्थं वारि पाल्वलम्। पाल्वलं वार्यभिष्यन्दि गुरु स्वादु त्रिदोषकृत्॥

पाल्वल जल के लक्षण—सूर्य जब चन्द्रमा के नक्षत्र पर हों तब जिस में कुछ भी जल न रहता हो ऐसे छोटे २ तलैये को पल्वल कहते हैं। और इस के जल को पाल्वल जल कहते हैं।

पाल्वल जल—अभिष्यन्दी, गुरु, स्वादिष्ट तथा त्रिदोषकारक होता है ॥ ५३–५४ ॥

*रवौ = सूर्ये, चन्द्रर्क्षगे = कर्कटराशिस्थे, श्रावणे मासीति यावत् । अत्र चन्द्रर्क्षं मृगशिरस्तत्रग इति मुख्यार्थः ॥ ५३–५४ ॥

यहाँ पर "रवि" से सूर्य, तथा "चन्द्रर्क्षग" पद से—"चन्द्र की राशि कर्क में स्थित अर्थात् श्रावण मास में—" यह अर्थ समझना चाहिये, किन्तु वस्तुतः यह अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि श्रावण वर्षा ऋतु में सर्वत्र वर्षा का जल रहता ही है। अतः उक्त पद का चन्द्र नक्षत्र मृगशिर पर स्थित अर्थात् वृष राशि पर स्थित अर्थ समझना चाहिये जो ज्येष्ठ मास में पड़ता है—उस समय जिस में जल न ठहरता हो यह अर्थ युक्तियुक्त है ॥ ५३–५४ ॥

अथ विकिरजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

नद्यादिनिकटे भूमिर्या भवेद्वालुकामयी। उद्धाव्यते ततो यत्तु तज्जलं विकिरं विदुः ॥ ५५ ॥
विकिरं शीतलं स्वच्छं निर्दोषं लघु च स्मृतम्। तुवरं स्वादु पित्तघ्नं क्षारं तत्पित्तलं मनाक् ॥

विकिर जल के लक्षण—नदी आदि के निकट जो बालुकामय भूमि हो वहाँ पर जो जल खन कर निकाला जाता है उसे विकिर-जल कहते हैं। विकिर जल शीतल, स्वच्छ, निर्दोष, लघु, कषाय तथा मधुररस युक्त एवम् पित्तनाशक होता है। यदि वही जल खारा हो तो किञ्चित् पित्त-कारक होता है ॥ ५५–५६ ॥

अथ कैदारजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

केदारः क्षेत्रमुद्दिष्टं कैदारं तज्जलं स्मृतम्। कैदारं वार्यभिष्यन्दि मधुरं गुरु दोषकृत् ॥ ५७ ॥

कैदार जल के लक्षण—केदार—यह शब्द क्षेत्र (खेत) का पर्यायवाची है, अतः इस के जल को कैदार जल कहते हैं। कैदार जल—अभिष्यन्दी, मधुर रस युक्त, गुरु तथा वातादि-दोष कारक होता है ॥ ५७ ॥

अथ वृष्टिजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

वार्षिकं तदहर्वृष्टं भूमिस्थमहितं जलम्। त्रिरात्रमुषितं तत्तु प्रसन्नममृतोपमम् ॥ ५८ ॥

वृष्टि जल (वर्षा के जल) के लक्षण—तत्काल वर्षा होकर जो जल पृथ्वी पर जमा रहता है उसे वार्षिक जल (वृष्टि का जल) कहते हैं, यह अहितकारक होता है। किन्तु यही ३ रात्रि के बाद मिट्टी बैठ जाने से यदि स्वच्छ हो तो अमृत के समान गुणकारी होता है ॥ ५८ ॥

अथ हेमन्तादिकालविशेषे विहितं जलविशेषमाह

हेमन्ते सारसं तोयं ताडागं वा हितं स्मृतम्। हेमन्ते विहितं तोयं शिशिरेऽपि प्रशस्यते ॥
वसन्तग्रीष्मयोः कौपं वाप्यं वा नैर्झरं जलम्। नादेयं वारि नादेयं वसन्तग्रीष्मयोर्बुधैः ॥
विषवृक्षवृक्षाणां पत्राद्यैर्दूषितं यतः। औद्भिदं वाऽऽन्तरिक्षं वा कौपं वा प्रावृषि स्मृतम्।

शस्तं शरदि नादेयं नीरमंशूदकं परम् ॥ ६१ ॥

हेमन्तादि काल विशेष में जलविशेष का विधान—हेमन्त (अगहन–पूस) ऋतु में सरोवर या तालाब का जल विशेष हितकर होता है और जो जल हेमन्त में हितकर कहा गया है वही (सरोवर या तालाब का जल) शिशिर (माघ–फाल्गुन) में भी उत्तम होता है। वसन्त (चैत–वैशाख) तथा ग्रीष्म (जेठ–आषाढ़) ऋतु में कूंआ, बावड़ी या झरना का जल उत्तम होता है। वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में नदी का जल पीने के लिये बुद्धिमान् व्यक्ति को कभी नहीं लेना चाहिये, क्योंकि उस समय वह (नदी का जल) जंगली वृक्षों के पत्तों के पड़ने से दूषित होकर विषैला हो जाता है। औद्भिद, आकाश से उत्तम भूमि पर गिरा हुआ या कूयें का जल वर्षा ऋतु में उत्तम होता है। शरद (क्वार–कार्तिक) ऋतु में नदी का अथवा अंशूदक संज्ञक जल अति हितकर होता है ॥५९–६१॥

अथांशूदकजलस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः। ज्ञेयमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ ६२ ॥
अनभिष्यन्दि निर्दोषमान्तरिक्षजलोपमम्। बल्यं रसायनं मेध्यं शीतं लघु सुधासमम् ॥

अंशूदक जल के लक्षण—जिस जल के ऊपर दिन में सूर्य की किरणें और रात में चन्द्रमा की किरणें पड़ी हों उसे "अंशूदक" कहते हैं। अंशूदक—स्निग्ध गुणयुक्त, त्रिदोषनाशक, अनभिष्यन्दी (अभिष्यन्दी नहीं), निर्दोष, आंतरिक्ष जल के समान, बलकारक, रसायन, मेधा के लिये हितकर, शीतल, लघु तथा अमृत के समान होता है ॥ ६२–६३ ॥

*रविकरैर्जुष्टमित्युक्ते दिवापदं समस्तदिवसप्राप्त्यर्थं, शीतकरांशुभिर्जुष्टमित्युक्ते निशीतिपदं समस्तरात्रिप्राप्त्यर्थम् ॥६२॥

यहाँ पर "रविकरैर्जुष्टम्" ऐसा कहने पर पुनः "दिवा" पद का उल्लेख करने से "सारा दिन सूर्य की किरणें पड़ी हों" तथा "शीतकरांशुभिर्जुष्टम्" ऐसा कहने पर पुनः "निशा" पद का उल्लेख करने से "सारी रात चन्द्रमा की किरणें पड़ी हों" ऐसा अर्थ समझना चाहिए ॥ ६२–६३ ॥

अन्यच्च

शरदि स्वच्छमुदयादगस्त्याखिलं हितम् ॥ ६४ ॥

इसके अतिरिक्त अन्य वचन—शरद ऋतु में अगस्त्य तारा के उदय होने से सभी प्रकार के जल स्वच्छ हो जाते हैं अतः वे सभी हितकारी होते हैं ॥ ६४ ॥

वृद्धसुश्रुतस्तु

पौषे वारि सरोजातं माघे तत्तु तडागजम्। फाल्गुने कूपसम्भूतं चैत्रे चौण्ड्यं हितम् मतम् ॥
वैशाखे नैर्झरं नीरं ज्येष्ठे शस्तं तथौद्भिदम्। आषाढे शस्यते कौपं श्रावणे दिव्यमेव च ॥६६॥
भाद्रे कौपं पयः शस्तमाश्विने चौण्ड्यमेव च। कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते ॥

वृद्ध सुश्रुत के तो इस विषय में ये वचन हैं कि—पूस मास में–सरोवर का जल, माघ मास में–तालाब का जल, फागुन मास में–कूयें का जल, चैत मास में—चौण्ड्य (चौंड़े का) जल, वैशाख मास में–झरने का जल, जेठ मास में औद्भिद जल, आषाढ़ मास में - कूयें का जल, श्रावण मास में–आकाश (वर्षा) का जल, भादो मास में–कूयें का जल, क्वार मास में—चौण्ड्य (चौंड़े का) जल, कार्तिक तथा अगहन मास में—सम्पूर्ण जल प्रशस्त होता है ॥ ६५–६७ ॥

अथ जलग्रहणस्य समयमाह

भौमानामम्भसां प्रायो ग्रहणं प्रातरिष्यते । शीतत्वं निर्मलत्वञ्च यतस्तेषां मतो गुणः ॥६८॥

जल ग्रहण करने का समय—सभी प्रकार के भौम (भूमि सम्बन्धी) जलों के ग्रहण करने का समय प्रायः करके प्रातःकाल उत्तम होता है क्योंकि उस समय वे निर्मल तथा शीतल रहते हैं। अत एव और समयों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होते हैं ॥ ६८ ॥

अथ जलस्य पानविधिमाह

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः ।
तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥ ६९ ॥

जल पीने की विधि—भोजन के समय अधिक जल पीने से अन्न नहीं पचता है, और एकदम कुछ भी जल न पीने से भी उक्त दोष होता है अर्थात् अन्न नहीं पचता है। अतएव मनुष्य को चाहिये कि उक्त समय में अग्नि बढ़ाने के लिए थोड़ा २ कर के बारम्बार जल पीवे ॥ ६९ ॥

अथ शीतलजलपानस्य विषयानाह

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये । श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने तमके वमथौ तथा ।
ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्भः प्रशस्यते ॥ ७० ॥

शीतल जलपान के विषय (योग्य लोग)—मूर्च्छा, पित्त सम्बन्धी रोग, गरमी, दाह, विष, रक्तविकार, मदात्यय, श्रम, भ्रमरोग, तमक श्वास, वमन, ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त इन सब रोगवालों के लिये तथा जिनका अन्न न पचा हुआ हो ऐसे लोगों के लिये शीतल जल पीना हितकर होता है ॥ ७० ॥

अथ शीतलजलपानस्य निषेधविषयानाह

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे । आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यःशुद्धौ नवज्वरे ॥७१॥
अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ । हिक्कायां स्नेहपाने च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥७२॥

शीतल जलपान के निषेध के विषय—अर्थात् शीतल जल पीना जिन रोगों में निषिद्ध है उनका निर्देश—पार्श्वशूल (पसली का दर्द), जुकाम, वातरोग, गलग्रह, अफारा, बद्धकोष्ठ, तथा वमन विरेचनादि द्वारा शोधन कर्म करने के तत्काल बाद में एवम् नवीन ज्वर, अरुचि, ग्रहणी, गुल्म, श्वास, खांसी, विद्रधि, हिचकी तथा स्नेहपान (तैल आदि पीने पर) इन सबों में शीतल जल पीना त्याग कर देना चाहिये ॥ ७१–७२ ॥

अथाल्पजलपानस्य विषयानाह

अरोचके प्रतिश्याये मन्देऽग्नौ श्वयथौ क्षये । मुखप्रसेके जठरे कुष्ठे नेत्रामये ज्वरे ।
व्रणे च मधुमेहे च पिबेत्पानीयमल्पकम् ॥ ७३ ॥

थोड़े जलपान के विषय अर्थात् जिन में थोड़ा जल पीना उचित है उन रोगों का निर्देश—अरुचि, जुकाम, मन्दाग्नि, शोथ, क्षय, मुखप्रसेक (मुख में जल भर आना), उदररोग, कुष्ठ, नेत्रविकार, ज्वर, व्रण और मधुमेह इन रोगों में रोगी को थोड़ा जल पीना उचित है ॥ ७३ ॥

अथ जलपानस्यावश्यकतामाह

जीवनं जीविनां जीवो जगत् सर्वन्तु तन्मयम् । नातोऽत्यन्तनिषेधेन कदाचिद्वारि वार्य्यते ॥

जलपान की आवश्यकता—जीवन (जल) प्राणियों का जीवन स्वरूप है और सम्पूर्ण जगत

जलमय है। अतः जल का अत्यन्त निषेध के साथ कभी नहीं निवारण करे अर्थात् एक दम से जल पीने का निषेध कभी नहीं करना चाहिये किन्तु अति स्वल्पमात्रा में देना ही चाहिये ॥ ७४ ॥

हारीतश्च

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यःप्राणविनाशिनी । तस्माद् देयं तृषाऽऽर्त्ताय पानीयं प्राणधारणम् ॥
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति । अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वारयेत् ॥

इस विषय में "हारीत" भी कहते हैं कि—अत्यन्त प्यास बड़ी भयंकर होती है क्योंकि उससे सद्यः प्राण निकल जाता है, इसलिये जो अत्यन्त प्यास से पीड़ित हो उसे प्राण धारण करने का प्रधान साधन जल अवश्य पीने के लिये देना चाहिये। और जो प्यासा होता है उसे अन्त में मूर्च्छा हो जाती है और मूर्च्छा होने से अन्त में वह प्राणों को छोड़ देता है, अतः सभी अवस्थाओं में कभी भी जल पीने का निषेध नहीं करना चाहिये ॥ ७५–७६ ॥

अथ गुणवतस्तोयस्य लक्षणान्याह

अगन्धमव्यक्तरसं सुशीतं तर्षनाशनम् । स्वच्छं लघु च हृद्यञ्च तोयं गुणवदुच्यते ॥ ७७ ॥

गुणकारी जल के लक्षण—जो जल गन्धरहित हो तथा जिसका रस पूर्ण रूप से न मालूम पड़ता हो एवं जो अति शीतल, पीने से शीघ्र प्यास को शान्त करने वाला, स्वच्छ, लघु तथा हृदय के लिये हितकर या हृदय को प्रिय हो तो उसे प्रशस्त गुणवाला अर्थात् उत्तम जल समझना चाहिये ॥ ७७ ॥

अथावगुणकारिजलस्य लक्षणानि दुर्गुणाँश्चाह

पिच्छिलं कृमिलं क्लिन्नं पर्णशैवालकर्दमैः । विवर्णं विरसं सान्द्रं दुर्गन्धं न हितं जलम् ॥७८॥
कलुषं छन्नमम्भोजपर्णनीलीतृणादिभिः । दुःस्पर्शमसंस्पृष्टं सौरचान्द्रमरीचिभिः ॥ ७९ ॥
अनार्त्तवं वार्षिकं तु प्रथमं तच्च भूमिगम् । व्यापन्नं परिहर्त्तव्यं सर्वदोषप्रकोपणम् ॥ ८० ॥
तत् कुर्यात्स्नानपानाभ्यां तृष्णाऽऽध्मानचिरज्वरान् ।
कासाग्निमान्द्याभिष्यन्दकण्डूगण्डादिकं तथा ॥ ८१ ॥

अवगुण करने वाले जल के लक्षण–जो जल–पिच्छिल, कृमियुक्त और पत्ते, सेवार तथा कीचड़ से खराब हो गया हो, एवम् विकृत वर्ण का, विरस, गाढ़ा तथा दुर्गन्ध युक्त हो गया हो वह हितकारी नहीं होता है। और जो जल—गंदला तथा कमल के पत्ते, सेवार तथा तृण आदि से ढंका हुआ, एवं जिसके स्पर्श से खुजली होने लगे और जिस पर सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणें कभी न पड़ती हों, और जो अनार्त्तव (पूस, माघ, फागुन, चैत इन ४ मासों में वर्षा का), और प्रथम वर्षा का भूमि पर स्थित जल हो तथा दूषित हो तो ऐसा जल पीने के लिये सर्वथा त्याग करने योग्य होता है क्योंकि वह सब दोषों को प्रकुपित करने वाला होता है। और उक्त जल को जो कोई पीने तथा नहाने के कार्य में लेता है तो उसे तृषा, अफारा, जीर्णज्वर, खांसी, अग्नि की मन्दता, अभिष्यन्द, खुजली तथा गलगण्ड आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ७८–८१ ॥

अथ दूषितजलस्य निर्दोषीकरणोपायमाह

निन्दितं चापि पानीयं क्वथितं सूर्यतापितम् । सुवर्णं रजतं लौहं पाषाणं सिकतामपि ॥८२॥
भृशं सन्ताप्य निर्वाप्य सप्तधा साधितं तथा । कर्पूरजातिपुन्नागपाटलादिसुवासितम् ॥८३॥

शुचिसान्द्रपटस्रावि क्षुद्रजन्तुविवर्जितम् । स्वच्छं कनकमुक्ताऽऽद्यैः शुद्धं स्याद्दोषवर्जितम् ॥
पर्णमूलबिसग्रन्थिमुक्ताकनकशैवलैः । गोमेदेन च वस्त्रेण कुर्य्यादम्बुप्रसादनम् ॥ ८५ ॥

दूषित जल को निर्दोष (शुद्ध) करने का उपाय—जो जल उक्त प्रकार से निन्दित हो उसे काढ़े की भांति पकावे, या सूर्य की किरणों से गरम कर दे अर्थात् धूप में रख दे, वा सोना, चांदी, लोहा, पत्थर, बालू को खूब गरम कर २ के सात बार उक्त जल में बुझा दे, तदुपरांत कपूर, चमेली का पुष्प, सुलतानचम्पा का पुष्प, पाढ़ल पुष्प आदि से सुवासित कर दे, और स्वच्छ तथा गाढे वस्त्र से छान दे जिस से छोटे २ कृमि दूर हो जायं, इस प्रकार से स्वच्छ किया हुआ अथवा सोना या मोती आदि के द्वारा शुद्ध किया हुआ जल स्वच्छ तथा दोष रहित हो जाता है। पत्ते, मूल, बिसग्रन्थि (कमल का मूल), मोती, सोना, सेवार, गोमेदमणि तथा वस्त्र इन सबों से जल को स्वच्छ करना चाहिये ॥ ८२-८५ ॥

अथ पीतजलस्य परिपाककालानाह

पीतं जलं जीर्य्यति यामयुग्माद्यामैकमात्राच्छृतशीतलञ्च ।
तदर्धमात्रेण शृतं कदुष्णं पयःप्रपाके त्रय एव कालाः ॥ ८६ ॥

पीये हुये जलके पचने में समय का परिमाण—पीया हुआ साधारण जल दो प्रहर (६ घण्टे) में पच जाता है।

औंटा कर ठंढा किया हुआ जल पीने से वह १ प्रहर (३ घण्टा) में पचता है। और औंटा कर किंचित् गरम जल पीने से आधे प्रहर (१॥ घण्टे) में पच जाता है। इस भांति से जल के पचने में ३ प्रकार के समय के परिमाण हैं ॥ ८६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे
मिश्रप्रकरणे त्रयोदशो वारिवर्गः समाप्तः ॥ १३ ॥



अथ दुग्धवर्गः

अथ दुग्धस्य नामानि गुणाँश्चाह

दुग्धं क्षीरं पयः स्तन्यं बालजीवनमित्यपि । दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम् ॥ १ ॥
सद्यःशुक्रकरं शीतं सात्म्यं सर्वशरीरिणाम् । जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजीकरं परम् ॥
वयःस्थापनमायुष्यं सन्धिकारि रसायनम् ॥ २ ॥

दूध के संस्कृत नाम—दुग्ध, क्षीर, पयः (पयस्), स्तन्य तथा बालजीवन ये सब हैं।

दूध—मधुररसयुक्त, स्निग्ध, वात तथा पित्त को दूर करने वाला, सारक, तत्काल शुक्र को उत्पन्न करने वाला, शीतल, सम्पूर्ण प्राणियों के लिये सात्म्य (अनुकूल), जीवनी शक्ति को देने वाला, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), बलकारक, मेधा शक्ति के लिये हितकर, अत्यन्त वाजीकरण, अवस्था को स्थिर रखने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, सन्धानकारक तथा रसायन है ॥ १-२ ॥

अथ दुग्धपानार्हजनानाह

विरेकवान्तिवस्तीनां सेव्यमोजोविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥
जीर्णज्वरे मनोरोगे शोषमूर्च्छाभ्रमेषु च । ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहे तृषि हृदामये ॥ ४ ॥
शूलोदावर्त्तगुल्मेषु वस्तिरोगे गुदाङ्कुरे । रक्तपित्तेऽतिसारे च योनिरोगे श्रमे क्लमे ॥ ५ ॥
गर्भस्रावे च सततं हितं मुनिवरैः स्मृतम् । बालवृद्धक्षतक्षीणाः क्षुद्व्यवायकृशाश्च ये ॥
तेभ्यः सदाऽतिशयितं हितमेतदुदाहृतम् ॥ ६ ॥

दूध पीने के योग्य लोग—जिन्होंने विरेचन, वमन तथा वस्ति का प्रयोग किया है, ऐसे लोगों के लिये दूध सेवन करने के योग्य और ओजोवर्धक है। तथा जीर्णज्वर, मानसिकरोग, शोष, मूर्च्छा, भ्रम, ग्रहणी, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, हृद्रोग, शूल, उदावर्त्त, गुल्म, वस्तिरोग, अर्श, रक्तपित्त, अतिसार, योनिरोग, श्रम, क्लान्ति, गर्भस्राव, इन सब रोगों में दूध पीना सर्वदा हितकर होता है, ऐसा मुनियों का मत है और जो बालक, वृद्ध तथा क्षतक्षीण हैं या भूख और मैथुन से कृश हो गये हैं ऐसे लोगों के लिये यह (दूध) सदा अत्यन्त हितकर कहा हुआ है ॥ ३—६ ॥

अथ गोदुग्धस्य गुणानाह

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रसपाकयोः । दोषधातुमलस्रोतःकिञ्चित्क्लेदकरं गुरु ॥ ७ ॥
शीतलं स्तन्यकृत्स्निग्धं वातपित्तास्रनाशनम् । जरासमस्तरोगाणां शान्तिकृत् सेविनां सदा ॥

गाय के दूध के गुण—गाय का दूध विशेष कर स्वाद तथा विपाक में मधुर रसयुक्त, शीतल, दुग्धवर्धक, स्निग्ध, वात-पित्त तथा रक्तविकार को नष्ट करने वाला, दोष-धातुमल तथा-नाड़ियोंमें किञ्चित् क्लेद (आर्द्रता) उत्पन्न करने वाला, गुरु एवम् निरन्तर सेवन करने वालों की वृद्धावस्था तथा समस्तरोगों को शमन करने वाला होता है ॥ ७-८ ॥

अथ कृष्णाऽऽदीनां गवां दुग्धस्य गुणानाह

कृष्णाया गोर्भवेद् दुग्धं वातहारि गुणाधिकम् ॥ ९ ॥
पीताया हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत् । श्लेष्मलं गुरु शुक्लाया रक्ता चित्रा च वातहृत् ॥

काली गाय का दूध—वातनाशक, औरों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है। पीली गायका दूध-पित्त तथा वातनाशक होता है। सफेद गाय का दूध—कफकारक तथा गुरु होता है। लाल तथा चितकबरी गाय का दूध—वातनाशक होता है ॥ ९-१० ॥

अथ सद्यः प्रसूताया विवत्सायाश्च गोर्दुग्धगुणानाह

बालवत्सविवत्सानां गवां दुग्धं त्रिदोषकृत् ॥ ११ ॥

हाल की ब्याई हुई अर्थात् छोटे बछड़े वाली तथा जिसके बच्चे मर गये हैं ऐसी गायों का दूध—त्रिदोषकारक होता है ॥ ११ ॥

अथ बष्कयिण्या गोः (बाखरीगाय के) दुग्धगुणानाह

बष्कयिण्यास्त्रिदोषघ्नं तर्पणं बलकृत्पयः ॥ १२ ॥

बाखरी (बकेन) गाय का दूध—त्रिदोषनाशक, तृप्तिकारक तथा बलकारक होता है ॥१२॥

अथ देशविशेषेण गोदुग्धगुणानाह

जाङ्गलानूपशैलेषु चरन्तीनां यथोत्तरम् । पयो गुरुतरं स्नेहो यथाऽऽहारं प्रवर्तते ॥ १३ ॥

देश विशेष से गाय का दूध—जाङ्गल देश, आनूप देश तथा पर्वतों पर चरने वाली गायों का दूध उत्तरोत्तर एक दूसरे की अपेक्षा अधिक गुरु होता है अर्थात् जाङ्गल देश में चरने वाली गाय की अपेक्षा आनूप देश में चरने वाली का दूध अधिक गुरु होता है, उसकी अपेक्षा पर्वत पर चरनेवाली गाय का दूध अधिक गुरु होता है, क्योंकि आहार के अनुसार ही दूध में स्नेहपदार्थ (घी) रहता है और उसी के न्यूनाधिक्य से न्यून तथा अधिक गुरु दूध होता है अर्थात् जिसमें अधिक स्नेह भाग रहेगा वह दूध अधिक गुरु होगा, जिसमें कम रहेगा वह कम गुरु होगा ॥ १३ ॥

अथाहारविशेषेण गोदुग्धस्य गुणविशेषानाह

स्वल्पान्नभक्षणाज्जातं क्षीरं गुरु कफप्रदम् । तत्तु बल्यं परं वृष्यं स्वस्थानां गुणदायकम् । पलालतृणकार्पासबीजजं रोगिणे हितम् ॥ १४ ॥

आहार विशेष से गाय का दूध—जो गाय चारे के साथ थोड़ा अन्न भी खाती हैं उससे जो उन्हें दूध उतरता है वह गुरु, कफकारक, बलदायक तथा अत्यन्त वृष्य (वीर्यवर्धक) होता है। अत एव वह स्वस्थ लोगों के लिये गुणदायक होता है। और जो गाय पैरा (भूसा), घास तथा कपास का बीज खाकर दूध देती है उन का दूध—रोगियों के लिये हितकर होता है ॥ १४ ॥

अथ माहिषदुग्धस्य गुणानाह

माहिषं मधुरं गव्यात्स्निग्धं शुक्रकरं गुरु । निद्राकरमभिष्यन्दि क्षुधाऽऽधिक्यहरं हिमम् ॥१५॥

भैंस का दूध—गाय के दूध की अपेक्षा अधिक मधुर, स्निग्ध (स्नेहपदार्थ युक्त), शुक्रकारक, गुरु, निद्रा लाने वाला, अभिष्यन्दी (कफवर्धक), भूख को अधिकरूप से नष्ट करने वाला तथा शीतल होता है ॥ १५ ॥

अथाजादुग्धस्य गुणानाह

छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु । रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम् ॥ १६ ॥
अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात् । स्तोकाम्बुपानाद्व्यायामात्सर्वरोगापहं पयः॥१७॥

विभिन्न दुग्ध एवं मट्ठा आदि का पोषणात्मक संगठन

पदार्थ	प्रतिशत %							प्रति १०० ग्राम जीवतिक्ति (Vitamin)				
	प्रोभूजिन	स्नेहांश	कार्बोज	कॅल्शियम्	फॉस्फोरस	लौह	कॅलरीमान	ए अ ई.	बी₁ माइ. ग्रा.	निकोटिनिक एसिड मि. ग्रा.	रिबोफ्लेविन माइ. ग्रा.	सी मि. ग्रा.
दुग्ध-मातृ	१'[illegible]	३'९	७'०	०'०२	०'०१	०'२	६७	२'८	—	—	३०	—
,, गाय	३'३	३'६	४'८	०'१२	०'०९	०'२	६५	१८०	५१	०'१	२००	२
,, भैंस	४'[illegible]	८.८	५'१	०'२१	० १३	०'२	११७	१६२	—	०'१	—	—
,, बकरी	३'७	५'६	४ ७	०'१७	०'१२	०'३	८४	१८२	—	—	४०	—
,, गर्दभी	१-६-२'०	१'१- १'५	६'२७-६'८	—	—	—	—	—	—	—	—	—
,, घोड़ी	२'१-२'५	१'६-१'८	६'०-६'५	—	—	—	—	—	—	—	—	—
,, भेड़	१'५०	२	१'४१	—	—	—	३०	+	+	+	+	+
,, मक्खन निकाला	२'५	०'१	४'६	०'१२	०'०९	०'२	२९	—	—	०'१	—	१
मट्ठा	०'८	१'१	०'५	०'०३	०'०३	०'८	१५	लेश	—	—	—	—
दही	२'९	२'९	३ ३	०'१२	०'०९	०'३	५१	११०	—	—	६०	—
मक्खन	१'८५	८१'५	—	—	—	—	७६२	—	—	—	—	—
घी	—	१००	—	—	—	—	९००	—	—	—	—	—
मलाई	२'५	३०	४'५	—	—	—	५७५	—	—	—	—	—

बकरी का दूध—कषाय तथा मधुर रसयुक्त, शीतल, ग्राही, लघु, एवम्—रक्तपित्त, अतिसार, क्षय, खांसी तथा ज्वर को दूर करने वाला होता है। बकरियाँ शरीर से छोटी होती हैं, और कटु तथा तिक्तरसयुक्त पत्ते आदि खाती हैं, थोड़ा जल पीती हैं एवम् व्यायाम (चलना, फिरना) अधिक करती हैं अतः उनका दूध सर्वरोगनाशक होता है ॥ १६-१७ ॥

अथ मृग्यादिदुग्धस्य गुणानाह

मृगीणां जाङ्गलोत्थानामजाक्षीरगुणं पयः ॥ १८ ॥

जाङ्गल देश की हरिणियों का दूध—बकरी के दूध के समान गुणों से युक्त होता है ॥१८॥

तत्राविकदुग्धस्य गुणानाह

आविकं लवणं स्वादु स्निग्धोष्णं चाश्मरीप्रणुत्। अहृद्यं तर्पणं केश्यं[1] शुक्रपित्तकफप्रदम्।
गुरु कासानिलोद्भूते केवले चानिले वरम् ॥ १९ ॥

भेड़ी का दूध—लवण तथा मधुर रसयुक्त, स्निग्ध, उष्ण, अश्मरीनाशक, हृदय के लिये अहितकर, तृप्तिकारक, केशों के लिये हितकर, शुक्र-पित्त तथा कफ को उत्पन्न करनेवाला तथा गुरु होता है। एवम् वात से उत्पन्न होनेवाली खांसी तथा केवल वातरोग में हितकर होता है ॥१९॥

अथ घोटकीदुग्धस्य गुणानाह

रूक्षोष्णं वडवाक्षीरं बल्यं शोषानिलापहम्। अम्लं पटु लघु स्वादु सर्वमेकशफं तथा ॥२०॥

घोड़ी का दूध—रूक्ष, उष्ण, बलकारक, शोष तथा वायु को नष्ट करने वाला, अम्ल तथा लवण रसयुक्त, लघु और स्वादिष्ट होता है। एवम् घोड़े की भांति जितने एक शफ अर्थात् अखण्डित खुर वाले हैं उनके भी दूध पूर्वोक्त गुणवाले होते हैं ॥ २० ॥

अथौष्ट्रदुग्धस्य गुणानाह

औष्ट्रं दुग्धं लघु स्वादु लवणं दीपनं तथा। क्रिमिकुष्ठकफानाहशोथोदरहरं सरम् ॥ २१ ॥

ऊंटिनी का दूध—लघु, मधुर तथा लवण रसयुक्त, अग्निदीपक, सारक एवम्—क्रिमि, कुष्ठ, कफ, अफरा, शोथ तथा उदर विकार को दूर करने वाला होता है ॥ २१ ॥

अथ हस्तिनीदुग्धस्य गुणानाह

बृंहणं हस्तिनीदुग्धं मधुरं तुवरं गुरु। वृष्यं बल्यं हिमं स्निग्धं चक्षुष्यं स्थिरताकरम् ॥२२॥

हथिनी का दूध—मधुर तथा कषाय रसयुक्त, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), गुरु, वीर्यवर्धक, बलकारक, शीतल, स्निग्ध, नेत्रों के लिये हितकर तथा शरीर को दृढ़ करने वाला होता है ॥२२॥

अथ नारीदुग्धस्य गुणानाह

नार्या लघु पयः शीतं दीपनं वातपित्तजित्। चक्षुःशूलाभिघातघ्नं नस्याश्च्योतनयोर्वरम् ॥

स्त्री का दूध—लघु, शीतल, अग्निदीपक, एवम् वात, पित्त, नेत्रों का शूल तथा अभिघात को दूर करने वाला होता है, एवम् नस्य तथा आश्च्योतन कर्म के लिये उत्तम होता है ॥ २३ ॥

---

१. वृष्य इति पाठा०।

अथ धारोष्णादिदुग्धस्य गुणानाह

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघु शीतं सुधासमम्। दीपनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धाराशिशिरं त्यजेत् ॥
धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम्। शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥२५॥
आमं क्षीरमभिष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्द्धनम्। ज्ञेयं सर्वमपथ्यं तु गव्यमाहिषवर्जितम् ॥२६॥
नारीक्षीरं त्वाममेव हितं न तु शृतं हितम्। शृतोष्णं कफवातघ्नं शृतशीतन्तु पित्तनुत् ॥२७॥
अर्द्धोदकं क्षीरशिष्टमामाल्लघुतरं पयः। जलेन रहितं दुग्धमतिपक्वं यथा यथा।
तथा तथा गुरु स्निग्धं वृष्यं बलविवर्धनम् ॥ २८ ॥

गाय का धारोष्ण दूध—बलकारक, लघु, शीतल, अमृत के समान, अग्निदीपक तथा त्रिदोषनाशक होता है। किन्तु यदि वह (गाय का दूध) धाराशीतल अर्थात् दुहने के बाद देर तक रखने से शीतल हो गया हो तो उसे छोड़ देना चाहिये अर्थात् धारोष्ण का पूर्वोक्त गुण न होने से नहीं पीना चाहिये, यदि पीना हो तो गरम करके पीवे।

धारोष्ण (दुहने के समय जो उष्णता रहती है उससे युक्त) दूध—गाय का उत्तम होता है।

धाराशीत (दुहने के समय जो उष्णता रहती है उसके निकल जाने के बाद शीतल हुआ) दूध—भैंस का उत्तम होता है।

उबाला हुआ गरम २ दूध—भेड़ का पथ्य होता है।

उबाल कर शीतल किया हुआ दूध—बकरी का पथ्य होता है।

गाय तथा भैंस के दूध को छोड़ कर शेष सभी के कच्चे दूध को अभिष्यन्दी, गुरु, कफ तथा आम को बढ़ाने वाला तथा अपथ्य समझना चाहिये किन्तु स्त्री का दूध तो कच्चा ही हितकर होता है। यदि वही औटाया हुआ हो तो हितकर नहीं होता है।

साधारण रूप से औटाया हुआ गरम दूध—कफ तथा वातनाशक होता है और औटाकर शीतल किया हुआ-पित्तनाशक होता है। दूध में यदि आधा भाग जल मिलाकर औटाया जाय और जब पानी जल कर केवल दूध का भाग शेष रह जाय तब उतार ले—यह दूध कच्चे की अपेक्षा अधिक लघु होता है।

बिना जल छोड़े दूध को जितना ही अधिक औटाया जायगा उतना ही अधिक उत्तरोत्तर गुरु, स्निग्ध, वीर्य तथा बल को बढ़ाने वाला होता जायगा ॥ २४-२८ ॥

अथ पीयूष-किलाट-क्षीरशाक-तक्रपिण्ड-मोरटानां-लक्षणानि गुणाँश्चाह

क्षीरं तत्कालसूताया घनं पीयूषमुच्यते। नष्टदुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः ॥२९॥

पीयूष, किलाट, क्षीरशाक, तक्रपिण्ड तथा मोरट के लक्षण और गुण—**पीयूष के लक्षण**—तत्काल की ब्याई हुई गाय, भैंस आदि के गाढ़े दूध को "पीयूष" कहते हैं।

किलाटक के लक्षण—बिगड़े हुये दूध को यदि औटाते २ गाढ़ा करके पिण्डाकार बना लिया जाय तो उसे किलाटक कहते हैं ॥ २९ ॥

*पीयूषं "पेवस" इति लोके। किलाटकः 'खरेटा' "गिजिरी" वा इति लोके ॥ २९ ॥

यहाँ पर मूल में—"पीयूष" से लोकप्रसिद्ध "पेवस" का तथा "किलाटक" से लोकप्रसिद्ध "खरेटा—या—गिजिरी" का बोध करना चाहिये ॥ २९ ॥

अपक्वमेव यन्नष्टं क्षीरशाकं हि तत्पयः ॥ ३० ॥

क्षीरशाक के लक्षण—जो दूध बिना औटाये ही (कच्चा ही) फट गया हो उसे क्षीरशाक कहते हैं ॥ ३० ॥

क्षीरशाकं 'तुषिमरा' वा 'खिरिसा' इति लोके ॥ ३० ॥

यहां पर "क्षीरशाक" से लोकप्रसिद्ध "तुषिमरा—या-खिरिसा" का बोध करना चाहिये ॥ ३० ॥

दध्ना तक्रेण वा नष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा । द्रवभावेन सहितं तक्रपिण्डः स उच्यते ॥३१॥
नष्टदुग्धभवं नीरं मोरटं जेज्जटोऽब्रवीत । पीयूषश्च किलाटश्च क्षीरशाकं तथैव च ॥३२॥
तक्रपिण्ड इमे वृष्या बृंहणा बलवर्द्धनाः । गुरवः श्लेष्मला हृद्या वातपित्तविनाशनाः ॥३३॥
दीप्ताग्नीनां विनिद्राणां विद्रधौ चाभिपूजिताः । मुखशोषतृषादाहरक्तपित्तज्वरप्रणुत् ॥
लघुर्बलकरो रुच्यो मोरटः स्यात्सितायुतः ॥ ३४ ॥

तक्रपिण्ड के लक्षण—जो दूध-दही अथवा तक्र (छाछ) के संयोग से फट गया हो अथवा फाड़ा गया हो उसे यदि वस्त्र में बांध कर लटका दिया जाय तो द्रवपदार्थ हीन होने पर अर्थात पानी का भाग निकल जाने पर उसे "तक्रपिण्ड" कहते हैं ।

मोरट के लक्षण—उक्त प्रकार से दूध के फट जाने के बाद वस्त्र में बांधने पर जो जल टपक कर गिरता है उसे "मोरट" कहते हैं, ऐसा "जेज्जट" आचार्य का कथन है ॥

पीयूष-किलाट-क्षीरशाक तथा तक्रपिण्ड ये सब—वीर्यवर्धक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), बलको बढ़ाने वाले, गुरु, कफकारक, हृदय को हितकर, वात तथा पित्तनाशक, दीप्त अग्निवाले तथा जिन्हें नींद नहीं आती है ऐसे लोगों के लिये एवं विद्रधि रोग वालों के लिये अत्युत्तम होते हैं । और मोरट यदि बूरा से युक्त हो तो-लघु, बलकारक, रुचिजनक एवम् मुखशोष, प्यास, दाह, रक्तपित्त तथा ज्वर को दूर करने वाला होता है ॥ ३१-३४ ॥

अथ सन्तानिका (मलाई) गुणानाह

सन्तानिका गुरुः शीता वृष्या पित्तास्रवातनुत् । तर्पणी बृंहणी स्निग्धा बलासबलशुक्रला॥३५

मलाई—गुरु, शीतल, वीर्यवर्धक, तृप्तिकारक, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), स्निग्ध, कफ, बल तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाली एवम् पित्त-रक्तविकार तथा वात को दूर करने वाली होती है ॥ ३५ ॥

अथ खण्डादियुक्तस्य दुग्धस्य गुणानाह

खण्डेन सहितं दुग्धं कफकृत्पवनापहम् । सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं त्रिमलापहम् ।
सगुडं मूत्रकृच्छ्रघ्नं पित्तश्लेष्मकरं परम् ॥ ३६ ॥

खांड पड़ा हुआ दूध—कफकारक तथा वातनाशक होता है ।
बूरा या मिश्री पड़ा हुआ दूध-शुक्रजनक तथा त्रिदोषनाशक होता है । **गुड़ पड़ा हुआ दूध**-मूत्र-कृच्छ्रनाशक एवम् पित्त तथा कफ को अधिक उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ३६ ॥

अथ प्रभातादिभवस्य दुग्धस्य गुणानाह

रात्रौ चन्द्रगुणाधिक्याद्व्यायामाकरणात्तथा । प्राभातिकं पयः प्रायः प्रादोषाद् गुरु शीतलम् ॥
दिवाकरकराघाताद्व्यायामानिलसेवनात । प्राभातिकात्तु प्रादोषं लघु वातकफापहम् ॥३८॥

प्रातः आदि समयों के दूध का गुण—प्रातःकाल का दूध प्रायः करके सायंकाल के दूध की अपेक्षा अधिक गुरु तथा शीतल होता है क्योंकि-रात्रि में चन्द्रमा के गुणों की अधिकता रहती है तथा व्यायाम (चलने फिरने का श्रम) नहीं किया जाता है । और सायंकाल का दूध प्रातःकाल के दूध की अपेक्षा लघु एवम् वात तथा कफनाशक होता है, क्योंकि-दिन में शरीर पर सूर्य की किरणें पड़ती रहती हैं एवम् व्यायाम (चलने फिरने का श्रम) तथा वायु सेवन होता रहता है ॥ ३७-३८ ॥

अथ दुग्धसेवनस्य समयविशेषेण गुणविशेषानाह

वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम् ।
बाले वृद्धिकरं क्षयेऽक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं चक्षुर्हितं संस्मृतम् ॥
वदन्ति पेयं निशि केवलं पयो भोज्यं न तेनेह सहौदनादिकम् ।
भवत्यजीर्णं न शयीत शर्वरीं क्षीरस्य पीतस्य न शेषमुत्सृजेत् ॥ ४० ॥
विदाहीन्यन्नपानानि दिवा भुङ्क्ते हि यन्नरः । तद्विदाहप्रशान्त्यर्थं रात्रौ क्षीरं सदा पिबेत् ॥
दीप्तानले कृशे पुंसि बाले वृद्धे पयःप्रिये । मतं हिततमं दुग्धं सद्यःशुक्रकरं यतः ॥ ४२ ॥

समय विशेष में दूध पीने के विशेष गुण—दिन के पूर्व भाग (सुबह से १० बजे तक) में दुग्धपान (दूध पीना) वीर्यवर्धक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक) तथा अग्नि को दीप्त करने वाला होता है । मध्याह्न काल में दुग्धपान-बलकारक, कफ तथा पित्त को दूर करने वाला एवम् अग्नि-दीपक होता है ।

बाल्यावस्था में दुग्धपान-शरीर की वृद्धि करने वाला होता है ।

क्षय अवस्था में—क्षय का निवारण करने वाला और वृद्धावस्था में दुग्धपान शुक्र की रक्षा करने वाला होता है ।

रात्रि में दुग्धपान-पथ्य (हितकर), अनेक दोषों को शमन करने वाला एवम् नेत्रों के लिये हितकर ऋषियों द्वारा कहा गया है ।

और कोई आचार्य यह कहते हैं कि—रात्रि में केवल दूध पीना चाहिये, उसके साथ भात आदि नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इससे अजीर्ण होता है, और रात्रि में नींद भी नहीं आती है, और दूध पीने के बाद पात्र में कुछ शेष भाग न रख छोड़े अर्थात् जितना पीना हो उतना ही दूध लेकर पीवे अथवा दूध यदि कुछ अधिक हो जाय तो भी पीने से हानि नहीं हो सकती अतः दूध कभी पीकर नहीं छोड़ देना चाहिये ।

मनुष्य दिन में जो कुछ विदाही (दाह पैदा करने वाले) अन्न-पान आदि का सेवन करता है उससे होने वाले दाह की शान्ति के लिये रात्रि में उसे प्रतिदिन दूध अवश्य पीना चाहिये । जिनकी अग्नि प्रदीप्त है या जो कृश हैं उन सभी के लिये एवम् बालक, वृद्ध तथा जिन्हें दूध प्रिय हो ऐसे लोगों के लिये दुग्ध पान अत्यन्त हितकर होता है क्योंकि यह (दुग्धपान) तत्काल (पीते ही पीते) शुक्र की वृद्धि करने वाला होता है ॥ ३९-४२ ॥

अथ मथितदुग्धस्य गुणानाह

क्षीरं गव्यमथाजं वा कोष्णं दण्डाहतं पिबेत् । लघु वृष्यं ज्वरहरं वातपित्तकफापहम् ॥४३॥

मथे हुये दूध के गुण—गाय अथवा बकरी का दूध यदि औटाया हुआ मथानी से मथ कर किञ्चित् उष्ण रहते ही पीवे तो वह लघु, वीर्यवर्धक, एवम्—ज्वर, वात, पित्त तथा कफ को दूर करने वाला होता है ॥ ४३ ॥

अथ दुग्धफेनम् (झाग) । तस्य गुणानाह

गोदुग्धप्रभवं किं वा छागीदुग्धसमुद्भवम् । भवेत् फेनं त्रिदोषघ्नं रोचनं बलवर्द्धनम् ॥४४॥
वह्निवृद्धिकरं वृष्यं सद्यस्तृप्तिकरं लघु । अतीसारेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥ ४५ ॥

गाय अथवा बकरी के दूध का फेन—त्रिदोषनाशक, रोचक, बलवर्धक, अग्नि की वृद्धि करने वाला, वीर्यवर्धक, तत्काल तृप्ति देने वाला, लघु एवम् अतीसार, अग्नि की मन्दता तथा पुराने ज्वर में हितकर होता है ॥ ४४-४५ ॥

अथ निन्दितदुग्धस्य लक्षणमाह

विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धं ग्रथितं पयः । वर्जयेदम्ललवणयुक्तं कुष्ठादिकृद् यतः ॥ ४६ ॥

निन्दित दूध के लक्षण—जो दूध-विवर्ण (बदरङ्ग हो गया हो), विरस (खराब स्वाद वाला), खट्टा, दुर्गन्धयुक्त, ग्रन्थि पड़ा हुआ (फटा हुआ) एवम् खटाई या निमक पड़ा हुआ हो उसे छोड़ देना चाहिये अर्थात न पीवे, क्योंकि उक्त दूध के पीने से कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभाव विरचिते भावप्रकाशे
मिश्रप्रकरणे चतुर्दशो दुग्धवर्गः समाप्तः ॥ १४ ॥



अथ दधिवर्गः

तत्र दध्नो गुणानाह

दध्युष्णं दीपनं स्निग्धं कषायानुरसं गुरु । पाकेऽम्लं ग्राहि[1] पित्तास्रशोथमेदःकफप्रदम् ॥ १ ॥
मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरे । अतीसारेऽरुचौ कार्श्ये शस्यते बलशुक्रकृत् ॥ २ ॥

दही—उष्ण, अग्निदीपक, स्निग्ध, किञ्चित् कषाय रस युक्त, गुरु, विपाक में अम्लरसयुक्त, ग्राही एवम् पित्त, रक्तविकार, शोथ, मेद और कफ को उत्पन्न करने वाला होता है । और मूत्र-कृच्छ्र, जुखाम, शीत विषमज्वर, अतीसार, अरुचि तथा कृशता में उत्तम होता है और बल तथा शुक्र को बढ़ाने वाला होता है ॥ १-२ ॥

अथ दधिभेदानाह

आद्यौ मन्दं ततः स्वादु स्वाद्वम्लञ्च ततः परम् । अम्लं चतुर्थमत्यम्लं पञ्चमं दधि पञ्चधा ॥

दही के भेद—१ मन्द, २ स्वादु, ३ स्वाद्वम्ल, ४ अम्ल, ५ अत्यम्ल इस भांति से दही के पांच भेद होते हैं ॥ ३ ॥

अथ मन्दादिदध्नो लक्षणं गुणाँश्चाह

मन्दं दुग्धवदव्यक्तरसं किञ्चिद्घनं भवेत् । मन्दं स्यात्सृष्टविण्मूत्रं दोषत्रयविदाहकृत् ॥ ४ ॥
यत्सम्यग्घनतां यातं व्यक्तस्वादुरसं भवेत् । अव्यक्ताम्लरसं तत्तु स्वादु विज्ञैरुदाहृतम् ॥ ५ ॥
स्वादु स्यादत्यभिष्यन्दि वृष्यं मेदःकफावहम् । वातघ्नं मधुरं पाके रक्तपित्तप्रसादनम् ॥६॥
स्वाद्वम्लं सान्द्रमधुरं कषायानुरसं भवेत् । स्वाद्वम्लस्य गुणा ज्ञेया सामान्यदधिवज्जनैः ॥
यत्तिरोहितमाधुर्यं व्यक्ताम्लत्वं तदम्लकम् । अम्लं तु दीपनं पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम् ॥ ८ ॥
तदत्यम्लं दन्तरोमहर्षकण्ठादिदाहकृत् । अत्यम्लं दीपनं रक्तवातपित्तकरं परम् ॥ ९ ॥

मन्द दही के लक्षण—जो दही—दूध के समान (ठीक से नहीं जमा हुआ), अव्यक्त रस-वाला तथा कुछ गाढ़ा होता है उसे "मन्द" कहते हैं ।

मन्द दही—मल तथा मूत्र की प्रवृत्ति करने वाला, त्रिदोष और दाह को उत्पन्न करने वाला होता है ।

स्वादु दही के लक्षण—जो दही भली भांति गाढ़ा हो गया हो और जिस का स्वादु (मधुर) रस अच्छी तरह प्रगट हो रहा हो तथा अम्लरस अव्यक्त हो (ठीक से नहीं मालूम पड़ता हो) उसे विद्वानों ने "स्वादु" संज्ञक दही बताया है ।

स्वादु संज्ञक दही—अत्यन्त अभिष्यन्दी, वीर्यवर्धक, मेद तथा कफ को उत्पन्न करने वाला, वातनाशक, विपाक में मधुर रसयुक्त तथा रक्तपित्त को शांत करने वाला होता है ।

स्वाद्वम्ल संज्ञक दही के लक्षण—गाढ़ा, मधुर रसयुक्त तथा अन्त में कषाय रस युक्त दही को "स्वाद्वम्ल" संज्ञक दही कहते हैं ।

---

१. श्वास इति पाठा० ।

स्वाद्वम्लसंज्ञक दही—गुणों में साधारण दही के समान होता है ऐसा विद्वानों का मत है। **अम्लसंज्ञक दही के लक्षण**—जिस दही में मधुर रस छिपा हुआ हो और अम्ल रस प्रगट हो रहा हो उसे "अम्ल" संज्ञक दही समझना चाहिये। **अम्लसंज्ञक दही**—अग्निदीपक एवम् पित्त, रक्तविकार तथा कफ को बढ़ाने वाला होता है।

अत्यम्ल संज्ञक दही के लक्षण—जिस दही के खाने से दांत हर्षित हो जायं तथा रोंगटे खड़े हो जायं और कण्ठ आदि में दाह होने लगे उसे "अत्यम्ल" संज्ञक दही जानना चाहिये।

अत्यम्ल संज्ञक दही—अग्निदीपक एवम् रक्तविकार, वात तथा पित्त को अत्यन्त उत्पन्न करने वाला होता है ॥ ४-९ ॥

अथ गोदधिगुणानाह

गव्यं दधि विशेषेण स्वाद्वम्लं च रुचिप्रदम्। पवित्रं दीपनं हृद्यं पुष्टिकृत्पवनापहम्।
उक्तं दध्नामशेषाणां मध्ये गव्यं गुणाधिकम् ॥ १० ॥

गाय का दही—विशेष रूप से मधुर तथा अम्लरसयुक्त, रुचि उत्पन्न करने वाला, पवित्र, अग्निदीपक, हृदय के लिये हितकर, पुष्टिकारक तथा वातनाशक होता है और सम्पूर्ण दहियों के बीच में गाय का ही दही अधिक गुण करने वाला कहा हुआ है ॥ १० ॥

अथ माहिषदधिगुणानाह

माहिषं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत्।
स्वादुपाकमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्वस्रदूषकम् ॥ ११ ॥

भैंस का दही—अत्यन्त स्निग्ध, कफजनक, वात तथा पित्त नाशक, विपाक में मधुररसयुक्त, अभिष्यन्दी, वीर्यवर्धक, गुरु तथा रक्त को दूषित करने वाला होता है ॥ ११ ॥

अथाजदधिगुणानाह

आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रयापहम्। शस्यते श्वासकासार्शःक्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥१२॥

बकरी का दही—उत्तम, ग्राही, लघु, त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक एवम्—श्वास, खांसी, अर्श, क्षय तथा कृशता में हितकर होता है ॥ १२ ॥

अथ पक्वदुग्धजातस्य दध्नो गुणानाह

पक्वदुग्धभवं रुच्यं दधि स्निग्धं गुणोत्तमम्। पित्तानिलापहं सर्वधात्वग्निबलवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

पकाये हुये दूध से तैयार किया हुआ दही—रुचिकारक, स्निग्ध, उत्तम गुणवाला, पित्त तथा वात को दूर करने वाला एवम्—सम्पूर्ण धातु, अग्नि तथा बल को बढ़ाने वाला होता है ॥ १३ ॥

अथ निःसारदुग्धजनितदध्नो गुणानाह

असारं दधि सङ्ग्राहि शीतलं वातलं लघु। विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणीरोगनाशनम् ॥१४॥

निःसार दूध का दही—संग्राही, शीतल, वातजनक, लघु, विष्टम्भकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक एवम्—ग्रहणीरोग को नष्ट करने वाला होता है ॥ १४ ॥

अथ गालितदध्नो गुणानाह

गालितं दधि सुस्निग्धं वातघ्नं कफकृद् गुरु। बलपुष्टिकरं रुच्यं मधुरं नातिपित्तकृत् ॥ १५ ॥

गालित (वस्त्र से छाने हुये) दही—अति स्निग्ध, वातनाशक, कफकारक, गुरु, बल तथा पुष्टि को करने वाला, रुचिजनक, मधुररसयुक्त तथा अत्यन्त पित्तकारक नहीं होता है अर्थात् किञ्चित् पित्त करने वाला होता है ॥ १५ ॥

अथ शर्कराऽऽदिसहितस्य दध्नो गुणानाह

सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णापित्तास्रदाहजित्। सगुडं वातनुद् वृष्यं बृंहणं तर्पणं गुरु ॥ १६ ॥

शक्कर मिला हुआ दही—श्रेष्ठ होता है एवम् तृष्णा (प्यास), पित्त, रक्तविकार तथा दाह को नष्ट करने वाला होता है।

गुड़ मिला हुआ दही—वातनाशक, वीर्यवर्धक, बृंहण (रस रक्तादिवर्धक), तृप्तिकारक तथा गुरु होता है ॥ १६ ॥

अथ रात्रौ दधिभक्षणस्य निषेधमाह

न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्। नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥ १७ ॥

रात्रि में दही खाने का निषेध—रात्रिमें दही नहीं खाना चाहिये, और बिना घी तथा शक्कर के या बिना मूंगकी दाल के वा बिना मधुके अथवा गरम किंवा बिना आंवला के दही नहीं खाना चाहिये ॥ १७ ॥

❀ अयमर्थः

रात्रौ दधि न भुञ्जीत, भुञ्जीत चेत्तदा-अघृतशर्करममुद्गसूपमक्षौद्रमुष्णं विनाऽऽमलकञ्च दधि न भुञ्जीत। तेन घृतशर्कराऽऽदियुक्तं दधि रात्रावपि भुञ्जीतेत्यर्थः।

यहां पर उपर्युक्त श्लोक का वास्तविक अर्थ यह समझना चाहिये कि—रात्रि में दही कभी नहीं खाना चाहिये, यदि खाना ही हो तो घी, शक्कर, या मूंग की दाल वा शहद किंवा आंवला के बिना अथवा गरम न खाय, इससे यह सिद्ध हुआ कि—घी, शक्कर आदि से युक्त दही रात्रि में भी खायें।

❀ तथा च

शस्यते दधि नो रात्रौ शस्तं चाम्बुघृतान्वितम्। रक्तपित्तकफोत्थेषु विकारेषु तु नैव तत् ॥१॥

तथा इसी विषय में और भी कहा है कि—रात्रि में दही खाना उचित नहीं है किन्तु यदि जल तथा घी मिला हुआ हो तो खाना उचित है। किन्तु रक्त, पित्त तथा कफ सम्बन्धी विकारों में वह भी अर्थात् जल तथा घी से मिला हुआ भी दही खाना उचित नहीं होता है अर्थात् अहितकर होता है ॥ १ ॥

तद् = अम्बुघृतान्वितमपि (॥ १ ॥) ॥ १७ ॥

यहां पर "तत्" पद का "वह भी अर्थात् जल तथा घी से मिला भी दही" यह अर्थ समझना चाहिये (॥ १ ॥) ॥ १७ ॥

अथ ऋतुविशेषेण दध्नो विधिनिषेधावाह

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते । शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम् ॥१८॥

ऋतु विशेष से दही खाने की विधि तथा निषेध—हेमन्त (अगहन-पूस), शिशिर (माघ-फागुन) तथा वर्षा (सावन-भादो) ऋतु में दही खाना उत्तम है। शरद् (क्वार-कार्त्तिक), ग्रीष्म (जेठ-आषाढ़) तथा वसन्त (चैत-वैशाख) ऋतु में दही खाना प्रायः करके निन्दित है अर्थात् निषिद्ध है ॥ १८ ॥

अथ विधिमन्तरेण दधिसेवने दुर्गुणानाह

ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्ड्वामयभ्रमान् । प्राप्नुयात्कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः ॥

विना विधि के दही सेवन करने के दुर्गुण-जो दही का प्रेमी व्यक्ति विधि को छोड़ कर अर्थात् जब जिस भांति दही खाने की विधि है उसके विरुद्ध सदा दही खाता रहता है तो उसे ज्वर, रक्त-पित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डु तथा भ्रम रोग एवम् प्रचण्ड रूप से कामला रोग उत्पन्न हो जाता है। अतः विधिपूर्वक दही खाना चाहिये ॥ १९ ॥

अथ दध्नः सरमस्तुनोर्लक्षणं गुणाँश्चाह

दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः । स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति॥
सरः स्वादुर्गुरुर्वृष्यो वातवह्निप्रणाशनः । सोऽम्लो वस्तिप्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ॥२१॥
मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् ॥ २२ ॥
स्रोतोविशोधनं ह्लादि कफतृष्णानिलापहम् । अवृष्यं प्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति मलसञ्चयम् ॥

सर के लक्षण—दही के ऊपर जो गाढ़ा तथा स्नेह (घी) से युक्त भाग होता है उसे लोक में सर (साढ़ी) कहते हैं।

मस्तु के लक्षण—और दही के मांड (पानी) को मस्तु (दही का तोड़) कहते हैं।

सर—जो सर स्वादिष्ट होता है वह गुरु, वीर्य वर्धक, वात तथा जठराग्नि नाशक होता है और यदि वह (सर) अम्ल रस युक्त होता है, तो वस्ति के रोगों का प्रशमन करता है एवम्-पित्त तथा कफ को बढ़ाता है।

मस्तु (दही का तोड़)—क्लान्ति को दूर करने वाला, बलदायक, लघु, अन्न खाने की अभिलाषा को उत्पन्न करने वाला, स्रोतोमार्ग (नाड़ियों के मार्ग) को शुद्ध करने वाला, आह्लादजनक एवम् कफ, तृषा तथा वायु को नष्ट करने वाला, अवृष्य (किञ्चित् वीर्यवर्धक) तथा शीघ्र संचित मल का भेदन करने वाला होता है ॥ २०–२३ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे

पञ्चदशो दधिवर्गः समाप्तः ॥ १५ ॥

अथ तक्रवर्गः

तत्र तक्रस्य पृथक्पृथङ् नामानि लक्षणं गुणाँश्चाह

घोलं तु मथितं तक्रमुदश्विच्छच्छिकाऽपि च । ससरं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम् ॥१॥
तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्विदर्द्धवारिकम् । छच्छिका सारहीना स्यात्स्वच्छा प्रचुरवारिका ॥
घोलं तु शर्करायुक्तं गुणैर्ज्ञेयं रसालवत् ॥ २ ॥

तक्र (मट्ठा) के भिन्न २ लक्षणों के अनुसार भिन्न २ संस्कृत नाम—घोल, मथित, तक्र, उदश्वित और छच्छिका ये सब हैं। अर्थात् उक्त ५ भेद तक्र के होते हैं।

लक्षण—**घोल**—विना जल मिलाये यदि मलाई के सहित दही को मथा जाय तो उसे "घोल" कहते हैं। **मथित**—यदि दही की मलाई अलग कर विना जल मिलाये ही मथ दिया जाय तो उसे "मथित" कहते हैं। **तक्र**—जिस दही में चतुर्थांश जल मिला कर मथा जाय तो उसे तक्र कहते हैं।

उदश्वित्—जिस दही में आधा जल मिलाकर मथा जाय उसे "उदश्वित" कहते हैं।

छच्छिका—जिस दही में से प्रथम मथ कर मक्खन निकाल लिया हो पुनः उसी में अधिक मात्रा में स्वच्छ जल डालकर फिर मथा जाय तो उसे "छच्छिका" कहते हैं ॥ १–२ ॥

***मथितम् = 'महुया' वा 'मथुवा' इति लोके। छच्छिका "छाछ" = इति लोके ॥१–२॥**

यहां पर—"मथितम्" से लोकप्रसिद्ध "महुया" या "मथुवा" का तथा "छच्छिका" से लोकप्रसिद्ध "छाछ" का ग्रहण करना चाहिये ॥ १–२ ॥

घोलं तु शर्करायुक्तं गुणैर्ज्ञेयं रसालवत् । वातपित्तहरं ह्लादि मथितं कफपित्तनुत् ॥ ३ ॥
तक्रं ग्राहि कषायाम्लं स्वादुपाकरसं लघु । वीर्योष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् ॥४॥
ग्रहण्यादिमतां पथ्यं भवेत्संग्राहि लाघवात् । किञ्च स्वादुविपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपणम् ॥५॥
अम्लोष्णं दीपनं वृष्यं प्रीणनं वातनाशनम् । कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चापि कफापहम् ॥
न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ।
यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ ७ ॥
उदश्वित् कफकृद् बल्यमामघ्नं परमं मतम् । छच्छिका शीतला लघ्वी पित्तश्रमतृषाहरी ॥
वातनुत् कफकृत् सा तु दीपनी लवणान्विता ॥ ८ ॥

घोल—घोल में यदि शक्कर मिला हुआ हो तो वह गुणों में रसाल (सिखरन) के समान होता है एवम् वात तथा पित्तनाशक और आह्लादजनक होता है।

मथित—यह कफ तथा पित्तनाशक होता है। **तक्र**—यह कषाय तथा मधुर रस युक्त, विपाक में मधुर रस युक्त, ग्राही, लघु, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, तृप्तिकारक तथा वातनाशक होता है।

ग्रहणी आदि के रोगियों को तक्र हितकर होता है क्योंकि यह लघु होने से मल का संग्राहक होता है और विपाक में मधुर रस युक्त होने से पित्त को प्रकुपित भी नहीं करता है एवम् अम्लरस युक्त, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक तथा तृप्तिकारक होने से यह वातनाशक होता है और कषाय रसयुक्त, उष्णवीर्य, विकाशी तथा रूक्ष होने से यह कफनाशक होता है। तक्र का सेवन

करने वाला व्यक्ति कभी भी बीमार नहीं पड़ता है, और तक्र के प्रभाव से नष्ट हुये रोग पुनः कभी उत्पन्न नहीं हो सकते, अस्तु जिस प्रकार से देवताओं के लिये सुखकारी अमृत है उसी भाँति पृथ्वी तल में मनुष्यों के लिये तक्र सुखकारी, ऋषियों ने बताया है।

उदश्वित्—कफकारक, बलवर्धक तथा अत्यन्त आमनाशक होता है।

छाछ—शीतल, लघु एवम् पित्त, श्रम तथा तृषा को दूर करने वाला, वातनाशक तथा कफ कारक होता है और यदि इसमें सेंधानिमक मिला हो तो अग्निदीपक होता है ॥ ३-८ ॥

अथोद्धृतस्तोकोद्धृतानुद्धृतघृतानां तक्राणां गुणानाह

समुद्धृतघृतं तक्रं पथ्यं लघु विशेषतः ॥ ९ ॥
स्तोकोद्धृतघृतं तस्माद् गुरु वृष्यं कफापहम्। अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु पुष्टिकफप्रदम् ॥१०॥

घी निकाला हुआ तक्र—पथ्य (रोगियों के लिये हितकर) तथा लघु होता है। यदि कुछ घी निकाल लिया गया हो और कुछ अंश घी का रह गया हो तो ऐसा तक्र—उपर्युक्त तक्र (घी निकाले हुये तक्र) की अपेक्षा गुरु, वीर्यवर्धक तथा कफनाशक होता है। और यदि घी न निकाला हुआ हो तथा गाढ़ा हो तो ऐसा तक्र—गुरु एवम् पुष्टिकारक तथा कफजनक होता है ॥ ९-१० ॥

अथ दोषविशेषे व्याधिविशेषे च तक्रविशेषानाह

वातेऽम्लं शस्यते तक्रं शुण्ठीसैन्धवसंयुतम्। पित्ते स्वादु सितायुक्तं व्योषक्षारयुतं कफे ॥
हिङ्गुजीरयुतं घोलं सैन्धवेन च संयुतम्। भवेदतीव वातघ्नमर्शोऽतीसारहृत्परम् ॥ १२ ॥
रुचिदं पुष्टिदं बल्यं वस्तिशूलविनाशनम्। मूत्रकृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम् ॥ १३ ॥

दोषविशेष में तथा रोगविशेष में विशेष २ तक्रों का प्रयोग—वातदोष की अधिकता में—अम्लरसयुक्त एवम् सोंठ तथा सेंधा निमक मिला हुआ तक्र उत्तम अर्थात् हितकारी होता है। पित्त की अधिकता में—मधुर रसयुक्त तथा चीनी मिश्रित तक्र उत्तम हितकारी होता है। कफ की अधिकता में—सोंठ, मिरच तथा पीपर मिश्रित तक्र उत्तम हितकारी होता है।

हींग, जीरा (ये दोनों भुने हुये हों,) तथा सेंधा निमक से युक्त घोल—अत्यन्त वातनाशक, अर्श तथा अतिसार को अत्यन्त दूर करने वाला, रुचिजनक, पुष्टिकारक, बलदायक एवं बस्तिशूल नाशक होता है। गुड़युक्त घोल—मूत्रकृच्छ्र में एवम् चित्रक (चीता) मिश्रित घोल—पांडुरोग में देना हितकर है।

अथ पक्वापक्वतक्रयोर्गुणानाह

तक्रमामं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च। पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव प्रयुज्यते ॥ १४ ॥

कच्चा (बिना पकाया हुआ) तक्र-कोष्ठ स्थित कफ को नष्ट करता है तथा कण्ठ में कफ करने वाला होता है। अतः पकाये हुए तक्र का ही—पीनस, श्वास तथा कास आदि में प्रयोग करना उचित है क्योंकि हितकर होता है ॥ १४ ॥

अथ तक्रसेवनविषयानाह

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च तथा वातामयेषु च। अरुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतोपमम् ॥
तच्च हन्ति गरच्छर्दिप्रसेकविषमज्वरान्। पाण्डुमेदोग्रहण्यर्शोमूत्रग्रहभगन्दरान् ॥१५॥
मेहं गुल्ममतीसारं शूलप्लीहोदरारुचीः। श्वित्रकोष्ठगतव्याधीन् कुष्ठशोथतृषाकृमीन् ॥१६॥

तक्र सेवन करने के विषय—शीतकाल में तथा अग्नि की मन्दता, वातरोग, अरुचि तथा नाड़ियों के अवरोध में तक्र अमृत के समान गुणकारी होता है। और यह—गर (संयोगज विष), वमन, प्रसेक (कफजन्य लार आदि गिरना), विषमज्वर, पाण्डुरोग, मेदरोग, ग्रहणी, अर्श (बवासीर), मूत्रग्रह (मूत्र का बन्द होना), भगन्दर, प्रमेह, गुल्म, अतीसार, शूल, प्लीहा, उदररोग, अरुचि, श्वित्र (श्वेतकुष्ठ), कोष्ठगत रोग, कुष्ठ, शोथ, तृषा, तथा क्रमिरोग को नष्ट करने वाला होता है ॥ १४-१६ ॥

अथ तक्रस्य निषेधविषयानाह

नैव तक्रं क्षये[1] दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले। न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे ॥ १७ ॥

तक्र निषेध के विषय—तक्र—क्षय रोग में तथा ग्रीष्म ऋतु में एवम् दुर्बल व्यक्ति तथा मूर्च्छा, भ्रम, दाह तथा रक्तपित्त रोग युक्त व्यक्ति को नहीं देना चाहिये। अर्थात् देना अहितकर होता है ॥ १७ ॥

अथ गव्यादीनां विशिष्टतक्राणां गुणानाह

यान्युक्तानि दधीन्यष्टौ तद्गुणं तक्रमादिशेत् ॥ १८ ॥

गाय आदि के दूध के दही से बने हुये तक्र के गुण—जो पूर्व में (दधिवर्ग में) गाय आदि के दूध के बने हुए आठ प्रकार के दहियों के गुण कह आये हैं वेही सब गुण उन दहियों से बने हुये तक्र के भी होते हैं, ऐसा समझना चाहिये ॥ १८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे षोडशस्तक्रवर्गः समाप्तः ॥ १६ ॥

---

१. क्षते इति पाठः।

अथ नवनीतवर्गः

तत्र नवनीतस्य नामगुणानाह

**म्रक्षणं सरजं हैयङ्गवीनं नवनीतकम्। नवनीतं हितं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत् ॥ १ ॥
संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोऽर्दितकासहृत्। तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ॥ २ ॥**

मक्खन के संस्कृत नाम—म्रक्षण, सरज, हैयङ्गवीन तथा नवनीतक ये सब हैं।

गाय का मक्खन—हितकर, वीर्यवर्धक, वर्ण को उत्तम करने वाला, बल तथा अग्नि को बढ़ाने वाला, मलसंग्राही, एवम् वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, अर्श, अर्दित वात तथा कास को दूर करने वाला होता है। तथा यह—बालक और वृद्ध के लिये हितकर एवम् विशेषकर के शिशु (अत्यन्त छोटे बच्चों) के लिये अमृत के समान गुणकारी होता है ॥ १-२ ॥

अथ माहिषनवनीतस्य गुणानाह

नवनीतं महिष्यास्तु वातश्लेष्मकरं गुरु। दाहपित्तश्रमहरं मेदःशुक्रविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

भैंस का मक्खन—वात तथा कफ कारक, गुरु एवम् दाह, पित्त तथा श्रम को दूर करने वाला और मेद तथा शुक्र की वृद्धि करने वाला होता है ॥ ३ ॥

अथ दुग्धोत्थनवनीतस्य गुणानाह

दुग्धोत्थं नवनीतं तु चक्षुष्यं रक्तपित्तनुत्। वृष्यं बल्यमतिस्निग्धं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥४॥

दूध से निकला-हुआ मक्खन—नेत्रों के लिये हितकर, रक्तपित्तनाशक, वीर्यवर्धक, बलकारक, अत्यन्त स्निग्ध, मधुर रसयुक्त, ग्राही तथा शीतल होता है ॥ ४ ॥

अथ सद्योनिःसारितनवनीतस्य गुणानाह

नवनीतं तु सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु। मेध्यं किञ्चित्कषायाम्लमीषत्तक्रांशसङ्क्रमात् ॥५॥

तत्काल का निकाला हुआ मक्खन—स्वादिष्ट, ग्राही, शीतल, लघु, मेधा के लिये हितकर एवम् किञ्चित् तक्र का अंश मिला रहने से किञ्चित् कषाय तथा अम्ल रस से युक्त भी होता है ॥५॥

अथ चिरन्तननवनीतस्य गुणानाह

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शःकुष्ठकारकम्। श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम् ॥ ६ ॥

पुराना मक्खन—क्षार, कटु तथा अम्ल रस युक्त होने से वमन, अर्श तथा कुष्ठ को उत्पन्न करने वाला होता है एवम् कफजनक, गुरु तथा मेद को बढ़ाने वाला होता है ॥ ६ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
सप्तदशो नवनीतवर्गः समाप्तः ॥ १७ ॥

अथ घृतवर्गः

तत्र घृतस्य नामगुणानाह

**घृतमाज्यं हविः सर्पिः कथ्यन्ते तद्गुणा अथ। घृतं रसायनं स्वादु चक्षुष्यं वह्निदीपनम् ॥१॥
शीतवीर्यं विषालक्ष्मीपापपित्तानिलापहम्। अल्पाभिष्यन्दि कान्त्योजस्तेजोलावण्यवृद्धिकृत् ॥
स्वरस्मृतिकरं मेध्यमायुष्यं बलकृद्गुरु। उदावर्त्तज्वरोन्मादशूलानाहव्रणान् हरेत्।
स्निग्धं कफकरं रक्षःक्षयवीसर्परक्तनुत् ॥ ३ ॥**

घी के संस्कृत नाम—घृत, आज्य, हविस् तथा सर्पिस् ये सब हैं।

घी—रसायन, स्वादिष्ट, नेत्रों के लिये हितकर, अग्निदीपक, शीतवीर्य, किंचित् अभिष्यन्दी, कान्ति, ओज, तेज और लावण्य की वृद्धि करने वाला, स्वर को स्वच्छ करने वाला तथा स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाला, मेधा (धारणाशक्ति) के लिये हितकर, आयु को बढ़ाने वाला, बलकारक, गुरु, स्निग्ध, कफकारक एवम् विष, अलक्ष्मी (दरिद्रता), पाप, पित्त, वायु, उदावर्त्त, ज्वर, उन्माद, शूल, आनाह (अफारा), व्रण, रक्षोग्रह, क्षय, वीसर्प तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥१-३॥

अथ गव्यघृतस्य गुणानाह

**गव्यं घृतं विशेषेण चक्षुष्यं वृष्यमग्निकृत्। स्वादुपाककरं शीतं वातपित्तकफापहम् ॥४॥
मेधालावण्यकान्त्योजस्तेजोवृद्धिकरं परम्। अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं वयसः स्थापकं गुरु ॥५॥
बल्यं पवित्रमायुष्यं सुमङ्गल्यं रसायनम्। सुगन्धं रोचनं चारु सर्वाज्येषु गुणाधिकम् ॥६॥**

गाय का घी—विशेष करके नेत्रों के लिये हितकर, वीर्यवर्धक, अग्निवर्धक, विपाक में मधुर-रसयुक्त, शीतल, वात पित्त तथा कफ को नष्ट करने वाला एवम् मेधाशक्ति, लावण्य, कान्ति, ओज तथा तेज की अत्यन्त वृद्धि करने वाला, अलक्ष्मी, पाप तथा रक्षोग्रह को दूर करने वाला, अवस्था को स्थिर रखने वाला, गुरु, बलकारक, पवित्र, आयु को बढ़ाने वाला, मङ्गलदायक, रसायन, सुगन्धयुक्त, रोचक एवम् सम्पूर्ण घृतों में उत्तम तथा अधिक गुणकारी होता है ॥ ४-६ ॥

अथ माहिषघृतस्य गुणानाह

माहिषन्तु घृतं स्वादु पित्तरक्तानिलापहम्। शीतलं श्लेष्मलं वृष्यं गुरु स्वादु विपच्यते ॥७॥

भैंस का घी—स्वादिष्ट, शीतल, कफजनक, वीर्यवर्धक, गुरु, विपाक में मधुर रसयुक्त एवम् पित्त और रक्त विकार तथा वात को नष्ट करने वाला होता है ॥ ७ ॥

अथाजघृतस्य गुणानाह

आजमाज्यं करोत्यग्निं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम्। कासे श्वासे क्षये चापि हितं पाके भवेत् कटु ॥८॥

बकरी का घी—जठराग्निकारक, नेत्रों के लिये हितकर, बलवर्धक, कास, श्वास तथा क्षय रोग में हितकर एवम् विपाक में कटुरसयुक्त होता है ॥ ८ ॥

अथौष्ट्रघृतस्य गुणानाह

औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोषक्रिमिविषापहम् । दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ९ ॥

ऊंटिनी का घी—विपाक में कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, कफ-वात नाशक एवम् शोष, क्रिमि, विष, कुष्ठ, गुल्म तथा उदररोग को नष्ट करने वाला होता है ॥ ९ ॥

अथाविकघृतस्य गुणानाह

पाके लघ्वाविकं सर्पिः सर्वरोगविनाशनम् ॥ १० ॥
वृद्धिं करोति चास्थ्नां वा अश्मरीशर्कराऽपहम् । चक्षुष्यमग्निसंधुक्ष्यं वातदोषनिवारणम् ॥

भेड़ी का घी—पाक में लघु, सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाला, हड्डियों की वृद्धि करने वाला, नेत्रों के लिए हितकर, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला एवम् पथरी, शर्करा तथा वात सम्बन्धी दोषों को दूर करने वाला होता है ॥ १०-११ ॥

अथ नारीघृतस्य गुणानाह

कफेऽनिले योनिदोषे पित्ते रक्ते च तद्धितम् । चक्षुष्यमाज्यं स्त्रीणां वा सर्पिः स्यादमृतोपमम्॥

स्त्री का घी—अमृत के समान होता है तथा यह नेत्रों के लिये हितकर, एवम् कफ, वात, योनिदोष, पित्त तथा रक्तविकार में भी हितकर होता है ॥ १२ ॥

अथ वडवाघृतस्य गुणानाह

वृद्धिं करोति देहाग्नेर्लघु पाके विषापहम् । तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुद् वडवाघृतम् ॥ १३ ॥

घोड़ी का घी—देह तथा अग्नि की वृद्धि करने वाला, पाक में लघु, विषनाशक, तृप्तिकारक, नेत्ररोगनाशक तथा दाह को दूर करने वाला होता है ॥ १३ ॥

अथ दुग्धनिःसृतघृतस्य गुणानाह

घृतं दुग्धभवं ग्राहि शीतलं नेत्ररोगहृत् । निहन्ति पित्तदाहास्रमदमूर्च्छाभ्रमानिलान् ॥ १४ ॥

दूध से निकाला हुआ घी—ग्राही, शीतल, नेत्ररोगनाशक एवम्—पित्त, दाह, रक्तविकार, मद, मूर्च्छा, भ्रम तथा वात को दूर करने वाला होता है ॥ १४ ॥

अथ ह्यस्तनदुग्धोत्थघृतस्य गुणानाह

हविर्ह्यस्तनदुग्धोत्थं तत्स्याद्धैयङ्गवीनकम् । हैयङ्गवीनं चक्षुष्यं दीपनं रुचिकृत्परम् ।
बलकृद् बृंहणं वृष्यं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ १५ ॥

एक दिन के पहिले के दूध से निकाले हुए घी को संस्कृत में "हैयङ्गवीन" कहते हैं। **हैयङ्गवीन**—यह नेत्रों के लिये हितकर, अग्निदीपक, अत्यन्त रुचिकारक, बलवर्धक, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वीर्यवर्धक तथा विशेष कर के ज्वरनाशक होता है ॥ १५ ॥

अथ पुराणघृतस्य गुणानाह

वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत् त्रिदोषनुत् । मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम् ॥१६॥
यथा यथाऽखिलं सर्पिः पुराणमधिकं भवेत् । तथा तथा गुणैः स्वैः स्वैरधिकं तदुदाहृतम् ॥

पुराना घी—एक वर्ष से ऊपर का रक्खा हुआ घी पुराना कहलाता है। **पुराना घी**—त्रिदोषनाशक एवम्, मूर्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, मिर्गी तथा तिमिर रोग को दूर करने वाला होता है।

पूर्वोक्त सभी घृत—जैसे २ अधिक पुराने होते जायेंगे वैसे २ अपने २ गुणों को अधिक करते जायेंगे अर्थात् उत्तरोत्तर अधिक गुणकारी होते जायेंगे ॥ १६-१७ ॥

अथ नवीनघृतस्य विषयानाह

योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे । बलक्षये पाण्डुरोगे कामलानेत्ररोगयोः ॥ १८ ॥

नवीन घी के प्रयोग करने के विषय—भोजन, तर्पण, परिश्रम, बल का क्षय, पाण्डु, कामला तथा नेत्ररोग इन सबों में नवीन घृत का ही प्रयोग करना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ घृतप्रयोगस्याविषयानाह

राजयक्ष्मणि बाले च वृद्धे श्लेष्मकृते गदे ॥ १९ ॥
रोगे सामे विषूच्यां च विबन्धे च मदात्यये । ज्वरे च दहने मन्दे न सर्पिर्बहु मन्यते ॥२०॥

घी प्रयोग करने के अविषय—बालक तथा वृद्ध लोगों के लिये, एवम् राजयक्ष्मा, कफजन्यरोग, आमयुक्त रोग, विषूचिका (हैजा), मलबन्ध, मदात्यय, ज्वर तथा अग्नि की मन्दता इन सबों में घी देना अत्यन्त प्रशस्त नहीं है ॥ १९-२० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणेऽष्टादशो
घृतवर्गः समाप्तः ॥ १८ ॥

अथ मूत्रवर्गः

तत्र गोमूत्रगुणानाह

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायकम् । लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥ १ ॥
शूलगुल्मोदरानाहकण्डूक्ष्यक्षिमुखरोगजित् । किलासगदवातामवस्तिरुक्कुष्ठनाशनम् ॥
कासश्वासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत् ॥ २ ॥
कण्डूकिलासगदशूलमुखाक्षिरोगान्गुल्मातिसारमरुदामयमूत्ररोधान् ।
कासं सकुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान्गोमूत्रमेकमपि पीतमपाकरोति ॥ ३ ॥
सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम् । अतोऽविशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ॥ ४ ॥
प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्चोग्रहापहम् ॥ ५ ॥
शूलगुल्मरुजाऽऽनाहकामलापाण्डुरोगहृत् । कषायं तिक्ततीक्ष्णं च पूरणात्कर्णशूलहृत् ॥ ६ ॥

गोमूत्र—कटु-तिक्त तथा कषाय रसयुक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार, लघु, अग्निदीपक, मेधा के लिये हितकर, पित्तकारक, कफ तथा वातनाशक एवम् शूल, गुल्म, उदररोग, आनाह (अफारा), खुजली, नेत्र तथा मुखसम्बन्धी रोग, किलास रोग (कुष्ठभेद), वात, आम, वस्तिसम्बन्धी रोग, कुष्ठ, कास, श्वास, शोथ, कामला तथा पाण्डुरोग को नष्ट करने वाला होता है।

और केवल एक गोमूत्र पान करने से खुजली, किलास रोग, शूल, मुख तथा नेत्र सम्बन्धी रोग, गुल्म, अतिसार, वातरोग, मूत्ररोध, कास, कुष्ठ, उदररोग, क्रिमि तथा पाण्डुरोग ये सब दूर हो जाते हैं।

और सम्पूर्ण मूत्रों में गोमूत्र ही सबसे अधिक गुणकारी होता है, अतः जहाँ पर सामान्य रूप से केवल "मूत्र" शब्द का प्रयोग आवे वहां पर "गोमूत्र" का ही बोध करना चाहिए।

गोमूत्र—कषाय तथा तिक्त रसयुक्त, तीक्ष्ण गुण युक्त, कान में डालने से कर्णशूलनाशक एवम् प्लीहा, उदररोग, श्वास, कास, शोथ, मलरोध, शूल, गुल्म, आनाह (अफरा), कामला तथा पाण्डु रोग को दूर करने वाला होता है॥ १–६ ॥

अथ मनुष्यमूत्रगुणानाह

नरमूत्रं गरं हन्ति सेवितं तद्रसायनम् । रक्तपामाहरं तीक्ष्णं सक्षारलवणं स्मृतम् ॥ ७ ॥

मनुष्य का मूत्र—तीक्ष्ण, क्षार तथा लवण रसयुक्त, गरसंज्ञक विष, रक्तविकार तथा पामारोग नाशक होता है एवम् यह सेवन करने से रसायन है॥ ७ ॥

अथ मूत्रस्य सामान्यपरिभाषामाह

गोऽजाऽविमहिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते । खरोष्ट्रेभनराश्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम् ॥

मूत्रविषयक सामान्य परिभाषा—गाय, बकरी तथा भैंस इनमें स्त्री जाति का मूत्र उत्तम होता है, तथा गदहा, ऊंट, हाथी, मनुष्य तथा घोड़ा इनमें पुरुष जाति का मूत्र हितकारक होता है अर्थात् जहां पर प्रयोग करना हो तो वहां पर उक्त मूत्रों का ही ग्रहण करना चाहिये॥ ८ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
एकोनविंशो मूत्रवर्गः समाप्तः ॥ १८ ॥



अथ तैलवर्गः

तत्र तैलस्य स्वरूपं गुणं चाह

तिलादिस्निग्धवस्तूनां स्नेहस्तैलमुदाहृतम् । तत्तु वातहरं सर्वं विशेषात्तिलसम्भवम् ॥ १ ॥

तैल का स्वरूप—तिल आदि स्निग्ध (स्नेहयुक्त) वस्तुओं के स्नेह भाग को मुनि लोग "तैल" कहते हैं।

तैल—सभी प्रकार के तैल यद्यपि वातनाशक होते हैं तथापि तिल का तैल विशेष रूप से वात को नष्ट करने वाला होता है॥ १ ॥

अथ तिलतैलगुणानाह

तिलतैलं गुरु स्थैर्यबलवर्णकरं सरम् । वृष्यं विकाशि विशदं मधुरं रसपाकयोः ॥ २ ॥
सूक्ष्मं कषायानुरसं तिक्तं वातकफापहम् । वीर्येणोष्णं हिमं स्पर्शे बृंहणं रक्तपित्तकृत् ॥ ३ ॥
लेखनं बद्धविण्मूत्रं गर्भाशयविशोधनम् । दीपनं बुद्धिदं मेध्यं व्यवायि व्रणमेहनुत् ॥ ४ ॥
श्रोत्रयोनिशिरःशूलनाशनं लघुताकरम् । त्वच्यं केश्यं च चक्षुष्यमभ्यङ्गे भोजनेऽन्यथा ॥५॥
छिन्नभिन्नच्युतोत्पिष्टमथितक्षतपिच्चिते । भग्नस्फुटितविद्धाग्निदग्धविश्लिष्टदारिते ॥ ६ ॥
तथाऽभिहतनिर्भुग्नमृगव्याघ्रादिविक्षते । बस्तौ पानेऽन्नसंस्कारे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ॥
सेकाभ्यङ्गावगाहेषु तिलतैलं प्रशस्यते ॥ ७ ॥

तिल का तैल—गुरु, स्थिरता तथा बल कारक, वर्ण को उत्तम करने वाला, सारक, वृष्य (वीर्यवर्धक), विकाशी, विशद, रस तथा पाक में मधुर, सूक्ष्म गुण युक्त, आरम्भ में तिक्तरसयुक्त पश्चात् कषाय रस युक्त, वात तथा कफ नाशक, उष्णवीर्य, स्पर्श में शीतल, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), रक्तपित्तकारक, लेखन, मल तथा मूत्र को बांधने वाला, गर्भाशय का शोधन करने वाला, अग्निदीपक, बुद्धिदायक, मेधा के लिये हितकर, व्यवायि गुण युक्त, व्रण तथा मेह को दूर करने वाला, कान, योनि तथा शिर सम्बन्धी शूल नाशक, शरीर में लघुता करने वाला, अभ्यङ्ग (शरीर में मालिश) करने से त्वचा, केश तथा नेत्रों के लिये हितकर, किन्तु भोजन करने से अन्यथा होता है अर्थात् त्वचा, केश तथा नेत्र के लिये अहितकर होता है। एवम्–छिदजाने, भिदजाने, गिरजाने, पिसजाने, मसलजाने, घाव होजाने, पिचजाने, टूटजाने, फटजाने, बिंधजाने, अग्नि से जलजाने, हड्डियों के अपने स्थान से हटजाने, चिरजाने, चोट लगजाने, किसी अङ्ग के टेढ़े हो जाने तथा मृग या बाघ आदिसे घायल हो जाने पर तिलका तेल हितकर होता है, एवम्—वस्तिकर्म, पीने तथा अन्न के संस्कार करने (छौंकने) में और नस्य (नास) लेने तथा कान व आंख में डालने में एवम् सेकने, मर्दन तथा अवगाहन करने में तिल का तैल उत्तम होता है॥ २—७ ॥

तिल—इसका अन्य विवरण ६५२ पृष्ठ पर किया गया है।

ननु बृंहणलेखनयोः कथं समानाधिकरण्यमित्याह

रूक्षादिदुष्टः पवनः स्रोतः संकोचयेद् यदा । रसोऽसम्यग्वहन् कार्श्यं कुर्याद्रक्तान्यवर्द्धयन् ॥८॥
तेषु प्रवेष्टुं सरतासौक्ष्म्यस्निग्धत्वमार्दवैः । तैलं क्षमं रसं नेतुं कृशानां तेन बृंहणम् ॥ ९ ॥
व्यवायिसूक्ष्मतीक्ष्णोष्णसरत्वैर्मेदसः क्षयम् । शनैः प्रकुरुते तैलं तेन लेखनमीरितम् ॥१०॥
द्रुतं पुरीषं बध्नाति स्खलितं तत्प्रवर्त्तयेत् । ग्राहकं सारकश्चापि तेन तैलमुदीरितम् ॥ ११ ॥

यहां पर यह शङ्का होती है कि—परस्पर विरुद्ध धर्म वाले बृंहण तथा लेखन ये दोनों एक साथ तिल के तेल में कैसे रहते हैं ? इसीका उत्तर देते हुये कहते हैं कि—रूक्षादि पदार्थों के सेवन करने से जब वायु दुष्ट होकर स्रोतोमार्ग को संकुचित करता है तब रस भली भांति नहीं बहने पाता और उससे रक्त की भी वृद्धि नहीं होने पाती अतः उक्त रस शरीर में कृशता करने लगता है। ऐसी स्थिति में तिलतैल—उन संकुचित स्रोतों में अपने सरता, सूक्ष्मता, स्निग्धता तथा मृदुता इन सब गुणों के द्वारा प्रवेश करने के लिये तथा रसों को सर्वश यथास्थान पहुंचाने के लिये समर्थ होता है, इसी से कृश (दुर्बल) लोगों के लिये बृंहण (रस–रक्त–मांसादि का वर्धक) कहा गया है। और व्यवायी, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, उष्ण तथा सर इन सब गुणों से युक्त होने से इनके द्वारा मेदा का धीरे २ क्षय करता है, अतः तिल का तेल "लेखन" कहा गया है। और पतले मल को बांधता है तथा जो मल अपने स्थान से हट चुका है उसकी प्रवृत्ति कराता है अतः क्रमसे तेल ग्राहक तथा सारक दोनों कहा गया है ॥ ८–११ ॥

अथ घृततैलयोः परिभाषामाह

घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते। तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ १२ ॥

घी तथा तेल की परिभाषा—एक वर्ष से अधिक पुराना होने पर पकाया हुआ घी हीनवीर्य हो जाता है किन्तु तेल चाहे पकाया हुआ हो अथवा कच्चा ही हो जैसे २ पुराना होता जाता है वैसे २ अधिक गुणकारी होता है ॥ १२ ॥

अथ सर्षपराजिका तैलयोर्गुणानाह

दीपनं सार्षपं तैलं कटुपाकरसं लघु। लेखनं स्पर्शवीर्योष्णं तीक्ष्णं पित्तास्रदूषकम् ॥ १३ ॥
कफमेदोऽनिलार्शोघ्नं शिरःकर्णामयापहम्। कण्डूकुष्ठक्रिमिश्वित्रकोठदुष्टक्रिमिप्रणुत् ॥ १४ ॥
तद्वद्राजिकयोस्तैलं विशेषान्मूत्रकृच्छ्रकृत् ॥ १५ ॥

सरसों का तेल–अग्निदीपक, रस तथा विपाक में कटु रस युक्त, लघु, लेखन, स्पर्श तथा वीर्य में उष्ण, तीक्ष्ण, पित्त तथा रक्त को दूषित करने वाला एवम्—कफ, मेद, वायु, बवासीर, शिर तथा कान सम्बन्धी रोग, खुजली, कुष्ठ, कृमि, श्वेतकुष्ठ, कोठ तथा दुष्ट कृमि को नष्ट करने वाला होता है, इसी प्रकार से दोनों प्रकार के राई के तेल के भी गुण हैं—किन्तु विशेष कर उन दोनों के तेल मूत्रकृच्छ्र–कारक होते हैं ॥ १४–१५ ॥

***राजिकयोः = कृष्णराजिकारक्तराजिकयोः ॥ १५ ॥**

यहां पर मूल में "राजिकयोः" पद से "दोनों प्रकार की राई अर्थात् काली राई तथा लाल राईके" यह अर्थ समझना चाहिये ॥ १५ ॥

इनका अन्य विवरण पृष्ठ ६५४–६५६ पर किया गया है।

अथ तुवरीतैलगुणानाह

तीक्ष्णोष्णं तुवरीतैलं लघु ग्राहि कफास्रजित्। वह्निकृद्विषहृत्कण्डूकुष्ठकोठकृमिप्रणुत् ॥
मेदोदोषापहं चापि व्रणशोथहरं परम् ॥ १६ ॥

तुवरी का तेल–तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, ग्राही, कफ तथा रक्तविकार को दूर करने वाला, अग्निकारक, विषनाशक एवम्—खुजली, कुष्ठ, कोठ कृमि, तथा मेद सम्बन्धी दोष को नष्ट करने वाला, एवम् व्रण तथा शोथ को अत्यन्त दूर करने वाला होता है ॥ १६ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ ६५४ पर किया गया है।

अथातसीतैलगुणानाह

अतसीतैलमाग्नेयं स्निग्धोष्णं कफपित्तकृत्। कटुपाकमचक्षुष्यं बल्यं वातहरं गुरु ॥ १७ ॥
मलकृद्रसतः स्वादु ग्राहि त्वग्दोषहृद् घनम् ॥ १८ ॥
वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये कर्णस्य पूरणे। अनुपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये ॥१९॥

अलसी का तेल—आग्नेय (अग्नि के अधिक अंशों से युक्त), स्निग्ध, उष्ण, कफ तथा पित्त कारक, विपाक में कटु रसयुक्त, नेत्रों के लिए अहितकर, बलकारक, वातनाशक, गुरु, मलकारक, मधुर-रस युक्त, ग्राही, त्वचा गत दोष को दूर करने वाला और घन है और वस्तिकर्म पीने तथा मालिश करने में एवम् नस्य (नास) लेने तथा कानमें डालने के लिये और वायु को शान्त करने के लिये अनुपान विधिमें अलसी के तेल का प्रयोग करना चाहिये ॥ १७–१९ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ ६५२ पर किया गया है।

अथ कुसुम्भतैलगुणानाह

कुसुम्भतैलमम्लं स्यादुष्णं गुरु विदाहि च। चक्षुर्ष्यामहितं बल्यं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥ २० ॥

कुसुम का तेल—अम्लरस युक्त, उष्ण, गुरु, विदाही, नेत्रों के लिये अहितकर, बलकारक एवम् रक्तपित्त तथा कफ कारक है ॥ २० ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ ११२ पर किया गया है।

अथ खसबीज (पोस्त) तैलगुणानाह

तैलं तु खसबीजानां बल्यं वृष्यं गुरुस्मृतम्। वातहृत्कफहृच्छीतं स्वादुपाकरसं च तत् ॥

पोस्ता का तेल—बलकारक, वीर्यवर्धक, गुरु, वात तथा कफ नाशक, शीतल एवम् रस तथा विपाक में मधुर होता है ॥ २१ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ १४५ पर किया गया है।

अथैरण्डतैलगुणानाह

एरण्डतैलं तीक्ष्णोष्णं दीपनं पिच्छिलं गुरु। वृष्यं त्वच्यं वयःस्थापि मेधाकान्तिबलप्रदम् ॥
कषायानुरसं सूक्ष्मं योनिशुक्रविशोधनम्। विस्रंस्वादु रसे पाके सतिक्तं कटुकं रसम् ॥२३॥
विषमज्वरहृद्रोगपृष्ठगुह्यादिशूलनुत्। हन्ति वातोदरानाहगुल्माष्ठीलाकटिग्रहान् ॥ २४ ॥
वातशोणितविड्बन्धब्रध्नशोथामविद्रधीन। आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ॥
एक एव निहन्ताऽयमेरण्डस्नेहकेसरी ॥ २५ ॥

रेंड़ी का तेल—तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, पिच्छिल गुण युक्त, गुरु, वीर्यवर्धक, त्वचा के लिये हितकर, अवस्था को स्थिर रखने वाला, मेधा, कान्ति तथा बल को देने वाला, मधुर, तिक्त तथा कटुरस युक्त, अन्तमें कषाय रसयुक्त, विपाक में मधुररसयुक्त, सूक्ष्म (सूक्ष्मस्रोतों में प्रवेश करने वाला), योनि तथा शुक्र का शोधन करने वाला, विस्र (दुर्गन्ध युक्त), सारक एवम्—विषम-ज्वर, हृद्रोग, पीठ तथा गुह्य (गुदा) आदि का शूल, वात, उदर सम्बन्धी रोग, आनाह (अफरा), गुल्म, अष्ठीला, कटिग्रह (कमर का अकड़जाना), वातरक्त, मलबन्ध, ब्रध्न, शोथ, आम और विद्रधि को दूर करने वाला होता है।

शरीररूपी जङ्गल के अन्दर विचरने वाले आमवात रूपी गजराज को अकेला ही नाश करने वाला यह रेंडी का तेल रूपी सिंह है ॥ २२-२५ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ २९९-३०१ पर किया गया है।

अथ सर्जरसतैलगुणानाह

तैलं सर्जरसोद्भूतं विस्फोटव्रणनाशनम्। कुष्ठपामाकृमिहरं वातश्लेष्मामयापहम् ॥ २६ ॥

सर्जरस का तेल—विस्फोटक (फोड़ा), व्रण, कुष्ठ, खुजली, कृमि,वात तथा कफसम्बन्धी रोग को दूर करने वाला होता है ॥ २६ ॥

इसका अन्य विवरण पृष्ठ २११ एवं ५२० पर किया गया है।

अथ सर्व तैलानां गुणानाह

तैलं स्वयोनिगुणकृद्वाग्भटेनाखिलं मतम्। अतः शेषस्य तैलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिवत् ॥

सभी प्रकार के तैलों के गुण—"वाग्भट" का यह मत है कि—सभी तेल अपने २ मूल द्रव्यों के अनुरूप गुणवाले होते हैं अर्थात् जिसका जो गुण होता है उसके तेल का भी वही गुण होता है। अतः अवशिष्ट तेलों के गुण उनके द्रव्यों के समान ही समझने चाहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
विंशस्तैलवर्गः समाप्तः ॥ २० ॥



अथ सन्धानवर्गः

तत्र काञ्जिकस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

सन्धितं धान्यमण्डादि काञ्जिकं कथ्यते जनैः। काञ्जिकं भेदि तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु ॥
दाहज्वरहरं स्पर्शात्पानाद्वातकफापहम्। माषादिवटकैर्यत्तु क्रियते तद् गुणाधिकम् ॥ २ ॥
लघु वातहरं तत्तु रोचनं पाचनं परम्। शूलाजीर्णविबन्धामनाशनं बस्तिशोधनम् ॥ ३ ॥

काञ्जी के लक्षण—जो धान्य और मण्डक आदि किसी पात्र में रख कर उस में जल डाल कर उस पात्र का मुंह ३ दिन ढँक कर रक्खा रहता है उसी को कांजिक (कांजी) कहते हैं।

कांजी—मल का भेदन करने वाली, तीक्ष्ण, उष्ण, रोचक, पाचक, लघु, स्पर्श (लगाने) से दाह तथा ज्वर को दूर करने वाली, पीने से वात तथा कफ को नष्ट करने वाली होती है। और यही-कांजी—यदि उरद के बड़े आदि से तैयार की जाय तो अधिक गुणकारी होती है। अर्थात् वह—लघु, वातनाशक, रोचक तथा अत्यन्त पाचक, वस्तिशोधक एवम् शूल, अजीर्ण, विबन्ध तथा आम को नष्ट करने वाली होती है ॥ १—३ ॥

अथ काञ्जिकसेवनायोग्यजनानाह

शोषमूर्च्छाभ्रमार्त्तानां मदकण्डूविशोषिणाम्। कुष्ठिनां रक्तपित्तिनां काञ्जिकं न प्रशस्यते ॥
पाण्डुरोगे यक्ष्मणि च तथा शोषातुरेषु च। क्षतक्षीणे तथा श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते ॥
एतेषां न हितं प्रोक्तं काञ्जिकं दोषकारकम् ॥ ५ ॥

काञ्जी सेवन के अयोग्य लोग—जो लोग-शोष, मूर्च्छा या भ्रम से आर्त्त हैं, अथवा-मद तथा खुजली से सूखते जाते हैं, किंवा कुष्ठ तथा रक्तपित्त रोग वाले हैं, उन लोगों के लिये कांजी उत्तम (हितकर) नहीं होती है। एवम्—पाण्डुरोग, यक्ष्मा तथा शोष रोग से पीड़ित और क्षत से क्षीण, परिश्रम से थके हुए तथा मन्दज्वर से जो पीड़ित हैं उन लोगों के लिये भी कांजी हितकर नहीं होती प्रत्युत दोषों को उत्पन्न करने वाली ही होती है ॥ ४-५ ॥

अथ तुषोदकस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः ॥ ६ ॥

तुषोदक के लक्षण—कच्चे तथा भूसी के सहित जो टुकड़े २ किये हुये जौ हैं उन्हें सन्धान की रीति से यदि रख दिया जाय तो जो जल भाग है उसी को "तुषोदक" कहते हैं ॥ ६ ॥

*यवैः = उदके संहितैः सन्धानवर्गोक्तत्वात् ॥ ६ ॥

यहां पर "यवैः" पद से "सन्धानवर्ग" में कहे हुये होने से जल में सन्धान की रीति से रक्खे हुये जौ यह अर्थ समझना चाहिये ॥ ६ ॥

तुषाम्बु दीपनं हृद्यं पाण्डुक्रिमिगदापहम्। तीक्ष्णोष्णं पाचनं पित्तरक्तकृद्बस्तिशूलनुत् ॥ ७ ॥

तुषाम्बु अर्थात् तुषोदक—अग्निदीपक, हृदय के लिये हितकर, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक एवम् पाण्डु तथा क्रिमिरोग नाशक, पित्त तथा रक्तविकार को उत्पन्न करने वाला और वस्तिशूल नाशक होता है ॥ ७ ॥

अथ सौवीरस्य लक्षणं गुणांश्चाह

सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम् । गोधूमैरपि सौवीरमाचार्याः केचिदूचिरे ॥८॥
सौवीरं तु ग्रहण्यर्शःकफघ्नं भेदि दीपनम् । उदावर्त्ताङ्गमर्दास्थिशूलानाहेषु शस्यते ॥ ९ ॥

सौवीर के लक्षण—कच्चे अथवा पके भूसी रहित जौ के टुकड़ों से उक्त संधान की रीति से जो जल तैयार होता है उसे "सौवीर" कहते हैं। कोई २ आचार्य ऐसा कहते हैं कि—इसी भाँति जो गेहूँ के टुकड़ों से तैयार किया जाता है उसे "सौवीर" कहते हैं। सौवीर—मलभेदक, अग्निदीपक तथा ग्रहणी, अर्श और कफ नाशक एवम् उदावर्त्त, अङ्गमर्द (शरीर में दर्द) हड्डियों में शूल की भाँति दर्द तथा आनाह (अफरा) में उत्तम (हितकर) होता है ॥ ८-९ ॥

अथारनालस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

आरनालं तु गोधूमैरामैः स्यान्निस्तुषीकृतैः । पक्वैर्वा सन्धितैस्तत्तु सौवीरसदृशं गुणैः ॥१०॥

आरनाल के लक्षण—कच्चे अथवा पके हुए भूसी रहित गेहूँ के टुकड़ों से सन्धान की रीति से तैयार किये हुए को "आरनाल" कहते हैं। आरनाल—गुणों में सौवीर की भाँति ही होता है ॥ १० ॥

अथ धान्याम्लस्य लक्षणं गुणांश्चाह

धान्याम्लं शालिचूर्णं च कोद्रवादिकृतं भवेत् ।
धान्याम्लं धान्ययोनित्वात्प्रीणनं लघु दीपनम् ।
अरुचौ वातरोगेषु सर्वेष्वास्थापने हितम् ॥ ११ ॥

धान्याम्ल के लक्षण—शालि (जड़हन) चावलों के चूर्ण अथवा कोदो आदि के चावलों के चूर्ण से सन्धान की रीति से जो तैयार होता है उसे 'धान्याम्ल" कहते हैं। धान्याम्ल—इसका योनि (उपादान कारण) धान्य होने से यह—तृप्तिकारक, लघु, अग्निदीपक एवम् अरुचि, सभी प्रकार के वातरोग तथा आस्थापन वस्ति में हितकर होता है ॥ ११ ॥

अथ शिण्डाक्या लक्षणं गुणाँश्चाह

शिण्डाकी राजिकायुक्तैः स्यान्मूलकदलद्रवैः । सर्षपस्वरसैर्वाऽपि शालिपिष्टकसंयुतैः ॥१२॥

शिण्डाकी के लक्षण—राई तथा मूली के पत्तों के रस अथवा सरसों के स्वरस और शालि (जड़हन) के चावलों के चूर्ण से सन्धान की रीति से जो तैयार होता है उसे "शिण्डाकी" कहते हैं ॥ १२ ॥

*सन्धितैरिति शेषः ॥ १२ ॥

यहाँ पर "सन्धितैः" यह विशेषण ऊपर से लगाना चाहिये जिससे "सन्धान की रीति से जो तैयार होता है" यह अर्थ निकले ॥ १२ ॥

शिण्डाकी रोचनी गुर्वी पित्तश्लेष्मकरी स्मृता ॥ १३ ॥

शिण्डाकी—रोचक, गुरु एवम् पित्त तथा कफ को उत्पन्न करने वाली होती है ॥ १३ ॥

अथ शुक्तस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च । यत्र द्रवेऽभिपूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥ १४ ॥
शुक्तं कफघ्नं तीक्ष्णोष्णं रोचनं पाचनं लघु । पाण्डुक्रिमिहरं रूक्षं भेदनं रक्तपित्तकृत् ॥ १५ ॥

शुक्त के लक्षण—कन्द, मूल तथा फल आदि तेल तथा निमक के सहित जिस द्रव पदार्थ में डुबोये जाकर सन्धान की रीति से बनाये जाते हैं उसे शुक्त कहते हैं।

शुक्त—कफनाशक, तीक्ष्ण, उष्ण, रोचक, पाचक, लघु, रूक्ष, मलभेदक, रक्तपित्तकारक एवम् पाण्डु तथा कृमि को दूर करने वाला होता है ॥ १४-१५ ॥

अथासुतम् (संधान) । तस्य लक्षणं गुणांश्चाह

कन्दमूलफलाढ्यं यत्तत्तु विज्ञेयमासुतम् । तद्रुच्यं पाचनं वातहरं लघु विशेषतः ॥ १६ ॥

कन्द, मूल तथा फल आदि से युक्त जो काँजी है उसे "आसुत" कहते हैं। आसुत—रुचिकारक, पाचक, वातनाशक तथा विशेष कर लघु होता है ॥ १६ ॥

अथ मद्यस्य नामानि लक्षणं गुणाँश्चाह

मद्यन्तु सीधुमैरेयमिरा च मदिरा सुरा । कादम्बरी वारुणी च हालाऽपि बलवल्लभा ॥१७॥
पेयं यन्मादकं लोकैस्तन्मद्यमभिधीयते । यथाऽरिष्टं सुरा सीधुरासवाद्यमनेकधा ॥ १८ ॥
मद्यं सर्वं भवेदुष्णं पित्तकृद्वातनाशनम् । भेदनं शीघ्रपाकं च रूक्षं कफहरं परम् ॥ १९ ॥
अम्लं च दीपनं रुच्यं पाचनं चाशुकारि च । तीक्ष्णं सूक्ष्मं च विशदं व्यवायि च विकाशि च ॥

मद्य के संस्कृत नाम—मद्य, सीधु, मैरेय, इरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, वारुणी, हाला तथा बलवल्लभा ये सब हैं। लक्षण—नशा लाने वाला, पीने योग्य जो द्रव्य है उसे लोग "मद्य" कहते हैं। भेद—मद्य के अरिष्ट, सुरा, सीधु तथा आसव आदि अनेक प्रकार हैं ॥

सभी प्रकार के मद्य—उष्ण, पित्तकारक, वातनाशक, मलभेदक, शीघ्र पचने वाले, रूक्ष, अत्यन्त कफनाशक, अम्ल रस युक्त, अग्निदीपक, रुचिकारक, पाचक, एवम् शीघ्रकारिता, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, व्यवायि तथा विकाशि गुणों से युक्त होते हैं ॥ १७-२० ॥

अथारिष्टस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम् ॥ २१ ॥

अरिष्ट के लक्षण—पकाई हुई औषध तथा जल से सिद्ध किया हुआ जो मद्य होता है उसे "अरिष्ट" कहते हैं ॥ २१ ॥

*अरिष्टं=मद्यमिति लोके । यथा—द्राक्षारिष्टं, दशमूलारिष्टम्, बब्बूलारिष्टमिति ॥ २१ ॥

यहाँ पर "अरिष्ट" पद से लोक में प्रसिद्ध "मद्य" का ग्रहण करना चाहिये। जैसे—द्राक्षारिष्ट (दाख का अरिष्ट), दशमूलारिष्ट, बब्बूलारिष्ट इत्यादि ॥ २१ ॥

अरिष्टं लघुपाकेन सर्वतश्च गुणाधिकम् । अरिष्टस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ २२ ॥

अरिष्ट—पाक में लघु होता है एवम् सब से अधिक गुणकारी होता है। और अरिष्ट के गुण जिन द्रव्यों का वह बनाया जाता है उसके समान होते हैं ॥ २२ ॥

अथ सुराया लक्षणं गुणाँश्चाह

शालिषष्टिकपिष्टादिकृतं मद्यं सुरा स्मृता । सुरा गुर्वी बलस्तन्यपुष्टिमेदःकफप्रदा ।
ग्राहिणी शोथगुल्मार्शोग्रहणीमूत्रकृच्छ्रनुत् ॥ २३ ॥

सुरा के लक्षण—शालि (जड़हन) तथा साठी के चावलों के चूर्ण आदि से जो मद्य तैयार
50 किया जाता है उसे "सुरा" कहते हैं।

सुरा—गुरु, ग्राही तथा बल, स्तनों में दूध की वृद्धि, शरीर की पुष्टि, मेद तथा कफ को करने वाला एवम् शोथ, गुल्म, अर्श (बवासीर), ग्रहणी तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करने वाला होता है ॥ २३ ॥

अथ सुराभेदस्य वारुण्या लक्षणगुणानाह

पुनर्नवाशालिपिष्टिविहिता वारुणी स्मृता । संहितैस्तालखर्जूररसैर्या साऽपि वारुणी ।
सुरावद्वारुणी लघ्वी पीनसाध्मानशूलनुत् ॥ २४ ॥

सुरा का भेद वारुणी के लक्षण—पुनर्नवा तथा शालि के चावलों के चूर्ण से जो सुरा बनाई जाती है उसे "वारुणी" कहते हैं। और ताल तथा खजूर के रस को सन्धान की रीति से रखने पर जो तैयार होता है उसे भी "वारुणी" कहते हैं।

वारुणी—गुणों में यद्यपि सुरा के समान ही होती है तथापि वह उसकी अपेक्षा लघु एवम् पीनस, आध्मान (अफरा) तथा शूल को दूर करने वाली होती है ॥ २४ ॥

सुरातो भेदार्थं लघ्वीति ॥ २४ ॥

यहाँ पर "लघ्वी" इस पद से "सुरा" से इसका (वारुणी का) भेद दिखलाते हैं। अर्थात् "सुरा" गुरु होती है और "वारुणी" लघु होती है यह समझना चाहिये ॥ २४ ॥

अथ द्विविधसीधोर्लक्षणगुणानाह

इक्षोः पक्वै रसैः सिद्धः सीधुः पक्वरसश्च सः । आमैस्तैरेव यः सीधुः स च शीतरसः स्मृतः ॥
सीधुः पक्वरसः श्रेष्ठः स्वराग्निबलवर्णकृत् । वातपित्तकरः सद्यः स्नेहनो रोचनो हरेत् ॥ २६ ॥
विबन्धमेदःशोफार्शःशोफोदरकफामयान् । तस्मादल्पगुणः शीतरसः संलेखनः स्मृतः ॥२७॥

दो प्रकार के सीधु के लक्षण-ईख के पके हुये रस से जो मद्य तैयार होता है वह "पक्वरस सीधु" कहलाता है। और जो ईख के कच्चे रस से तयार होता है वह "शीतरस सीधु" कहलाता **पक्वरस सीधु**—श्रेष्ठ, स्वर तथा वर्ण को उत्तम करने वाला, अग्नि तथा बलकारक, वात तथा पित्त को करने वाला, तत्काल स्नेहन करने वाला, रोचक एवं विबन्ध, मेद, शोथ, बवासीर, उदर का शोथ तथा कफ सम्बन्धी विकारों को नष्ट करने वाला होता है। **शीतरस सीधु**-यह पक्वरस सीधु की अपेक्षा अल्प गुणकारी तथा अधिक लेखन गुण विशिष्ट होता है ॥ २५-२७ ॥

अथासवस्य लक्षणं गुणाँश्चाह

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥ २८ ॥

आसव के लक्षण—बिना पकाये हुये औषध तथा जल से जो मद्य बनाया जाता है वह "आसव" कहलाता है ॥ २८ ॥

⊛ यथा—लोहासवादिः ॥ २८ ॥

जैसे—"लोहासव" आदि बनता है इतना यहाँ पर और समझना चाहिये ॥ २८ ॥

आसवस्य गुणा ज्ञेया बीजद्रव्यगुणैः समाः ॥ २९ ॥

आसव—इसके गुण बीजद्रव्यों (जिन द्रव्यों से आसव बनाया जाता है उसे "बीजद्रव्य" समझना चाहिये) के गुणों के समान होते हैं ॥ २९ ॥

अथ नवपुराणमदिरागुणानाह

मद्यं नवमभिष्यन्दि त्रिदोषजनकं सरम् । अहृद्यं बृंहणं दाहि दुर्गन्धं विशदं गुरु ॥ ३० ॥
जीर्णं तदेव रोचिष्णु क्रिमिश्लेष्मानिलापहम् । हृद्यं सुगन्धिगुणवल्लघु स्रोतोविशोधनम् ॥

नई मदिरा—अभिष्यन्दी, त्रिदोषजनक, सारक, हृदय के लिये अहितकर, बृंहण, दाह उत्पन्न करने वाली, दुर्गन्ध तथा विशद गुण युक्त एवम् गुरु होती है।

पुरानी मदिरा—रुचि को उत्पन्न करने वाली, हृदय के लिये हितकर, सुगन्ध युक्त, गुणकारक, लघु, स्रोतोमार्ग का शोधन करने वाली एवम् क्रिमि, कफ तथा वायु को नष्ट करने वाली होती है ॥ ३०-३१ ॥

अथ सात्त्विकादिमनुष्याणां मद्येन जाताश्चेष्टा आह

सात्त्विके गीतहास्यादि राजसे साहसादिकम् । तामसे निन्द्यकर्माणि निद्रां च मदिराऽऽचरेत् ॥

सात्त्विकादि मनुष्यों की मद्य से उत्पन्न हुई चेष्टायें-मदिरा सात्त्विक (सत्त्वगुणी) मनुष्यों में पीने से गाना तथा हँसना आदि कार्यों को कराने लगती है—राजस (रजोगुणी) मनुष्यों में साहस आदि कार्यों को, तामस (तमोगुणी) मनुष्यों में निन्द्यकर्म तथा निद्रा को कराती है ॥ ३२ ॥

⊛आचरेत्=कुर्यात् ॥ ३२ ॥

यहाँ पर "आचरेत्" पद से "कराने लगती है" यह भावार्थ समझना चाहिये ॥ ३२ ॥

अथ मद्यपानप्रकारमाह

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् । प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥३३॥
किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् । अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥३४॥

मद्य पीने का प्रकार—जो मनुष्य प्रसन्न होता हुआ, हितकारक अन्नों के साथ, बलानुसार यथासमय, विधिपूर्वक, मात्रा के साथ मद्य पीता है, तो उसे वह (मद्य) अमृत के समान गुणकारी होता है। क्योंकि—मद्य का स्वभाव जिस प्रकार अन्न का है ठीक वैसा ही है, जैसे अन्न—अविधिपूर्वक सेवन करने से रोग उत्पन्न करने वाला होता है और विधिपूर्वक सेवन करने से अमृत के समान गुणकारी होता है वैसे ही मद्य को भी समझना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥

अथ मद्यगन्धस्य दूरीकरणोपायमाह

मुस्तैलवालुघनजीरकधान्यकैला यश्चर्वयन्सदसि वाचमभिव्यनक्ति ।
स्वाभाविकं मुखजमुज्झति पूतिगन्धं-गन्धञ्च मद्यलशुनादिभवञ्च नूनम् ॥ ३५ ॥

मद्य के गन्ध को दूर करने का उपाय—नागरमोथा, कूठ, एलवालु जीरा, धनिया और इलायची इन सब को चबाता हुआ जो मद्य पीने वाला मनुष्य सभा के मध्य में बातचीत करता है, उसके मुख की स्वाभाविक दुर्गन्ध तथा मद्य एवम् लहसुन आदि से उत्पन्न गन्ध निश्चय दूर हो जाती है ॥३५॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे-
एकविंशः सन्धानवर्गः समाप्तः ॥ २१ ॥

अथ मधुवर्गः

तत्र मधुनो नामगुणानाह

मधु माक्षिकमाध्वीकक्षौद्रसारघमीरितम्। मक्षिकावरटीभृङ्गवान्तं पुष्परसोद्भवम् ॥ १ ॥
मधु शीतं लघु स्वादु रूक्षं ग्राहि विलेखनम्। चक्षुष्यं दीपनं स्वर्यं व्रणशोधनरोपणम् ॥ २ ॥
सौकुमार्यकरं सूक्ष्मं परं स्रोतोविशोधनम्। कषायानुरसं ह्लादि प्रसादजनकं परम् ॥ ३ ॥
वर्ण्यं मेधाकरं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत्। कुष्ठार्शःकासपित्तास्रकफमेहक्लमक्रिमीन् ॥ ४ ॥
मेदस्तृष्णावमिश्वासहिक्काऽतीसारविड्ग्रहान्। दाहक्षतक्षयांस्तत्तु योगवाह्यल्पवातलम् ॥ ५ ॥

मधु (शहद) के संस्कृत नाम—मधु, माक्षिक, माध्वीक, क्षौद्र, सारघ, मक्षिकावान्त, वरटी वान्त, भृङ्गवान्त तथा पुष्परसोद्भव ये सब हैं।

मधु—शीतल, लघु, स्वादिष्ट, रूक्ष, ग्राही, विलेखन, नेत्रों के लिये हितकर, अग्निदीपक, स्वर को उत्तम बनाने वाला, व्रण का शोधन तथा रोपण करने वाला, सुकुमारता करने वाला, सूक्ष्म (सूक्ष्मस्रोतोगामी), स्रोतोमार्ग का अत्यन्त शोधन करने वाला, आरम्भ में मधुर अन्त में कषाय रस-युक्त, आह्लादकारक, अत्यन्त प्रसादजनक, वर्ण (शरीर के रङ्ग) को उत्तम करने वाला, मेधाशक्ति को उत्पन्न करने वाला, वीर्यवर्धक, विशद गुणयुक्त, रोचक, योगवाही (जिसके साथ इसका योग हो उसके सदृश गुण को करने वाला), थोड़ा वातजनक एवम् कुष्ठ, अर्श, कास, पित्त, रक्तविकार, कफ, प्रमेह, क्लान्ति, क्रिमि, मेद, तृषा, वमन, श्वास, हिचकी, अतीसार, मलबन्ध, दाह, क्षत और क्षय को नष्ट करने वाला होता है॥ १-५॥

अथ मधुभेदानाह

माक्षिकं भ्रामरं क्षौद्रं पौत्तिकं छात्रमित्यपि। आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः ॥६॥

मधु के भेद—१ माक्षिक, २ भ्रामर, ३ क्षौद्र, ४ पौत्तिक, ५ छात्र, ६ आर्घ्य, ७ औद्दालक, ८ दाल, इस प्रकार से ये ८ मधु की जातियाँ हैं॥ ६॥

अथ तेषां लक्षणं गुणांश्च।

तत्र माक्षिकस्य लक्षणगुणानाह

मक्षिकाः पिङ्गवर्णास्तु महत्यो मधुमक्षिकाः। ताभिः कृतं तैलवर्णं माक्षिकं परिकीर्त्तितम् ॥
माक्षिकं मधुषु श्रेष्ठं नेत्रामयहरं लघु। कामलाऽर्शःक्षतश्वासकासक्षयविनाशनम् ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त भेदों में प्रथम माक्षिकजातीय मधु के लक्षण—पिङ्गल वर्ण वाली जो बड़ी मधुमक्खियाँ होती हैं उनके द्वारा उत्पन्न किये हुये तेल के समान वर्णवाले मधु को "माक्षिक" कहते हैं।

माक्षिकजातीय मधु—सभी प्रकार के मधुओं में श्रेष्ठ होता है एवम् नेत्र सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला, लघु तथा कामला, अर्श, क्षत, श्वास, कास और क्षय को नष्ट करने वाला होता है॥ ७-८॥

अथ भ्रामरस्य लक्षणगुणानाह

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः षट्पदेभ्योऽलिभिश्चितं। निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतं॥
भ्रामरं रक्तपित्तघ्नं मूत्रजाड्यकरं गुरु। स्वादुपाकमभिष्यन्दि विशेषात्पिच्छिलं हिमम् ॥

भ्रामरजातीय मधु के लक्षण—प्रसिद्ध, छ पैरों वाले भौरों से कुछ छोटे भ्रमरों (भौरों) से संगृहीत, स्फटिक के समान निर्मल, जो मधु होता होता है उसे "भ्रामर" कहते हैं।

भ्रामरजातीय मधु—रक्तपित्तनाशक, मूत्र में जडता उत्पन्न करने वाला, गुरु, विपाक में मधुर रस युक्त, अभिष्यन्दी, विशेष रूप से पिच्छिल और शीतवीर्य होता है॥ ९-१०॥

अथ क्षौद्रस्य लक्षणगुणानाह

माक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्राऽऽख्यास्तत्कृतं मधु। मुनिभिः क्षौद्रमित्युक्तंतद्वर्णात्कपिलं भवेत्॥
गुणैर्माक्षिकवत्क्षौद्रं विशेषान्मेहनाशनम् ॥ ११ ॥

क्षौद्रजातीय मधु के लक्षण—कपिल वर्ण की सूक्ष्म जो "क्षुद्रा" नामक मधुमक्खियाँ होती हैं उनके द्वारा बनाये गये कपिल वर्ण के मधु को मुनियों ने "क्षौद्र" कहा है।

क्षौद्रजातीय मधु—गुणों में पूर्वोक्त माक्षिक जातीय मधु के सदृश होता है, और विशेष रूप से प्रमेहनाशक होता है॥ ११॥

अथ पौत्तिकमधुनो लक्षणगुणानाह

कृष्णा या मशकोपमा लघुतराः प्रायो महापीडिका
वृक्षाणां पृथुकोटरान्तरगताः पुष्पासवं कुर्वते।
तास्तज्ज्ञैरिह पुत्तिका निगदितास्ताभिः कृतं सर्पिषा
तुल्यं यन्मधु तद्वनेचरजनैः संकीर्तितं पौत्तिकम् ॥ १२ ॥

पौत्तिकं मधु रूक्षोष्णं पित्तदाहास्रवातकृत्। विदाहि मेहकृच्छ्रघ्नं ग्रन्थ्यादिक्षतशोषि च ॥

पौत्तिकजातीय मधु के लक्षण—प्रायः करके मच्छरों के समान अत्यन्त छोटी २ काले रङ्ग की, काटने से अत्यन्त पीड़ा पहुँचाने वाली, वृक्षों के कोटरों (खोड़रों) में रहने वाली जो मधु-मक्खियाँ होती हैं, जिन्हें उनके जानने वाले लोग "पुत्तिका" कहते हैं उनके द्वारा संगृहीत, घी के समान जो मधु होता है उसे जंगली कोल, भिल्लादि लोग "पौत्तिक" कहते हैं।

पौत्तिकजातीय मधु—रूक्ष, उष्ण, पित्त-दाह-रक्तविकार तथा वात कारक, विदाही, प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करने वाला, एवम्—गाँठ आदि तथा क्षत (घाव) को सुखाने वाला होता है॥ १२-१३॥

अथ छात्रमधुनो लक्षणं गुणांश्चाह

वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हिमवतो वने ॥ १४ ॥
कुर्वन्ति च्छत्रकाकारं तज्जं छात्रं मधु स्मृतम्। छात्रं कपिलपीतं स्यात्पिच्छिलं शीतलं गुरु ॥
स्वादुपाकं क्रिमिश्वित्ररक्तपित्तप्रमेहजित्। भ्रमतृण्मोहविषहृत्तर्पणञ्च गुणाधिकम् ॥ १६ ॥

छात्रजातीय मधु के लक्षण—प्रायः करके हिमालय पर्वत के जङ्गलों में कपिल तथा पीत वर्ण की मधुमक्खियाँ छत्ते के आकार का घर बनाती हैं, अत एव उस छत्र से उत्पन्न हुये मधु को "छात्र" कहते हैं।

छात्रजातीय मधु—कपिल तथा पीत वर्ण युक्त, पिच्छिल, शीतल, गुरु, विपाक में मधुर रस युक्त, तृप्तिदायक, अधिक गुणकारी एवम्—कृमि, श्वेत कुष्ठ, रक्तपित्त, प्रमेह, भ्रम, तृषा, मोह तथा विष को दूर करने वाला होता ॥ १४–१६ ॥

अथार्घ्यस्य लक्षणगुणानाह

मधूकवृक्षनिर्यासं जरत्कार्वाश्रमोद्भवम् । स्रवत्यार्घ्यं तदाख्यातं श्वेतकं मालवे पुनः ॥ १७ ॥
तीक्ष्णतुण्डास्तु याः पीता मक्षिकाः षट्पदोपमाः । अर्घ्यास्तास्तत्कृतं यत्तदार्घ्यमित्यपरे जगुः॥
आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परम् । कषायं कटुकं पाके तिक्तञ्च बलपुष्टिकृत् ॥ १९ ॥

आर्घ्यजातीय मधु के लक्षण—"जरत्कारु" ऋषि के आश्रम में उत्पन्न हुये, महुये के वृक्ष से जो गोंद स्रवता है, उसे "आर्घ्य" कहते हैं तथा मालवा देश में उसी को "श्वेतक" कहते हैं। किन्तु अन्य कोई २ आचार्य ऐसा कहते हैं कि—भौंरों के समान आकारवाली, पीले रंग की तथा तीक्ष्ण मुखवाली जो मधुमक्खियां होती हैं, उन्हें "अर्घ्या" कहते हैं, और उनसे संगृहीत मधु को "आर्घ्य" कहते हैं।

आर्घ्यजातीय मधु—नेत्रों के लिये अत्यन्त हितकर और विशेष रूप से कफ तथा पित्त को दूर करने वाला, कषाय तथा तिक्त रस युक्त, विपाक में कटु रस युक्त एवम्—बल तथा पुष्टिकारक होता है ॥ १७–१९ ॥

अथौद्दालकमधुनो लक्षणगुणानाह

प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकीटकाः । कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत्स्यादौद्दालकं मधु॥
औद्दालकं रुचिकरं स्वर्यं कुष्ठविषापहम् । कषायमुष्णमम्लञ्च कटुपाकञ्च पित्तकृत् ॥ २१ ॥

औद्दालकजातीय मधु के लक्षण—प्रायः करके वल्मीक (बिमवट) के अन्दर रहने वाले, कपिल वर्ण के छोटे २ कीड़े, जो कपिल वर्ण का थोड़ी मात्रा में मधु बनाते हैं उसी को "औद्दालक" कहते हैं।

औद्दालकजातीय मधु—रुचिकारक, स्वर को उत्तम बनाने वाला, कषाय तथा अम्ल रस युक्त, उष्ण, विपाक में कटुरसयुक्त एवम् पित्तकारक होता है ॥ २०–२१ ॥

अथ दालमधुनो लक्षणगुणानाह

संस्रुत्य पतितं पुष्पाद्यत्तु पत्रोपरि स्थितम् । मधुराम्लकषायञ्च तद्दालं मधु कीर्त्तितम् ॥२२॥
दालं मधु लघु प्रोक्तं दीपनीयं कफापहम् । कषायानुरसं रूक्षं रुच्यं छर्दिप्रमेहजित् ॥ २३ ॥
अधिकं मधुरं स्निग्धं बृंहणं गुरु भारिकम् ॥ २४ ॥

दालजातीय मधु के लक्षण—फूलों से टपक करके जो पुष्परस (मधु) पत्तों पर गिरता है और जो मधुर, अम्ल तथा कषाय रसयुक्त होता है उसे "दाल" कहते हैं।

दालजातीय मधु—(पाक में) लघु, अग्निदीपक, कफनाशक, अधिक मधुररसयुक्त, अन्त में कषाय रसयुक्त, रूक्ष, रुचिकारक, स्निग्ध गुण युक्त, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), तौल में गुरु एवम् वमन तथा प्रमेह को दूर करने वाला होता है ॥ २२–२४ ॥

*** लघु पाके । गुरु भारिकं, तुलितम् ॥ २२–२४ ॥**

यहां पर मूल में "लघु" पद का "विपाक में लघु" ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

और "गुरु भारिकम्" इस पद का "तौल में गुरु" (भारी) यह अर्थ समझना चाहिये।

अथ नवपुराणमधुगुणानाह

नवं मधु भवेत्पुष्ट्यै नातिश्लेष्महरं सरम् । पुराणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्नमतिलेखनम् ॥ २५ ॥

नया मधु—पुष्टिकारक, कफ को अत्यन्त दूर करने वाला नहीं (किञ्चित् कफनाशक), तथा सारक होता है।

पुराना मधु—ग्राही, रूक्ष, अत्यन्त लेखन गुण विशिष्ट एवम् मेद को दूर करने वाला होता है ॥ २५ ॥

अथ परिभाषामाह

मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः । एकसंवत्सरे वृत्ते पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥ २६ ॥

परिभाषा—मधु, शक्कर, (चीनी) तथा गुड़ इन सबों को एक वर्ष बीत जाने पर पण्डित लोग पुराना कहते हैं। अर्थात्—एक वर्ष के अन्दर के ये सब नये और बाद एक वर्ष के पुराने कहलाते हैं ॥ २६ ॥

अथ शीतलोष्णमधुनोर्गुणदोषानाह

विषपुष्पादपि रसं सविषा भ्रमरादयः । गृहीत्वा मधु कुर्वन्ति तच्छीतं गुणवन्मधु ॥ २७ ॥
विषान्वयात्तदुष्णन्तु द्रव्येणोष्णेन वा सह । उष्णार्त्तस्योष्णकाले च स्मृतं विषसमं मधु ॥

शीतल तथा उष्ण मधु की क्रम से गुणकारिता और दोषकारिता—विषैले भौंरे आदि विष के फूलों से भी रस लेकर मधु बनाते हैं, अत एव शीतल मधु ही गुणकारी होता है।

और विष के फूलों का सम्बन्ध होने से मधु यदि उष्ण या उष्ण द्रव्यों के साथ, वा उष्ण काल में वा गर्मी से दुःखी रोगियों के लिये प्रयोग किया जाता हो तो विष के समान होता है ॥२७–२८॥

अथ मधूच्छिष्टम् (मोम) तस्य नामगुणानाह

मयनं तु मधूच्छिष्टं मधुशेषं च सिक्थकम् । मध्वाधारो मदनकं मधूषितमपि स्मृतम् ॥२९॥
मदनं मृदु सुस्निग्धं भूतघ्नं व्रणरोपणम् । भग्नसन्धानकृद्वातकुष्ठवीसर्परक्तजित् ॥ ३० ॥

मोमके संस्कृत नाम—मयन, मधूच्छिष्ट, मधुशेष, सिक्थक, मध्वाधार, मदनक तथा मधूषित ये सब हैं।

मोम—मृदु गुण युक्त, अत्यन्त स्निग्ध, भूतग्रहनाशक, व्रण का रोपण करने वाला, टूटे हुये अस्थियों को जोड़ने वाला एवम्—वात, कुष्ठ, वीसर्प तथा रक्तविकार को दूर करने वाला होता है ॥ २९–३० ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
द्वाविंशो मधुवर्गः समाप्तः ॥ २२ ॥

अथ इक्षुवर्गः

तत्रादाविक्षोर्नामगुणानाह

इक्षुर्दीर्घच्छदः प्रोक्तस्तथा भूरिरसोऽपि च। गुडमूलोऽसिपत्रश्च तथा मधुतृणः स्मृतः ॥ १ ॥
इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्याः कफप्रदाः। स्वादुपाकरसाः स्निग्धा गुरवो मूत्रला हिमाः॥

ऊख के संस्कृत नाम—इक्षु, दीर्घच्छद, भूरिरस, गुडमूल, असिपत्र तथा मधुतृण ये सब हैं।

सभी प्रकार की इख—रक्तपित्तनाशक, बलकारक, वीर्यवर्धक, कफजनक, रस तथा विपाक में मधुर, स्निग्ध, गुरु, मूत्रकारक, एवम् शीतवीर्य होती हैं ॥ १-२ ॥

हि०—ईख, गन्ना। **अं०**—Sugar Cane (सुगर केन)। **ले०**—Saccharum officinarium Linn. (सेक्कॅरम् ऑफिसिनेरम्)। *Fam. Gramineae* (ग्रॅमिनी)।

इसकी खेती भारतवर्ष के सभी उष्ण प्रदेशों में की जाती है। भावप्रकाशकार इसके १३ भेदों का उल्लेख करते हैं। आजकल भी इसके अनेक कृषित प्रकार पाये जाते हैं।

इसके काण्ड स्वरस, मूल स्वरस तथा शर्करा, राब आदि इक्षुविकारों का उपयोग किया जाता है। अनेक योगों को टिकाऊ बनाने के लिए शर्करा आदि का उपयोग करते हैं। इसमें शर्करा आदि के अतिरिक्त कॅल्शियम् ऑक्जेलेट भी पाया जाता है।

यह मधुर, शीतल, मूत्रल, सारक, बल्य, कण्ठ्य, श्रमहर, शुक्रशोधक तथा वात एवं कफ-वर्धक है। इसका मूल शीतल, मूत्रल एवं वृष्य है। यह मधुर होते हुये भी शीतवीर्य होने से वात-वर्धक होता है (सुश्रुत)। इसको मूत्रजनन द्रव्यों में श्रेष्ठ माना गया है (चरक)। इसका उपयोग रक्तपित्त, गुल्म, उदर, कामला एवं पांडु आदि में भी किया जाता है। इसका बाह्य प्रयोग पित्ता-भिष्यन्द में किया गया है।

अथेक्षुभेदानाह

पौण्ड्रको भीरुकश्चापि वंशकः शतपोरकः। कान्तारतापसेक्षुश्च काण्डेक्षुः सूचिपत्रकः ॥ ३ ॥
नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकृत्। मनोगुप्ता च इत्येता जातयस्तत्र कीर्तिताः ॥५॥

ऊख के भेद—पौड्रक, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर, कोशकृत तथा मनोगुप्ता ये सब ऊखकी जातियां मानी गई हैं ॥ ४-४ ॥

अथ श्वेतपौण्ड्रक-भीरुकेक्षुगुणानाह

वातपित्तप्रशमनो मधुरो रसपाकयोः। सुशीतो बृंहणो बल्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा ॥ ५ ॥

पौण्ड्रक तथा भीरुक ये दोनों ईख—वात तथा पित्त को शमन करने वाली, रस तथा विपाकमें मधुर, अत्यन्त शीतल, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक) एवम् बलकारक होती हैं ॥ ५ ॥

अथ कोशकारेक्षुः। तस्य गुणानाह

कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः ॥ ६ ॥

कोशकार नामक ईख—गुरु, शीतल एवम् रक्तपित्त तथा क्षय को नष्ट करने वाली होती है ॥ ६ ॥

अथ कान्तारेक्षुगुणानाह

कान्तारेक्षुर्गुरुर्वृष्यः श्लेष्मलो बृंहणः सरः ॥ ७ ॥

कान्तार संज्ञक ईख—गुरु, वीर्यवर्धक, कफजनक, बृंहण (रसरक्तादि वर्धक) तथा सारक होती है ॥ ७ ॥

अथ वंशकेक्षुगुणानाह

दीर्घपोरः सुकठिनः सक्षारो वंशकः स्मृतः ॥ ८ ॥

वंशक नामक ईख—लंबे २ पोरों वाली, अत्यन्त कठिन तथा क्षारयुक्त होती है ॥ ८ ॥

अथ शतपोरकेक्षुगुणानाह

शतपर्वा भवेत्किञ्चित्कोशकारगुणान्वितः। विशेषात्किञ्चिदुष्णश्च सक्षारः पवनापहः ॥ ९ ॥

शतपोरक संज्ञक ईख—औरों की अपेक्षा अधिक पोरोंवाली, किंचित् कोशकार संज्ञक ऊख के गुणों से युक्त, विशेष करके किंचित् उष्ण, क्षारयुक्त तथा वात नाशक होती है ॥ ९ ॥

अथ तापसेक्षुगुणानाह

तापसेक्षुर्भवेन्मृद्वी मधुरा श्लेष्मकोपनी। तर्पणी रुचिकृच्चापि वृष्या च बलकारिणी ॥१०॥

तापसेक्षु संज्ञक ईख—कोमल, मधुर रसयुक्त, कफ को कुपित करने वाली, तृप्तिकारक, रुचि को उत्पन्न करने वाली, वीर्यवर्धक, तथा बलकारक होती है ॥ १० ॥

अथ काण्डेक्षुगुणानाह

एवं गुणैस्तु काण्डेक्षुः स तु वातप्रकोपणः ॥ ११ ॥

काण्डेक्षु नामक ईख—गुणों में यद्यपि "तापसेक्षु" के समान ही होती है तथापि यह वात को विशेष रूप से कुपित करने वाली होती है ॥ ११ ॥

अथ सूचीपत्र-नीलपोर-नैपाल-दीर्घपत्राणां गुणानाह

सूचीपत्रो नीलपोरो नैपालो दीर्घपत्रकः। वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥१२॥

सूचीपत्र, नीलपोर, नैपाल तथा दीर्घपत्रक संज्ञक ईख—वातजनक, कफ तथा पित्त नाशक, कषाय रसयुक्त तथा विदाही होती हैं ॥ १२ ॥

अथ मनोगुप्तेक्षुगुणानाह

मनोगुप्ता वातहरी तृष्णाऽऽमयविनाशिनी। सुशीता मधुराऽतीव रक्तपित्तप्रणाशिनी ॥१३॥

मनोगुप्ता संज्ञक ईख—वातनाशक, तृषा रोग को दूर करने वाली, अति शीतल, अत्यन्त मधुर एवम् रक्तपित्त को नष्ट करने वाली होती है ॥ १३ ॥

अथ बाल-तरुण-वृद्धेक्षुगुणानाह

बाल इक्षुः कफं कुर्यान्मेदोमेहकरश्च सः। युवा तु वातहृत् स्वादुरीषत्तीक्ष्णश्च पित्तनुत् ॥
रक्तपित्तहरो वृद्धः क्षतहृद् बलवीर्यकृत् ॥१४॥

बाल (कच्ची) अर्थात् थोड़े दिनों की ईख—कफकारक एवम् मेद तथा प्रमेह रोग को उत्पन्न करने वाली होती है।

युवा (अधपकी) ईख—वातनाशक, स्वादिष्ट, किंचित् तीक्ष्ण एवम् पित्तनाशक होती है।

वृद्ध (पकी) ईख—रक्तपित्त को दूर करने वाली, क्षतनाशक एवम् बल तथा वीर्य उत्पन्न करने वाली होती है ॥ १४ ॥

अथेक्षोरङ्गभेदेन गुणभेदानाह

मूले तु मधुरोऽत्यर्थं मध्येऽपि मधुरः स्मृतः। अग्रे ग्रन्थिषु विज्ञेय इक्षुः पटुरसोजनैः ॥१५॥

ईख के अङ्गभेद से गुणभेद—जड़ भाग में अत्यन्त मधुर रसयुक्त, मध्यभाग में मधुर रसयुक्त और अग्रभाग तथा गांठों में लवण रस युक्त ईख होता है, ऐसा लोगों को जानना चाहिये ॥ १५ ॥

अथ चूषितेक्षुगुणानाह

दन्तनिष्पीडितस्येक्षो रसः पित्तास्रनाशनः। शर्करासमवीर्यः स्यादविदाही कफप्रदः ॥१६॥

दांतों से चूसे हुये ईख का रस-पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाला, शक्कर के समान वीर्यवाला, अविदाही (किंचित् दाह करने वाला) एवं कफ उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १६ ॥

अथ यान्त्रिकेक्षुरसगुणानाह

मूलाग्रजन्तुग्रन्थ्यादिपीडनान्मलसङ्करात्। किञ्चित्कालविधृत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः ॥
तस्माद्विदाही विष्टम्भी गुरुः स्याद्यान्त्रिको रसः ॥ १७ ॥

कोल्हू में पिरे हुये ईख का रस—ईख का यह मूल, अग्रभाग, जन्तु एवम् गांठ आदि के कोल्हू में पिरे जाने से तथा मैल के मिल जाने से और कुछ काल तक रक्खे रहने से विकृत (खराब) हो जाता है, अत एव वह विदाही, विष्टम्भजनक तथा गुरु होता है ॥ १७ ॥

अथ पर्युषितेक्षुरसगुणानाह

रसः पर्युषितो नेष्टो ह्यम्लो वातापहो गुरुः। कफपित्तकरः शोषी भेदनश्चातिमूत्रलः १८ ॥

बासी ईख का रस—हितकर नहीं होता है और यह अम्ल रस युक्त, वातनाशक, गुरु, कफ तथा पित्त कारक, शोष उत्पन्न करने वाला, मलभेदक एवम् अत्यन्त मूत्रजनक होता है ॥ १८ ॥

अथ पक्वेक्षुरसगुणानाह

पक्वो रसो गुरुः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफवातनुत्। गुल्मानाहप्रशमनः किञ्चित्पित्तकरः स्मृतः ॥

पकाया हुआ ईख का रस—रुक्ष, स्निग्ध, अत्यन्त तीक्ष्ण, कफ तथा वात नाशक, किंचित् पित्तकारक एवम् गुल्म तथा आनाह (अफारा) को दूर करने वाला होता है ॥ १९ ॥

अथेक्षुरसनिर्मितपदार्थगुणानाह

इक्षोर्विकारास्तृड्दाहमूर्छापित्तास्रनाशनाः। गुरवो मधुरा बल्याः स्निग्धा वातहराः सराः ॥
वृष्या मोहहराः शीता बृंहणा विषहारिणः ॥ २० ॥

ईख के रस में बने हुए पदार्थ—तृषा, दाह, मूर्च्छा, पित्त तथा रक्तविकार को दूर करने वाले, गुरु, मधुर रसयुक्त, बलकारक, स्निग्ध, वातनाशक, सारक, वीर्यवर्धक, मोह को दूर करने वाले, शीतल, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक) तथा विषनाशक होते हैं ॥ २० ॥

अथ फाणितम् ("चरका, राब, छोवा" इति लोके)।

तस्य लक्षणगुणानाह

इक्षो रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद्गाढो बहुद्रवः। स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया ॥
फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं कफशुक्रकृत्। वातपित्तश्रमान्हन्ति मूत्रवस्तिविशोधनम् ॥

फाणित (चरका, राब, छोवा इस नाम से लोक प्रसिद्ध) के लक्षण—ईख का जो पकाया हुआ रस कुछ गाढ़ा अंश तथा अधिक द्रव भाग से युक्त होता है वही ईख के रस से बने हुए पदार्थों में फाणित (राब) नाम से विख्यात है।

फाणित (राब)—गुरु, अभिष्यन्दी, बृंहण (रस-रक्तादि वर्धक), कफ तथा शुक्र को उत्पन्न करने वाला, वात, पित्त तथा श्रम को दूर करने वाला एवम् मूत्र तथा वस्ति का अधिक शोधन करने वाला होता है ॥ २१ ॥

अथ मत्स्यण्डी ("राबकाकब, खण्डराब" इति लोके।

तस्य लक्षणगुणानाह

इक्षो रसो यः सम्पक्वो घनः किञ्चिद्द्रवान्वितः ॥ २२ ॥
मन्दं यत्स्पन्दते तस्मात्तन्मत्स्यण्डी निगद्यते। मत्स्यण्डी भेदिनी बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा ॥
मधुरा बृंहणी वृष्या रक्तदोषापहा स्मृता ॥ २३ ॥

मत्स्यण्डी ("राब काकब, खण्डराब" इस नाम से लोक प्रसिद्ध) के लक्षण—ईख का जो पकाया हुआ रस अधिक घन भाग तथा स्वल्प द्रव भाग से युक्त होता है उसे मत्स्यण्डी कहते हैं और इससे मन्द २ रस झरता है इस कारण से इसका "मत्स्यण्डी" नाम रक्खा गया है।

मत्स्यण्डी—मलभेदक, बलकारक, लघु, पित्त तथा वात को दूर करने वाली, मधुर रसयुक्त, बृंहण (रस-रक्तादिवर्धक), वीर्यवर्धक एवम् रक्तसंबन्धी दोष को नष्ट करने वाली होती है ॥२२-२३॥

अथ गुडस्य लक्षणं गुणांश्चाह

इक्षो रसो यः सम्पक्वो जायते लोष्टवद् दृढः ॥ २४ ॥
स गुडो गौडदेशे तु मत्स्यण्ड्येव गुडो मतः। गुडो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः।
नातिपित्तहरो मेदःकफक्रिमिबलप्रदः ॥ २५ ॥

गुड के लक्षण—ईख का जो रस पकाते २ गाढ़ा होने पर ढेले के समान बांधने से दृढ़ हो जाता है उसे "गुड़" कहते हैं। किन्तु "गौड़" देश में "मत्स्यण्डी" को ही "गुड़" मानते हैं।

गुड—वीर्यवर्धक, गुरु, स्निग्ध, वातनाशक, मूत्र शोधन करने वाला, अत्यन्त पित्तनाशक नहीं (किञ्चित् पित्तनाशक) एवम्—मेद, कफ, क्रिमि तथा बल को उत्पन्न करने वाला होता है ॥२४-२५॥

अथ पुराणगुडस्य गुणानाह

गुडो जीर्णो लघुः पथ्योऽनभिष्यन्द्यग्निपुष्टिकृत्। पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥

पुराना गुड़—लघु, पथ्य, अनभिष्यंदी (किञ्चित् अभिष्यन्दी), अग्निजनक तथा पुष्टिवर्धक, पित्तनाशक, मधुर, वीर्यवर्धक, वातनाशक, एवम् रक्त को स्वच्छ (दोषरहित) करने वाला होता है ॥ २६ ॥

अथ नवीनगुडस्य गुणानाह

गुडो नवः कफश्वासकासक्रिमिकरोऽग्निकृत् ॥ २७ ॥

नवीन गुड़—कफ, श्वास, कास तथा कृमि को उत्पन्न करने वाला एवम् जठराग्नि की वृद्धि करने वाला होता है ॥ २७ ॥

अथानुपानभेदेन गुडस्य गुणानाह

श्लेष्माणमाशु विनिहन्ति सहार्द्रकेण पित्तं निहन्ति च तदेव हरीतकीभिः।
शुण्ठ्या समं हरति वातमशेषमित्थं दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय ॥ २८ ॥

अनुपान भेद से गुड़ के गुण—गुड़ यदि अदरक के साथ सेवन किया जाय तो कफ को शीघ्र नष्ट करता है। और हरीतकी (हर्रे) के साथ सेवन करने से पित्त को दूर करता है। एवम् सोंठ के साथ गुड़ का सेवन करने से समस्त वातसम्बन्धी विकारों को दूर करता है। इस प्रकार से तीनों दोषों को दूर करने वाले गुड़ के लिये नमस्कार है अर्थात् तीनों दोषों को दूर करने से गुड़ ओषधियों में सर्वोत्तम है ॥ २८ ॥

अथ खण्डस्य गुणानाह

खण्डन्तु मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं बृंहणं हिमम्। वातपित्तहरं स्निग्धं बल्यं वान्तिहरं परम् ॥२९॥

खण्ड—मधुर रसयुक्त, वीर्यवर्धक, नेत्रों के लिये हितकर, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक), शीतवीर्य, वात तथा पित्त नाशक, स्निग्ध, बलकारक एवम् अत्यन्त वमन को दूर करने वाला होता है ॥ २९ ॥

*** खण्डमिति प्रसिद्धं (खांड) ॥ २९ ॥**

यहाँ पर "खण्ड" इस पद से लोक प्रसिद्ध "खांड" का ग्रहण करना चाहिये ॥ २९ ॥

अथ शर्करा ("चीनी" इति लोके)। तस्या लक्षणगुणानाह

खण्डन्तु सिकतारूपं सुश्वेतं शर्करा सिता। सिता सुमधुरा रुच्या वातपित्तास्रदाहहृत्।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरान्हन्ति सुशीता शुक्रकारिणी ॥ ३० ॥

शर्करा ("चीनी" इस नाम से लोक प्रसिद्ध) के लक्षण—जो खांड़ बालू के समान तथा श्वेत हो उसे "शर्करा" अथवा "सिता" कहते हैं।

चीनी—अति मधुर, रुचिकारक, वात, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को दूर करने वाली, अतिशीतल, शुक्र को उत्पन्न करने वाली एवम्—मूर्च्छा, वमन तथा ज्वर को नष्ट करने वाली होती है ॥ ३० ॥

अथ पुष्पसिता सितोपला च (फूल से बनाई हुई चीनी और मिश्री)। तयोर्गुणानाह

भवेत्पुष्पसिता शीता रक्तपित्तहरी लघुः। सितोपला सरा लघ्वी वातपित्तहरी हिमा ॥ ३१ ॥

पुष्पसिता (फूलों से बनाई हुई चीनी)—शीतल, लघु एवम् रक्तपित्त को दूर करने वाली होती है।

सितोपला (मिश्री)—सारक, लघु, शीतवीर्य एवम् वात तथा पित्त को दूर करने वाली होती है ॥ ३१ ॥

अथ मधुखण्डगुणानाह

मधुजा शर्करा रूक्षा कफपित्तहरा गुरुः। छर्द्यतीसारतृड्दाहरक्तहृत्तुवरा हिमा ॥ ३२ ॥

मधुखण्ड (शहद से बनी हुई खांड़ अथवा शक्कर)—रूक्ष, कफ तथा पित्त नाशक, गुरु, कषाय रसयुक्त, शीतवीर्य एवम्—वमन, अतीसार, तृषा, दाह तथा रक्तविकार को दूर करने वाली होती है ॥ ३२ ॥

अथ परिभाषामाह

यथा यथैषां नैर्मल्यं मधुरत्वं यथा यथा। स्नेहलाघवशैत्यादि सरत्वञ्च तथा तथा ॥ ३३ ॥

परिभाषा—जैसे २ इन (खांड, बूरा आदि) सब में निर्मलता तथा मधुरता (मिठास) अधिक होती जाती है वैसे २ इनमें, स्निग्धता, लघुता, शीतलता एवम्—सारकता आदि (गुण) भी बढ़ते जाते हैं, अर्थात् निर्मलता तथा मधुरता के अनुसार ही इन सब में स्निग्धता आदि गुण रहते हैं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमिश्रलटकनतनयश्रीमिश्रभावविरचिते भावप्रकाशे मिश्रप्रकरणे
त्रयोविंश इक्षुवर्गः समाप्तः ॥ २३ ॥